हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन

परीक्षित प्रबंध
11/01/2013
(Prof. Arjun ... Chavan)
Kolhapur

अनुसंधित्सु

कल्पना सईकिया

NORTH EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY
DATE

हिन्दी विभाग

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय

शिलांग - 793022

मेघालय

2012

Hindi
NE…
Ac…
104645
23/10/19
Enter By:

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ. दिनेश कुमार चौबे
सह आचार्य
हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग

अनुसंधित्सु
कल्पना सईकिया

हिन्दी विभाग

द्वारा

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय के हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी के लिए अपेक्षित आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रस्तुत।

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग

घोषणा

मैं कल्पना सईकिया एतद्द्वारा घोषित करती हुँ कि इस शोध प्रबन्ध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किये गये कार्यों का प्ररिणाम है। इस शोध सामग्री के आधार पर न तो मुझे, और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान की गई है और न ही यह शोध-प्रबन्ध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध-उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/ संस्थान में प्रस्तुत किया गया है ।

इसे पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के सम्मुख हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है ।

15.6.12

अध्यक्ष 15/6/12

अध्यक्ष/Head
हिन्दी विभाग/Hindi Deptt
पू.प.वि.वि. शिलांग- 22
N.E.H.U, Shillong- 22

निर्देशक

अनुसंधित्सु

प्राक्कथन

किसी भी राष्ट्र की संस्कृति को हम उसके साहित्य के माध्यम से समझ सकते हैं। कथा साहित्य का महत्व इस दृष्टिकोण से उल्लेखनीय है। वर्तमान युग में, उपन्यास एक सशक्त साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकृत है, जिसमें मानव जीवन के यथार्थ का चित्रण मिलता हैं। उपन्यास जीवन के हर पहलू का वर्णन करने में सक्षम है। अतः उपन्यास साहित्य के प्रति मेरी अभिरूचि विद्यार्थी जीवन से ही रही है और इसमें भी आंचलिक उपन्यास मेरा विशेष प्रिय विषय रहा है। कारण, आंचलिक उपन्यास हिन्दी साहित्य की एक ऐसी नवीन विधा है, जिसने साहित्य की गतिविधि को समृद्ध कर राष्ट्र की शक्ति और उसकी अखण्डता को अटूट डोर से बाँधने का सफल प्रयास किया है।

यह सर्वविदित है कि भारत एक बहुभाषिक एवं बहुसांस्कृतिक देश है। बहुलता में एकता की प्रवृति के कारण हमारा देश संसार में प्रसिद्ध है। इस महान देश में अनेक जातियाँ, धर्म एवं सभ्यताएँ अपनी निजता के साथ सहस्त्रों वर्षों से फलित होती आ रही हैं। रहन-सहन, वेशभूषा में भिन्नता होते हुए भी इस देश के निवासियों में एक प्रकार की समान संस्कृति मौजूद है। अनेकता में एकता के दर्शन करानेवाले इसी भारतीय संस्कृति के प्रति अधिक से अधिक जानने की प्रवृत्ति ने आंचलिक उपन्यासों के प्रति मेरी रूचि को बढ़ावा दिया। आंचलिक उपन्यासों में अंचलों के जनजीवन के साथ, वहाँ की संस्कृति के विभिन्न पक्षों का चित्रण करके सांस्कृतिक एकीकरण पर बल दिया जाता है। एम.ए की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात्, मैंने अपनी जिज्ञासा गुरूवर डॉ० दिनेश कुमार चौबे के समक्ष प्रकट की। उन्होंने मेरी रूचि को ध्यान में रखते हुए, मुझे तुलनात्मक अध्ययन की प्रेरणा दी। उन्होंने मुझे हिन्दी के साथ असमिया आंचलिक उपन्यासों की तुलना करने का परामर्श दिया, कारण असमिया मेरी मातृभाषा है और तुलनात्मक अध्ययन के लिए दोनों भाषाओं की समान जानकारी अनिवार्य है। मैंने उनके निर्देशानुसार दोनों भाषाओं के उपन्यासों का अध्ययन किया और अपने विचारों को लिखित रूप में गुरूदेव के समक्ष प्रस्तुत किया।विषय के प्रति मेरी रूचि को देखते हुए उन्होंने मुझे आगे के कार्य के निमित्त उत्साहित किया। विचार-विमर्श के उपरान्त ही प्रस्तुत शोध-प्रबंध का विषय हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन

निर्धारित हुआ। इसी आधार पर मेरे चितंन को नये आयाम मिले। हिन्दी और असमिया भाषा के आंचलिक उपन्यासों की संख्या बहुत है, अतः समस्त आंचलिक उपन्यासों का विवेचन कर सकता असंभव है। इसलिए गुरूवर डॉ० दिनेश कुमार चौबे जी ने मुझे उनमें से कुछ विशिष्ट आंचलिक उपन्यासों का विवेचन करने का सुझाव दिया। उनके आदेशानुसार मैंने अपने शोध-प्रबंध के विषय-प्रतिपादन में हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों को आधार ग्रंथ के रूप में लिया है, जो आंचलिकता की कसौटी पर खरे उतरते हैं। यथा- हिन्दी के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में - 'मैला आंचल' (फणीश्वरनाथ रेणु), 'आधा गाँव' (राही मासुम रज़ा), 'कब तक पुकारूँ' (रांगेय राघव), 'अलग-अलग वैतरणी' (शिवप्रसाद सिंह), 'सागर,लहरें और मनुष्य' (उदयशंकर भट्ट) और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में - 'कपिली परिया साधु' (नवकांत बरूआ), 'मिरि जियरी' (रजनीकांत बरदलै), 'रंगमिलीर हाँही' (रंगबंग तेरांग), 'कईनार मूल्य' (लुम्मेर दाई), 'नोई बोई जाए' (लीला गोगोई) आदि द्रष्टव्य है।

हिन्दी और असमिया हमारे भारतवर्ष की प्रमुख भाषाएँ है तथा दोनों का संबंध भारतीय आर्य भाषा-परिवार से है। हिन्दी को संविधान में राजभाषा का पद प्राप्त है। असम भारत के पूर्वोत्तर में स्थित एक विशाल राज्य है, जिसकी अपनी एक सुदृढ़ संस्कृति तथा भाषा असमिया है। भौगोलिक दृष्टि से दूर-दूर के क्षेत्र होते हुए भी हिन्दी और असमिया भाषी समाज में कई बिंदुओं पर समानता तथा विशेषता पाई जाती हैं। दोनों का समाज कृषि प्रधान है, मध्यवर्गीय जीवन एक है, आचार-विचार में भी समानता है। क्षेत्रीयता की दृष्टि से दोनों में व्याप्त असमानताओं को हम विशेषता के रूप में ही देखते हैं। हिन्दी में आंचलिक उपन्यासों की एक विस्तृत धारा है, इसके विपरीत असमिया कथा साहित्य में आंचलिक उपन्यास नामक कोई स्पष्ट धारा नहीं मिलती। केवल यह उपन्यास का एक वर्गीकरण मात्र कहा जा सकता है। हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन दो भिन्न भाषी संस्कृतियों के आंचलिक पहलुओं को समझने एवं सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय एकता लाने में योगदान देगा।

इस शोध-प्रबंध के द्वारा नवीन चिंतनधारा का मार्ग एवं प्रगति के नए रास्ते खुलेंगे।इस बात की भी पुष्टि होगी कि दो भिन्न भाषी संस्कृतियों में कहाँ अलगाव तथा जुड़ाव है। दोनों क्षेत्रों के लोग एक-दूसरे की सांस्कृतिक संपदा से लाभान्वित हो सकेंगे। साथ ही, जनमानस अपने दृष्टिकोण में

परिवर्तन लाने के साथ- साथ ज्ञानार्जन से प्राप्त संतुष्टि का अनुभव कर पायेगा। यह शोध कार्य हिन्दी और असमिया भाषी लोगों की संस्कृति एवं जनजीवन के विविध पक्षों तथा जीवन मूल्यों को अभिव्यक्त करने में सहायक बनेगा। मेरा यह प्रयास उन लोगों के लिए ज्ञानवर्धन का स्रोत बनेगा जो हिन्दी और असमिया संस्कृति की विशेषताओं एवं विविधताओं के बारे में जानकारी चाहते हैं। अतः राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक एकीकरण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से यह शोध कार्य प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में प्राक्कथन और उपसंहार के अतिरिक्त कुल पाँच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय आंचलिक उपन्यासः स्वरूप विवेचन है जिसमें आंचलिकता का अर्थ, आंचलिकता के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ, आंचलिक तत्त्वों एवं उसके स्वरूपों का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन किया गया है। इसके साथ ही उपन्यास और आंचलिक उपन्यासों में पारस्परिक संबंध तथा अंतर के अलावा, हिन्दी और असमिया के कुछ प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का इतिवृतात्मक परिचय भी दिया गया है।

शोध कार्य के द्वितीय अध्याय हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में सामाजिक जीवन के अंतर्गत हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में वर्णित समाज के विभिन्न स्वरूपों एवं परिवर्तनों को दर्शाया गया है।आंचलिक जीवन की सामाजिक परिस्थितियाँ,संगति-विसंगतियाँ,पारस्परिक संबंध, मानवीय मूल्य,वर्ग-संघर्ष आदि के माध्यम इन दोनों भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक आयाम के विस्तृत क्षेत्र को चित्रित किया गया है।

तृतीय अध्याय हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में राजनैतिक-आर्थिक चेतना के अंतर्गत अंचल में व्याप्त राजनैतिक उथल-पुथल एवं जागृति के साथ उन आर्थिक परिस्थितियों का वर्णन किया गया है जिससे आंचलिक जीवन के आर्थिक विकास में समस्याएँ पैदा होती हैं और किस प्रकार अर्थ का लोभ नगरोन्मुखता की प्रवृति को बढ़ावा दे रहा है।

चतुर्थ अध्याय हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में सांस्कृतिक-धार्मिक चेतना के अंतर्गत अंचल समाज में प्रचलित रीति-नीति, विविध संस्कार, लोकगीत-नृत्य, खान-पान, आस्थाएँ व अंधविश्वासों आदि का वर्णन किया गया है। दो भिन्न भाषी संस्कृतियों में व्याप्त अंचलगत संस्कार का विवेचन किया गया है। इसके साथ ही, धर्म के विविध पक्षों का उद्घाटन करते हुए

धार्मिक विसंगतियों की अवहेलना की है और यह स्पष्ट किया है कि धार्मिक विसंगतियों से मुक्त होने पर ही व्यक्ति, समाज तथा समूचे राष्ट्र का विकास संभव है। पंचम अध्याय हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों की भाषा एवं शिल्पविधान के अंतर्गत आंचलिक बोली, मुहावरें, लोकोक्तियाँ के साथ आंचलिक उपन्यासों की शिल्प संरचना के विविध पक्षों एवं पहलुओं के साथ शिल्पगत विशिष्टताओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

अंत में उपसंहार है। जिसमें हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में व्याप्त समानताओं व असमानताओं का क्रमशः मूल्यांकन किया गया है। दो भिन्न भाषी क्षेत्र होते हुए भी हम यह देखते है कि इनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन में समानता ही अधिक है। सबकी स्वतंत्र अस्मिता होते हुए भी विचारों एवं भाव-धाराओं में एकता पुष्पित होती है।

परिशिष्ट में आधार एवं सहायक ग्रंथों की तालिका प्रस्तुत की गयी है। पत्र-पत्रिकाओं को उक्त तालिका में सम्मिलित कर शोध प्रबंध को पूरा किया गया है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन जहाँ एक ओर अंचल विशेष में रहने वाले लोगों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टताओं का जीवन चित्र प्रस्तुत करने में सहायक, बनेगा, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक एकीकरण को बढ़ावा देने का कार्य भी करेगा।

शोध-कार्य का विषय दो भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित होने के कारण नवीनता के साथ साथ शोधार्थी को तमाम चुनौतियों से दो चार कराता हैं। उस पर भी आधारभूत एवं सहायक सामग्रियों की कमी के कारण उत्पन्न कठिनाइयाँ निरंतर मेरे हौसले को चुनौती दे रही थीं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में . . मेरे आदरणीय गुरूदेव डॉ दिनेश चौबे पी.एच.डी (सह आचार्य, हिन्दी विभाग पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग) का योग्य निर्देशन और प्रोत्साहन से ही मेरा यह शोध कार्य पूर्ण हो सका। उन्होंने समय-समय पर शोध प्रवंध से संबंधित अनेकों समस्याओं का समाधान किया। उन्होंने ही मुझे शोध का विषय बुझाया, दिशा दी। मेरे इस सम्पूर्ण शोध कार्य में आदरणीय गुरुवर जी का आद्यांत सहयोग सतत् मार्ग दर्शन, उत्सावर्धन रहा है। उनका असीम स्नेह धन्यवाद से परे है। उनके प्रोत्साहन के अभाव में इस शोध प्रबंध का लिखा जना संभव न होता। कभी-कभी उनके व्यक्तिगत कार्यों में भी मेरे शंका निर्वारण हेतु

अनेक बार व्यवधान हुआ होगा। परंतु उन्होंने हमेशा अभिभावकीय गुरूता निभाते हुए मुझे बारीक शोध-दृष्टि देकर कृतार्थ किया। वर्तमान में ऐसी गुरूता शायद ही देखने को मिले। ऐसे उदार मना गुरू के प्रति धन्यवाद शब्द अत्यंत छोटा है। उनके प्रति विशेष रूप से आभारी हूँ, धन्यवाद की औपचारिकता का निर्वाह करके मैं ऊऋण नहीं हो सकती हूँ।

शोध प्रबंध को गंतव्य तक पहुँचाने में मुझे अपने परिवार के सभी व्यक्तियों का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ है। पूजनीय माता-श्रीमती बोनटी सईकिया और पिता निकुंज मोहन सईकिया तथा अनुज मृदुल सईकिया के योगदान महत्वपूर्ण रहे हैं। जीवन साथी श्री भवेनचन्द्र हजारिका के स्नेह संरक्षण ने विषमताओं में संघर्ष करने की अदम्य प्रेरणा प्रदान की। उनके सहयोग को विस्मृत करना असंभव हैं। मैं अपनी आठ वर्षीय पुत्री मेघा के प्रति भी अपार स्नेह व्यक्त करती हूँ, जिसने शोध कार्य के अध्ययन में कोई व्यवधान नहीं आने दिया। साथ ही ज्ञात-अज्ञात, उन सभी विद्वतजनों, शुभचिन्तकों एवं मित्रजनों के प्रति आभार ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से इस पूरे शोध कार्य में मार्ग दर्शन, प्रोत्साहन एवं शुभकामनाएँ प्रदान की हैं।

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ० माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय, डॉ० भरत प्रसाद त्रिपाठी, एवं कार्यालय के लिपिक श्री सुरेन्द्र पाठक जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिनका बहुमूल्य सुझाव एवं स्नेह समय-समय पर मिलता रहा है।

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग के केन्द्रीय पुस्तकालय, गुवाहाटी विश्वविद्यालय के पुस्तकालय एवं तेज़पूर के ज़िला पुस्तकालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने उचित समय पर पुस्तकें उपलब्ध कराकर मेरी अनेक विध सहायता की है।

मैं उन सभी लोगों को धन्यवाद ज्ञापित करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझती हूँ जिन्होंने परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से सहायता कर इस शोध प्रबंध को पूर्ण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अतं में, उन सभी लेखकों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहती हूँ, जिनके ग्रंथों के आधार पर वर्तमान प्रबंध को निश्चित रूप दिया जा सका।

मैं अपनी सभी सीमाओं के साथ यह शोध प्रबंध मूल्यांकन हेतु विद्वत्व जनों के सम्मुख विनीत भाव से प्रस्तुत करती हूँ।

कल्पना सईकिया

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय : आंचलिक उपन्यास : स्वरूप - विवेचन पृ : 01-51

1.क. आंचलिकता अर्थ, परिभाषा, तत्त्व, स्वरूप
1.ख. उपन्यास और आंचलिक उपन्यास
1.ग. हिन्दी ओर असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का परिचय

द्वितीय अध्यायः हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में सामाजिक जीवन पृ : 52-109

2.क. ग्रामीण जीवन
2.क.(i) परिवार
2.क.(ii) शिक्षा
2.क.(iii) जातिगत स्वरूप
2.क.(iv) बाल विवाह
2.क.(v) नारी-पुरूष सम्बन्ध
2.ख. शहरी जीवन
2.ख.(i) परिवार
2.ख.(ii) शिक्षा
2.ख.(iii) जातिगत स्वरूप
2.ख.(iv) नैतिक मूल्यों में ह्रास
2.ख.(v) नारी-पुरूष सम्बन्ध

तृतीय अध्याय : हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में राजनैतिक-आर्थिक चेतना पृ : 110-164

3.क. राजनैतिक चेतना
3.क.(i) स्वाधीनता आंदोलन
3.क.(ii) लोकतंत्रीय समाज व्यवस्था
3.क.(iii) राजनैतिक मूल्यों में ह्रास
3.ख. आर्थिक चेतना
3.ख.(i) व्यवसाय
3.ख.(ii) ज़मीदार और सामान्य जन
3.ख.(iii) महाजन का कुचक्र
3.ख.(iv) नगरोन्मुखता

चतुर्थ अध्याय : हिन्दी और असमिया प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में सांस्कृतिक धार्मिक चेतना पृ : 165-230

4.क. सांस्कृतिक परिवेश
4.क.(i) मेला, उत्सव
4.क.(ii) विविध संस्कार
4.क.(iii) लोकगीत एवं नृत्य
4.क.(iv) लोकउपकरण
4.क.(v) खान-पान
4.क.(vi) रीति-रिवाज़
4.ख धार्मिक चेतना
4.ख.(i) लोकविश्वास
4.ख. (ii) रीति रिवाज
4.ख.(iii) अंधविश्वास
4.ख.(iv) भूत-प्रेत, जादु-टोना
4.ख.(v) रुढ़ियाँ, परम्पराएँ

पंचम अध्याय : हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों की भाषा एवं शिल्प विधान पृ : 231-276

5.क. भाषा-संरचना
5.क.(i) लोकभाषा का प्रयोग
5.क.(ii) शब्द भंडार
5.क.(iii) मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ
5.ख. शिल्प-विधान
5.ख.(i) अंचलकेन्द्रित कथावस्तु
5.ख.(ii) पात्रो का चरित्र चित्रण
5.ख.(iii) देशकाल-वातावरण

उपसंहार : पृ : 277-286

संदर्भ ग्रंथ सूची : पृ : 287-293

प्रथम अध्याय

आंचलिक उपन्यास स्वरूप-विवेचन

प्रथम अध्याय
आंचलिक उपन्यास : स्वरूप - विवेचन

हिन्दी साहित्य में आंचलिक उपन्यासों का व्यवस्थित स्वरूप सन 1954 के पश्चात् स्पष्ट हुआ। यद्यपि हिन्दी उपन्यास में आंचलिकता ते तत्त्व बहुत पहले से ही मिल जाते हैं, तो भी यह आंचलिकता एक नए रंगरूप और परिवेश में उपस्थित हुई है। उपन्यास-साहित्य में यथार्थ के आग्रह ने आंचलिक प्रवृत्ति को बल दिया। इस दृष्टि से गांव ओर नगर जितने महत्वपूर्ण हैं, उतनी यथार्थ हैं - आंचलिक जातियाँ और अंचल। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि यथार्थवादी कलाकार इस प्रवृत्ति की और उन्मुख हुए।

विभिन्न अंचलों में बिखरी हुई संस्कृति को सँजाने की दिशा में आंचलिक उपन्यासों ने पर्याप्त योग दिया है। आइए हम सर्वप्रथम आंचलिकता से संबंधित मूलभूत तथ्यों को जान लें। अंचल के लोकाचार, परम्परा, जाति-व्यवस्था, खान-पान, बोल-चाल, रहन-सहन, परंपराएँ आदि आंचलिक तत्त्वों के सम्मिश्रण से हिन्दी उपन्यास कला एक नई विधा के रूप में विकसित हो गई।

प्रत्येक लेखक ने अपने चिरपरिचित अंचल का यथातथ्य चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया और फलस्वरूप देश के अनेक ज्ञात-अज्ञात विशिष्ट अंचल अपनी भाषा, वेशभूषा, धर्म, जीवन, समाज संस्कृति, आर्थिक एवं राजनीतिक जागरण आदि प्रश्नों को लेकर हमारी संवेदनाओं के भागी बने। वस्तु और शैली में भी नवीनता आई। वस्तुतः आंचलिकता की यह प्रवृत्ति सामाजिक चेतना की एक अत्यंत स्वस्थ्य प्रवृत्ति सिद्ध हुई है। इसके माध्यम से ही हिन्दी उपन्यास को एक नई सक्रियता और उत्साह मिलता है। भारत के सभी अंचल एक दुसरे से भिन्न होते हुए भी किन्हीं अर्थों में अभिन्न हैं। यदि अंचल की तुलना की जाए तो प्रत्येक अंचल की अपनी विशेषताएँ हैं इसका कारण यह है कि यह अंचल एक विशिष्ट भौगोलिक पर्यावरण में स्थित है।

(क) आंचलिकता का अर्थ

'अंचल' शब्द का सीधा और स्पष्ट अर्थ है जनपद या प्रदेश विशेष। इस शब्द से एक वैशिष्ट्यपूर्ण भू-भाग का बोध होता है, जो अपनी कतिपय विशेषताओं जैसे भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक विशेषताओं, सामाजिक एवं आर्थिक दाँचों आदि के कारण अन्य प्रदेशों से पृथक दिखाई पड़ते हैं।

'अंचल' शब्द से आंचलिक विशेषण बना है तथा आंचलिक शब्द के साथ, ता प्रत्यय जुड़कर 'आंचलिकता' भाववाचक संज्ञा का निर्माण हुआ है। अंचल का कोशगत अर्थ या सामान्य बोलचाल की भाषा में अर्थ है-आंचल साड़ी का किनारा या छोर। भौगोलिक संदर्भ में इसका अर्थ है - जनपद, भूखंड अथवा देश का वह भाग जो सीमा के पास हो इत्यादि।साहित्यिक संदर्भ में इसका अर्थ है - किसी देश के भीतर के उस जनपद या भू-प्रदेश से है जिसका सामान्य नागरिक सुसभ्य,सुंसस्कृत जीवन के प्रभाव से अछूता हो, जिसकी अपनी लोकभाषा, विशिष्ट संस्कृति एवं लोक परंपराएँ हो तथा जिसकी अन्य अंचलों से पृथक पहचान की जा सकें। यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि 'अंचल' शब्द का यह अर्थ, इसके कोशगत अर्थ से भिन्न है।

आंचलिकता एक प्रवृति है जिसके मूल में, किसी विशिष्ट क्षेत्र के जन-जीवन को तटस्थ दृष्टि से देखने की प्रबल आकांक्षा विद्यमान रहती है। इस प्रवत्ति के पीछे एक विशिष्ट भू-भाग भी हो सकता है और उस पर रहनेवाला एक विशिष्ट समाज भी। किसी भी अंचल के बाह्य रूप से आंतरिक स्वरूप तक पहुंचने के लिए प्राकृतिक वातावरण, आंचलिक जीवनयापन एवं अंचलवासियों के मनोजगत् की जानकारी अनिवार्य है। इन सवके माध्यम से उस अंचल में व्याप्त चेतना अभिव्यक्त होती है। आंचलिक उपन्यासकार एक ऐसे समाज का साक्षात्कार करवाने का प्रयास करता है जो अपरिचित, अज्ञात एवं सभ्यता की दौड़ से पिछड़ चुका है। अंचल जीवन से संबंधित यह अपरिचित जीवन, प्रकृति की गोद में धूल और कीचड़ से सने, अपनी ही पीड़ाओं, अभावों में फलित एवं पुष्पित होते हैं।

'आंचलिक' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फणीश्वरनाथ रेणु ने सन् 1954 में प्रकाशित अपने उपन्यास 'मैला आंचल' की भूमिका में इस रूप में किया है-

"यह है मैला आंचल, एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया।पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है, ... मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर-इस उपन्यास-कथा का क्षेत्र बनाया है।"[1]

अंचल शब्द 'आंचलिक' और आंचलिकता से संबद्ध है जिसके कारण इन शब्दों में भी अंचल के लक्षणों विशेषताओं और तत्त्वों का समावेश मिलता है। इस संबंध में डॉ० शिवप्रसादसिंह का कहना है - "क्षेत्र या अंचल उस भौगोलिक खंड को कहते हैं जो सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सुगठित और विशिष्ट एक ऐसी इकाई को, जिसके निवासियों के रहन-सहन, प्रथाएँ-उत्सवादि, आदर्श और

आस्थाएँ, मौलिक मान्यताएँ तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ परस्पर समान और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतनी भिन्न हों कि उनके आधार पर यह क्षेत्र या अंचल-विशेष इसी प्रकार के दुसरे क्षेत्रों से एकदम अलग प्रतीत हो।इस प्रकार के अंचल या क्षेत्र के जीवन को अभिव्यक्त करने वाली रचना की हम आंचलिक कह सकते हैं।"[2] उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'आंचलिकता' शब्द में निहित स्थानीयता का विशिष्ट अर्थ बोध ही सामान्य उपन्यासों की श्रेणी से आंचलिक उपन्यासों को पृथक करता है।

प० राजनाथ पाण्डेय ने प्रत्येक भूमिभाग की मिट्‌टी की खास महक, उसमें पनपने वाली वनस्पतियों, पत्तों व फूलों में एक विशेष गंध तथा उसी के अनुरूप वहाँ के समस्त जीवों तथा मानवों में एक भिन्न मनस्थिति; जो अन्य भू-भागों की इन विशेषताओं से भिन्न विशिष्टता रखती है, को आंचलिकता स्वीकार किया है। यह गंध वहाँ के निवासियों की भाषा, आचार-विचार तथा मानसिकता में प्रतिविम्बित होती है।"[3]इसी प्रकार आदर्श सक्सेना ने एक जैसी बोली, व्यवहार, रहन-सहन, संस्कार ,लोक-कथाओं, लोक-गीतों एवं समस्याओं से ग्रस्त, एक सी जीवन-व्यवस्था से बंधें, पर्वत-श्रखंला के सहारे, नदी-कूल पर स्थित, सागर तट पर फैले ग्रामों को अंचल की संज्ञा दी है।"[4]

आंचलिकता को परिभाषित करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में लिखा है - 'आंचलिक शब्द प्रायः उपन्यास लेखन के प्रसंग में प्रयुक्त होता है।...... आंचलिक रचनाओं में कोई विशिष्ट अंचल व क्षेत्र या उसका कोई एक भाग या गाँव ही प्रतिपाद्य व विवेच्य होता है। इस प्रकार उपन्यास की कथा क्षेत्र सीमित हो जाता है।आंचलिकता की सिद्धि के लिए स्थानीय दृश्यों, प्रकृति,जलवायु, त्यौहार, लोकगीत, बातचीत का विशिष्ट ढंग, मुहावरें, लोकोक्तियाँ, भाषा व उच्चारण की विकृतियाँ, लोगों की स्वभावगत व व्यवहारगत विशेषताएँ, नैतिक मान्यताएँ आदि का समावेश बड़ी सावधानी से किया जाना अपेक्षित है।"[5]

'अंचल' शब्द अंग्रेजी के 'रीजन' शब्द का पयार्य है। इग्लैंड में सर्वप्रथम थामस हार्डी और आर्नल्ड बैनेट ने अपने-अपने उपन्यासों नें क्रमशः वेसक्स और 'स्टैफोर्ड शायर' नामक अंचलों के जनजीवन का यथातथ्य एवं बिस्बात्मक चित्रण किया था। इन दोनों ने अपने-अपने अंचलो में रहनेवाले लोगों की प्रकृति का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन किया था और उनके चरित्रों को यथार्थ एवं विश्वसनीय बनाने हेतु उनकी क्षेत्रीय बोलियों, रीति-रिवाजों, आचार-विचारों आदि का सजीव चित्रण किया था। हार्डी के उपन्यास में तो अंचल ही एक पात्र बन गया है। किंतु हिन्दी उपन्यास में आंचलिकता की प्रवृत्ति को अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव नहीं कहा जा सकता। आंचलिकता की प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य की मौलिक

प्रवृत्ति है, क्योंकि हमारी आंचलिकता देशी चीज़ है, इसकी अपनी पहचान है।

परिभाषा

आँचलिक उपन्यासों की एक निर्दिष्ट परिभाषा निश्चित करना अत्यंत दुष्कर कार्य है। अतः आँचलिक उपन्यासों की परिभाषा के संबंध में विद्वानों एवं समीक्षकों के विभिन्न विचारों पर दृष्टिपात करना तर्क संगत होगा।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार आँचलिक उपन्यासों का अर्थ इस प्रकार है "कुछ उपन्यासों में किसी प्रदेश विशेष का यथातथ्य और बिम्बात्मक चित्रण प्रधानता प्राप्त कर लेता है और उन्हें प्रादेशिक या आँचलिक कहा जाता है।"[6]

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने अपरिचित व अज्ञात जातियों के जन-जीवन में एक विशेष प्रकार का वैचित्रय, स्वच्छंद व्यवहार एवं आदिम मानव-प्रकृति को स्वीकार करते हुए इनका वैविध्यपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करनेवाले उपन्यासों को ही आंचलिक माना है।"[7]

इस परिभाषा में बाजपेयी जी ने अपरिचित और अज्ञात दो शब्दों के प्रयोग पर बल दिया है जिनके शब्दिक अर्थ से यह बोध होता है कि जिन भुमियों एवं जातियों से हम अज्ञात एवं अपरिचित है, उनके जनजीवन के विविध पहलुओं का अंकन करना ही आंचलिक उपन्यासकार का परम कर्तव्य है।

डॉ० सुवास ने आंचलिक उपन्यासों के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहा है- "आंचलिक उपन्यास अंचल के सम्पूर्ण वैशिष्ट्य का ऐसा संश्लिष्ट, वस्तुन्मुख, यथार्थ और समग्र वर्णन होता है जो सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक दूसरे शब्दों में जीवनगत विशेषताओं को विश्वसनीय बनाते हुए सामान्य की ओर अग्रसर होता है।"[8]

डॉ० रामदरश मिश्र ने आंचलिक उपन्यास का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि - "आंचलिक उपन्यास तो अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। उसका संबंध जनपद से होता है ऐसी नहीं, वह जनपद की ही कथा है।"[9]

डॉ० इन्दु प्रकाश पाण्डेय के अनुसार, आंचलिक उपन्यास की यही विशेषता है कि वह किसी स्थान के जीवन-सत्य को सफलता के साथ एकान्वित एवं केन्द्रित करता है जिससे एक विशिष्ट चित्र उत्पन्न होता है और जिसके चरित्र और घटनाएँ सामान्य से पृथक हो जाती हैं। एक पूरा का पूरा मानव-समुदाय अपनी विशिष्टताओं के साथ पाठक के सामने उभर आता है जिसमें व्यक्ति नहीं समूचा चित्रित

वर्ग महत्वपूर्ण हो उठता है।"[10]

डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार- "जिन उपन्यासों में स्थान विशेष के संपूर्ण वातावरण का सांग, संश्लिष्ट और निष्कपट रूप से स्थानीय विशेषताओं के साथ चित्र प्रस्तुत किया जाए, उन्हें आंचलिक उपन्यास कहेंगें।"[11] इस परिभाषा में वातावरण और स्थानीय विशेषताओं के सांगोपान वर्णन को महत्व दिया गया है।

डॉ० शशिभूषण सिंहल ने अंचल के सांस्कृतिक जीवन को संबोधित करते हुए कहा है कि - "आंचलिक उपन्यास समाज के क्षेत्र विशेष के सांस्कृतिक परिवेश को प्रस्तुत करता है। सामाजिक उपन्यास में देश के सामान्य सांस्कृतिक जीवन की झाँकी मिलती है किंतु आंचलिक उपन्यास प्रमुख सांस्कृतिक धारा में स्थित द्वीप सरीखे स्थिर प्रायः स्वतःपूर्ण अंचलों की लोक संस्कृति को अपना कथ्य बनाते है।"[12] इस परिभाषा में अंचल विशेष के सांस्कृतिक पक्ष पर विशेष बल दिया गया है।

डॉ० विद्याधर त्रिवेदी के विचार में - "आंचलिक उपन्यासकार अन्य उपन्यासकारों की भांति समस्त मानव समाज एवं अखंड भू-भाग को सामने रखकर अपनी रचना नहीं करता, बल्कि वह उसके लिए एक समाज विशेष एवं भू-खंड को ही आधार बना लेता है, जो समस्त मानव समाज एवं सम्पूर्ण भू-मंडल का अंग होते हुए भी अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण भिन्न जान पड़ता है।"[13]

प्रकाश वाजपेयी के अनुसार सीमित अंचल या क्षेत्र के सर्वांगीण जीवन को वस्तुन्मुखी दृष्टि से प्रस्तुत करने का उपक्रम आंचलिक उपन्यास कहलाता है।[14]

डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार- "आंचलिक उपन्यासों में किसी अँचल या प्रदेश विशेष के ग्रामीण वातावरण एवं लोक संस्कृति का चित्रण किया जाता है।"[15]

श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र का मानना है कि - "अंचल विशेष की भूमि तथा वहाँ की सांस्कृतिक व्यवस्था के प्रति गंभीर अनुभूति के फलस्वरूप आंचलिक उपन्यास लिखे जाते है।"[16]

डॉ० आदर्श सक्सेना ने एक जैसी बोली, व्यवहार, रहन-सहन, संस्कार,लोक-कथाओं,लोक गीतों एवं समस्याओं से ग्रस्त, एक-सी जीवन-व्यवस्था से बंधे,पर्वत-श्रृंखला के सहारे, नदी-कूल पर स्थित,सागर-तट पर फैले ग्रामों को अंचल की संज्ञा से अभिहित किया है।[17]

इसी प्रकार कुछ विदेशी विद्वानों ने आंचलिकता के विषय में अपने विचार और धारणाएँ प्रस्तुत की है जो आंचलिक उपन्यासों के स्वरूप को समझने में सहायक है।इस दिशा में फिलिज बेन्टले द्वारा

आंचलिकता के सम्बंध में दी गई परिभषा इस प्रकार है -

"आंचलिक उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है, जो एक विशिष्ट भाग, विशिष्ट क्षेत्र, विशिष्ट राष्ट्र पर केन्द्रित होता है और इस क्षेत्र के जीवन को इस प्रकार चित्रित करता है जिससे पाठक का ध्यान इस क्षेत्र की विशिष्टताओं की ओर खिंचता है और वह आसानी से उस क्षेत्र को अन्य स्थानों से अलग करके देख और समझ सकता है।"[18]

एक अन्य विद्वान अब्राहम ने आंचलिकता को स्पष्ट करते हुए अपने विचार कुछ इस प्रकार व्यक्त किए है - "आंचलिक उपन्यास किसी एक विशेष स्थान (Locality) की पृष्ठभूमि (Setting), बोली और रीति-रिवाज़ को केवल स्थानीय रंगत के रूप में नहीं, बल्कि महत्वपूर्ण अंर्तदशा के रूप में चित्रित करते हैं, जो पात्रों के स्वभाव, सोचने-विचार ने के दंग तथा भावनाओं एवं व्यवहार को प्रभावित करती हैं।"[19]

एनसाईक्लोपिडीया अमेरीकाना के अनुसार - "आंचलिक साहित्य के पारिभाषिक शब्द का उपयोग विभिन्न प्रकार की साहित्यिक रचनाओं और आंदोलनों के संबंध में किया जाता है जो मानवीय उपलब्धियों पर आनुषंगिक वातावरण की विधायक शक्ति को स्वीकृत करते हैं और उन विशिष्ट गुणों को सही-सही प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं जिन्हें किसी निश्चित स्थान के भोगोलिक एवं सांस्कृतिक इतिहास ने वहाँ के निवासियों के जीवन में उतार दिया है।"[20]

इनके पश्चात् कुछ असमिया विद्वानों द्वारा अभिव्यक्त, आंचलिक परिभाषाओं पर प्रकाश डालेगें, जो आंचलिकता की प्रकृति को समझने में सहायक सिद्ध होगें।

असमिया साहित्य के इतिहास में आंचलिक उपन्यास नामक कोई निश्चित धारा नहीं है। फिर भी गोविन्द प्रसाद कृत 'उपन्यास आरू असमिया उपन्यास तथा डॉ० प्रदीप कुमार बरूआ कृत 'आधुनिक उपन्यासर शिल्परीति' में हमें असमिया आंचलिक उपन्यासों के विषय में थोड़ी बहुत जानकारी अवश्य मिल जाती है। गोविन्द प्रसाद शर्मा जी का आंचलिक उपन्यासों के बारे में यह मत है कि - "एक अंचल को केन्द्र बनाकर (पृष्ठभूमि एवं विषयवस्तु), जिन उपन्यासों की रचना की जाती है उन्हें आंचलिक उपन्यास कहते हैं। आंचलिक उपन्यासों में अंचल ही ऐसी भूमिका निभाता है, जिससे उस अंचल की रीति-नीति,वेशभूषा,भाषा, लोकविश्वास, धार्मिक विश्वास आदि प्रतिफलित होते है।[21] इसके अलावा उनका यह मानना है कि यह आवश्यक नहीं है कि जिस अंचल का वर्णन किया जा रहा हो वह वास्तविक ही हो, ऐसे भी उपन्यास है जिनमें किसी अंचल की पृष्ठभूमि तो वास्तविक होती है परतुं वह अंचल

काल्पनिक। उदाहरण - कपिली परीया साधु।

डॉ० प्रदीप कुमार वरूआ ने आंचलिक उपन्यासों की कोई निश्चित परिभाषा तो नहीं दी है, परतुं उनका मानना है कि आंचलिकता की पहली शर्त उसका भौगोलिक परिवेश है।भौगोलिक परिवेश ही किसी विशिष्ट अंचल में रहने वाले मनुष्यों की शारीरिक बनावट, खान-पान, पहनावा, सोच-विचार और भाषा-संस्कृति के निर्माण में सहायता करता है।[22]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम आंचलिक उपन्यासों की कुछ प्रमुख विशेषताओं और निष्कर्ष पर पहुँचते है -

1) आंचलिक उपन्यास भी एक उपन्यास है, जिसमें किसी विशिष्ट अंचल या क्षेत्र के बहुआयामी जनजीवन को यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया जाता है।

2) इसी विशिष्टता के कारण अंचल विशेष का रहन-सहन, जीवन-यापन, खान-पान,संस्कार धर्म, उत्सव-त्योहार वेशभूषा तथा रीति-रिवाज अपना एक पृथक रूप धारण कर लेती है।

3) आंचलिक उपन्यासकारों ने देश के दूर-दराज कोनों तक बिखरी जन-जातियों और लोक-जीवन को अपने उपन्यासों का कथाक्षेत्र बनाया।

4) आंचलिक उपन्यासों में, कथानक प्रायः गौण और वातावरण प्रधान है। वस्तुत कथानक की समग्रता का आग्रह भी इनमें नहीं है, केवल अनेकानेक संवेध। चित्रों के द्वारा जन-जीवन की गतिविधियों की व्यंजना इनमें होती है।

5) आंचलिक उपन्यासों में, अधिकांशतः अंचल विशेष ही नायक होता है। अतः अंचल-स्वयं ही नायाक का साकार रूप है। पात्र अधिक संघर्षशील और प्रभावी चेतना से संपन्न भी होते हैं। इन पात्रों के संवादों में जनपदीय भाषा या लोकभाषा का बाहुल्य होता है। सामूहिक संवाद इनकी खास विशेषता हैं।

6) आंचलिक उपन्यास अंचल-विशेष की क्षेत्रीय-भौगोलिक संस्कृति का, उनके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में, सहज अध्ययन है। इसलिए इनमें स्थानीय रंग का समावेश अनिवार्य है।

7) आंचलिक उपन्यासों में अचंल-विशेष का जीवन ही नहीं, बल्कि इनका शिल्प-विधान, भाषा- बोली भी अन्य उपन्यासों से भिन्न है। अतः सीमित अंचल, स्वांगीण जीवन, वस्तुन्मुखी चित्रण एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण ही आंचलिकता की विशिष्टता है।

8) आंचलिक उपन्यास स्थान और समय में समान रूप से जीता है तथा अन्य तत्त्वों की अपेक्षा परिवेश-

तत्त्व की महत्ता अधिक होती है।

9) आंचलिक उपन्यासों का उद्देश्य अंचल-विशेष को उसकी समग्रता में चित्रित करना होता है तथा प्राचीन अंचल संस्कृति की चेतना को विलुप्त होने से बचाना है, क्योंकि यह अज्ञात अंचल हमारी राष्ट्रीयता के प्रतीक है।

10) आंचलिक उपन्यासकार छोटे-छोटे अपरिचित अज्ञात भूखण्डों में रहने वाले सामान्य जनों के बहुआयामी जीवन से परिचय करवाता है जिससे राष्ट्र की अखण्डता की नींव सशक्त बनती है।

आंचलिक उपन्यासों के तत्त्व

आंचलिक उपन्यास भी एक उपन्यास ही है, अतः उपन्यास में विद्यमान तत्त्व, एवं लक्षण आंचलिक उपन्यास में भी समान रूप से पाए जाते है।अतंर केवल इन उपन्यासों की अचंल-केन्द्रित दृष्टि का है जो अंचल को ही उपन्यास के सभी तत्त्वों का केन्द्रबिन्दु बना देती है। सामान्य रूप से सभी उपन्यासों के छह तत्त्व माने गए है, जिनमें (1) कथानक, (2) पात्र या चरित्र-चित्रण, (3) कथोपकथन, (4) वातावरण और देशकाल, (5) शैली,शिल्प, (6) उद्देश्य है। आंचलिक उपन्यासों के छहों तत्त्वों में आंचलिकता प्रधान रूप से केन्द्रित रहती है। उपन्यास में देश, काल और वातावरण प्रधान लक्ष्य न होकर सहायक तत्त्व होता है जबकि आंचलिक उपन्यासों में वह प्रधान लक्ष्य बन गया है। आंचलिक उपन्यास इसी अर्थ में नवीन उपलब्धि है और इनका मूल तत्त्व आंचलिकता ही है। इस प्रकार आंचलिक उपन्यासों के तत्त्व निम्नलिखित है-

आंचलिक कथावस्तु - आंचलिक उपन्यासों की सर्वप्रथम विशेषता है- उसका आंचलिक होना। इन उपन्यासों का कथानक पात्र या उद्देश्य विशेष न होकर एक विशिष्ट भू-भाग होता है। अतः कथानक अंचल-केन्द्रित होता है। अंचल-केन्द्रित कहने का तात्पर्य, उस अंचल विशेष के निवासियों के विशिष्ट जीवन पद्धति से है- वह जीवन जो अनेक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक विषमताओं से निर्मित हुआ है।

आंचलिक उपन्यासकार कथावस्तु की बुनावट के लिए मुख्य रूप से उसी अंचल को लेता है जिसके साथ उसका बार-बार साक्षात्कार होता है तथा जिसके जन-जीवन और जनमानस के साथ वह आत्मीयता और संवेदना के स्तर पर गहराई से जुड़ा भी होता है। आंचलिक उपन्यासकार जिस कथा की रचना करता है, वह उस अंचल के बारे में नहीं होती बल्कि उस अंचल की ही कथा होती है।

आंचलिक उपन्यासों की कथावस्तु अन्य उपन्यासों से कथावस्तु अन्य उपन्यासों से अपनी विशिष्ट संस्कृति, जीवन प्रवृति, प्राकृतिक वैभव के कारण भिन्न प्रतीत होती है तथा इन्हीं विशेषताओं के कारण वह अंचल अन्य अंचलों से पृथक दिखाई देता है। 'मैला आंचल' की कथाभूमि 'मेरीगंज' गाँव अपनी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवेश तथा अन्य कई विशेषताओं के कारण पूर्णिया ज़िले के अन्य गाँवों से भिन्न प्रतीत होता है। इसी प्रकार असमिया आंचलिक उपन्यास 'नोई बोई जाए' का सेंदुरीपाम गाँव शिवसागर जिले के अन्य गाँवों से अपनी विशिष्ट जीवनगत विशेषताओं के कारण अपनी अलग पहचान रखता है।

आंचलिक उपन्यासों की कथावस्तु भिन्न-भिन्न होती है। कुछ ऐसे उपन्यास है जो ग्राम-केन्द्रित होते है जैसे 'मैला आंचल'का मेरीगंज गांव। इसी प्रकार कुछ आंचलिक उपन्यासों की कथावस्तु किसी स्थान-विशेष में रहनेवाले लोगों की विशिष्ट जीवन पद्धति या किसी विशेष वर्ग से संबंधित होती है, जिसका मुख्य आधार लोक जीवन है। रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ' में ब्रज क्षेत्र के नटों के जीवन के संशिलिष्ट यथार्थ को उभारने का प्रयास किया गया है।वहीं दुसरी ओर असमिया आंचलिक उपन्यास 'रंगमिलीर हाँही' में कारबी जनसमुदाय की विशिष्ट संस्कृति, मान्यताएँ एवं जीवन पद्धति का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

आंचलिक उपन्यासों की कथावस्तु में हमें दो प्रकार की विशेषताएँ देखने मिलती है एक, कथागत बिखराव और दूसरा जीवनगत बिखराव। कथानक बिखराव उन आंचलिक उपन्यासों में पायी जाती है जिनमें अनेक कथाएँ, अनेक पात्र और चरित्र होते है। यहाँ उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य किसी विशिष्ट अंचल के बहु आयामी जीवन के विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक पहलुओं का चित्र, उपस्थित करना होता है।इसी कारण उसे अनेक कथाओं,उपकथाओं का संयोजन करना पड़ता है। अनेक कथाओं के कारण केन्द्रीय कथा का अभाव रहता है तथा कथानक अनेक दिशाओं में फैली होती है। जैसे 'मैला आंचल' में भी अनेक कथाएँ है - बालदेव की कथा, डॉ० प्रशांत की कथा, कालीचरण और लछमी की कथा आदि। जीवनगत बिखराव उन आंचलिक उपन्यासों में पायी जाती है जिनमें कुछ विशेष पात्रों की जीवनगत पहलुओं को केन्द्र में रखा जाता है। इस प्रकार के बिखराव में कथा अधिकतर चरित्र-प्रधान हो जाती है। जैसे 'रतिनाथ की चाची' में यूँ तो मिथिला के कथांचल को प्रस्तुत किया गया है, परतुं रतिनाथ ओर उसकी चाची दोनों ही महत्वपूर्ण बन गए है। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि

आंचलिक उपन्यासों का कथानक अंचल से प्रारंभ होकर अंचल में ही विलीन होने वाले जीवन की कथा कहता है।

आंचलिक पात्र एवं चरित्र-चित्रण - किसी भी उपन्यासकार के लिए आवश्यक है कि वह मानव चरित्र पर प्रकाश डालें और उसके रहस्यों को खोलता हुआ मानव-जीवन को मंगलमय बनाने में योग दें।इन्हीं मान्यताओं के अनुरूप उपन्यासकार उपन्यासों में पात्रों की सृष्टि करता है। चरित्र की सजीवता एवं गंभीरता ही उपन्यास के प्राण तत्त्व है।वैसे तो सभी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण महत्वपूर्ण होते हैं, किंतु आंचलिक उपन्यासों में इसकी विशिष्ट स्थिति होती है,क्योंकि इन उपन्यासों का उद्देश्य व्यक्ति विशेष की कहानी कहना नहीं, बल्कि संपूर्ण अंचल की कहानी कहना होता है।संपूर्ण अंचल ही नायक बन जाता है।नायक-शून्यता आंचलिक उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है। इस संबंध में डॉ० रामदरश मिश्र का यह कथन सर्वथा उपयुक्त जान पड़ता है-"अंचल की विविधता को रूप देने के लिए लेखक कभी इस कोण पर खड़ा होता है, कभी उस कोण पर, कभी ऊँचाई पर, कभी निचाई पर। इनमें अनेक पात्रों की आवश्यकता रहती है। हर पात्र की सत्ता का महत्व है। इसमें कोई पात्र एक-दूसरे के निर्मित नहीं होता, वे सब अंचल के निमित्त होते हैं।"[23]

आंचलिक उपन्यासों के पात्र अंचलीय विशषताओं से संपन्न होते है। वस्तुतः आंचलिक उपन्यासों में अंचल स्वयं एक नायक बन जाता है और इस विशिष्ट पात्र के बाहरी व्यक्तित्व एवं आंतरिक चेतना को उभारकार पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करना ही लेखक का प्रधान लक्ष्य बन जाता है। इस प्रकार लेखक उस अंचल विशेष की भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक वैभव का सजीव वर्णन करके उसके बाहरी व्यक्तित्व का चित्र प्रस्तुत करता है तथा दूसरी ओर वहाँ के निवासियों के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों का अंकन करके उस अंचल के आंतरिक चेतना को उद्घाटित करता है। आंचलिक उपन्यासों में पात्रों की संख्या अधिक होती है। अंचल के समग्र जीवन को चित्रित करने के लिए आंचलिक उपन्यासकार को अनेक प्रसंगों की योजना करनी पड़ती है, जिससे आंचलिक जीवन के विविध पक्षों का कोई भी कोना छूट ना जाए। आंचलिक उपन्यासों में पात्रों के महत्व को निरूपित करते हुए डॉ० सुषमा प्रियदर्शिनी का मत है कि-

"आंचलिक उपन्यासकार के पात्रों के रूपाकार में स्थानीय विशेषता और बहिरंग में स्थानीय वेशभूषा की अनिवार्यता परिलक्षित होती है। इन पात्रों में अंचल का अंतरंग आत्म और बाह्म जीवित रूपाकर का ही

मानवीकरण होता है, इसलिए वे जीवित और चेतन होते हैं। उपन्यास में अंकित जीवन को वे स्वयं जीते हैं। केवल प्रतिनिधित्व ही नहीं करते, वरन् उसे गति भी प्रदान करते है।"[24]

जैसा कि यह स्पष्ट किया जा चुका है कि आंचलिक उपन्यासों की प्रमुख विशेषता नायक-विहीनता है, क्योंकि सम्पूर्ण अंचल ही नायक की भूमिका निभाता है। इन उपन्यासों का प्रमुख अंचल भू-भाग ही है और प्रमुख चरित्र अंचल जनजीवन है। इस संबंध में डॉ० ज्ञानचंद गुप्त का मत है कि - "परिवेश की मिट्टी से गढ़े हुए पात्र लेखकीय आवश्यकता का निर्वाह करने आता है और चला जाता है। कोई पात्र आदि से अतं तक आवश्यक है तो कोई मात्र कुछ क्षण ही। समय की अवधि उन्हें विशिष्ट और सामान्य में नहीं बाँटती। विशिष्ट भू-भाग का व्यक्तित्व-निर्माण ही उनका लक्ष्य होता है और उसी को चित्रित करने के लिए विभिन्न छोटे-बड़े पात्रों का नियोजन होता है................ उनका महत्व भी लगभग समान होता है।"[25]

आंचलिक उपन्यासों के पात्रों को उनके चरित्र विश्लेषण की सुविधा के लिए तीन वर्गों- उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग में बाँटा जा सकता है।परतुं आंचलिक उपन्यासों में न तो कोई शास्त्रीय ढंग का नायक होता है और न गौण पात्र। इसमें व्यक्ति चरित्र का पूर्ण अभाव होता है, क्योंकि यह परपरागत उपन्यासों के केन्द्र में रहने वाले नायक की परम्परा से भिन्न है, इसलिए अंचल ही इन उपन्यासों का नायक एवं केन्द्रबिन्दु है। आंचलिक पात्रों में किसी का सामान्य चरित्र होता है तो किसी का असामान्य। कोई विकसित चरित्र है तो कोई अविकसित। कोई गुणों से सम्पन्न है तो किसी में अवगुणों की मात्रा अधिक है। अंत में यह कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यासों के पात्र और उनका चरित्र-चित्रण अंचल जीवन की समग्रता को प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

आंचलिक देशकाल या वातावरण - उपन्यास में देशकाल या वातावरण के यथार्थ चित्रण से ही स्वाभाविकता आती है। आंचलिक उपन्यासों में अन्य तत्वों से अधिक परिवेश तत्वों को अधिक महत्व दिया जाता है। इन उपन्यासों में वातावरण का चित्रण पात्रों और कथा को वास्तविकता प्रदान करने के लिए केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं किया जाता, बल्कि इसके द्वारा यथार्थ जीवन का बोध कराने का प्रयास किया जाता है। यहाँ अंचल अपने सम्पूर्ण परिवेश के साथ उपस्थित होता है। आंचलिक उपन्यासों में देश या स्थान सीमित अंचल होता है। आदर्श सकसेना के अनुसार - "यह स्थान एक भौगोलिक इकाई होता है। भौगोलिक इसलिए कि उसकी भूमि पर स्थिति होती है, और सामाजिक इसलिए कि उस समाज की

अपनी विशेषताएँ होती है।वातावरण भौतिक विशेषताओं से उत्पन्न एक अभौतिक वस्तु होती है जो अनुभूति द्वारा ही अनुभव की जा सकती है। जिस समाज में मनुष्य रहता है उसके वातावरण के प्रभाव से वह मुक्त नहीं रह सकता, इस दृष्टि से वातावरण एक संसर्गात्मक शक्ति है।"[26]

अंचल विशेष की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक परिवेश तथा उस विशिष्ट समय में वहाँ के सामान्य जनों की सामाजिक स्थिति और सांस्कृतिक परिवेश के मेल से ही उस अंचल विशेष के वातावरण का निर्माण होता है।आंचलिक उपन्यासों में देशकाल या वातावरण की महता को स्पष्ट करते हुए पूर्णदेव का मत है कि, "अंचल का वैशिष्टय उसकी स्थानीय रंगत में ही है और इस स्थानीय रंगत के वातावरण को विश्वसनीय तथा सजीव बनाने के लिए उस अंचल विशेष की लोक-कथाएँ और लोक-गीत-कथाएँ,लोक-गीत, लोक-पहेलियाँ कहावतें, लोकभाषा आदि मिलकर लोक-जीवन की समग्रता का वातावरण प्रस्तुत कर देती हैं। इसमें सबसे अधिक योग स्थानीय बोली का होता है जो समान कथन को अंचल का वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। स्थानीय रंगत की प्रगाढ़ता ही एक अंचल को दूसरे अंचल से अलग करती है।"[27] उपरोक्त विवेचंन के आधार पर स्पष्ट है कि आंचलिक उपन्यासों में देशकाल व वातावरण सर्वोपरि विधायक तत्त्व है।

आंचलिक भाषा - अपने मन के भावों और विचारों को दूसरे तक पहुँचाने का सशक्त एवं व्यावहारिक माध्यम है-भाषा। आंचलिक उपन्यासों में भाषा का महत्व और अधिक बढ़ जाता है क्योंकि इसी तत्त्व के कारण हम एक अंचल को दूसरे अंचल से भिन्न और अलग रूप में देख पाते हैं। इन उपन्यासों की पहचान उसकी विशिष्ट प्रकार की भाषा है। आंचलिक उपन्यास मुख्यतः लोक जीवन पर आधारित होते हैं, अतः इनमें स्थानीय शब्दों और बोलियों का प्रयोग बहुत खुलकर हुआ है। यही कारण है कि पात्रा हैं, अतः इनमें स्थानीय शब्दों और बोलियों का प्रयोग बहुत खुलकर हुआ है। यही कारण है कि पात्रों का वार्त्तालाप अधिकतर स्थानीय भाषा के शब्दों से ही कराया जाता है।आंचलिक उपन्यासों में भाषा-प्रयोग के दो रूप मिलते हैं- लेखक की भाषा तथा पात्रों की भाषा।लेखक की भाषा में प्रायः एकरूपता दिखाई पड़ती है जबकि पात्रों की भाषा उनके परिवेश, शिक्षा,रहन-सहन, व्यवसाय आदि के आधार परे निरंतर परिवर्तनशील है। अछूते अंचल के विस्तृत जीवन-परिवेश और जनमानस की सच्ची अनुभूतियों को वाणी देने के आंचलिक उपन्यासकारों ने परंपरागत भाषा के स्थान पर स्थानीय बोली के शब्दों,मुहावरों,लोकोक्तियों,प्रतीकों आदि का प्रयोग किया।

किसी भी अंचल के विविध पहलुओं को समझने में स्थानीय रंगत से सहायता मिलती है। इस स्थानीय रंगत के कारण ही एक अंचल दूसरे अंचल से पृथक दिखायी देता है।अंचल विशेष के स्थानीय रंगत को सजीवता प्रदान करने में इन उपन्यासकार जिन लोंक तत्त्वों की अपनाता है, उनमें लोक भाषा,बोली, उपबोलियों का विशेष स्थान है। लोकभाषा का निर्माण लोक गीत, लोक कहावतें, लोक मुहावरे आदि के मेल से होता है। दूसरे शब्दो में कहे तो ये सभी तत्त्व लोकभाषा के विविध उपादान है। लोकभाषा के अभाव में अंचल विशेष का यथार्थ परिवेश अपनी पूरी स्वाभिकता के साथ निरूपित नहीं किया जा सकता। अंचल विशेष के जीवंत परिवेश तथा वहाँ के निवासियों की सच्ची अनुभूतियों, संस्कारों को वाणी देने के लिए आंचलिक उपन्यासकारों ने परंपरागत भाषा के स्थान पर स्थानीय बोली के शब्दों, मुहावरों, प्रतीकों आदि का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया। आंचलिक भाषा के प्रयोग द्वारा अंचल विशेष में रहनेवाले लोगों के जीवन से जुड़े हुए हर्ष, दुख, संघर्ष आदि को उन्हीं की भाषा-बोली में अभिव्यक्त करना सहज बन जाता है।

आंचलिक शैली एवं शिल्प - हिन्दी उपन्यास में 'शैली' शब्द का प्रयोग अँग्रेज़ी के 'स्टाइल' शब्द के पर्यायवाची के रूप में किया जाता है। डॉ० श्यामसुंदरदास भाषा को शैली का मूलाधार मानते हुए कहते हैं - 'भाषा ऐसे शब्द-समूहों का नाम है जो एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने तथा उसके द्वारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होती है। अतएव भाषा का मूलाधार शब्द है, जिन्हें उपयुक्त रीति से प्रयुक्त करने के कौशल को ही शैली का मूल तत्त्व समझना चाहिए, अर्थात किसी लेखक या कवि की शब्द-योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उसकी ध्वनि आदि का नाम ही शैली है।[28] वास्तव में शैली एक विशिष्ट रचना है जिसमें लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। बफन की यह उक्ति बहुत प्रसिद्ध है कि "शैली व्यक्ति ही तो है। हडसन के अनुसार 'शैली अपने मूल में एक वैयक्तिक गुण है।' जिस प्रकार भाषा के अभाव में साहित्यिक अभिव्यक्ति असंभव है, उसी प्रकार अभिव्यक्ति के अभाव में शैली का अस्तित्व भी असंभव है। शैली शब्दों और भाषा के द्वारा निर्धारित होती है।

आंचलिकता की प्रवृत्ति ने शैली के क्षेत्र में एक नवीनता पैदा की है। इसमें लेखक तटस्थ रहता है और अंचल की कथा अंचलीय पात्रों के दृष्टिकोण से ही कही जाती है।आंचलिक उपन्यासों में अंचल जनजीवन की घटनाओं का चित्रण फोटोग्राफिक शैली में हुआ है। साधारण उपन्यासों की प्रमुख शैलियाँ

है - इतिवृत्तात्मक या ऐतिहासिक शैली, डायरी शैली, आत्मकथात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, रिपोतार्ज शैली आदि। आंचलिक उपन्यासों में प्रायः सभी शैलियों का प्रयोग किया जाता है।'कब तक पुकारूँ',बलचनमा आदि में आत्मकथात्मक शैली को अपनाया गया है तो 'सागर,लहरें और मनुष्य', 'अलग-अलग वैतरणी', 'आधा गाँव' में इतिवृतात्मक शैली को। इसी प्रकार 'मैला आंचल' में रिपोर्ताज शैली का नया प्रयोग दिखाई पड़ता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि विशिष्ट प्रकार की आंचलिक भाषा-शैली के कारण ही आंचलिक उपन्यास, अन्य उपन्यासों से भिन्न प्रतीत होता है।

आंचलिकता का उद्देश्य - प्रत्येक साहित्यिक कृति की रचना के मूल में कृतिकार का कोई-न-कोई उद्देश्य या संदेश निहित रहता है। कभी-कभी यह संदेश स्पष्टया परिल- क्षित हो जाता है और कभी छिपा हुआ रहता है। आंचलिक उपन्यासों में अंचल भू-भाग का समग्र जीवन अभिव्यंजित रहता है, जो आंचलिकता को अभिव्यक्त करता है। आंचलिक उपन्यासकार का प्रमुख उद्देश्य अंचल विशेष के भौगोलिक और प्राकृतिक परिवेश का यथार्थ चित्रण करके उसके बाहरी स्वरूप को प्रस्तुत करने के साथ-साथ वहाँ के निवासियों के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का अंकन करके उस अंचल के आंतरिक स्वरूप को भी निर्धारित करना है।जवाहरसिहं ने आंचलिक उपन्यासों के उद्देश्य को प्रतिफलित करते हुए कहा है कि - "आंचलिक उपन्यास युग-युग से उपेक्षित,तिरस्कृत, शोषित और प्रताड़ित इन्हीं लघु मानवों-सामान्यजनों- का मानवीय प्रतिष्ठा,यानवोचित जीवन तथा मानव-अधिकार प्राप्त करने की दिशा में किए गए तथा किये जाते हुए संघर्षो की व्यथा-कथा कहते हैं।इस व्यथा-कथा में कीचड़ भी हैं, कमल भी, धूल भी है,फूल भी,स्वार्थ भी है,उदारता भी, टूटन भी है, आस्था भी, लेकिन इन सबसे भी बड़ी दो चीज़े हैं- मानव की जिजीविषा और जिगीषा। इसलिए यह कहना अधिक सार्थक है कि आंचलिक उपन्यासों की सर्जनात्मक प्रेरणा के मूल में मानव है, केन्द्र में मानव है और परिधि में भी मानव ही है-और है मानव कल्याण की भावना, मानवता की भावना, मानव की प्रगति और विकास की कामना, मानव-मूल्यों की स्थापना का संकल्प।"[29]

आंचलिकता का स्वरूप

आंचलिकता की प्रवत्ति हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक नवीन एवं मौलिक प्रवृत्ति है। आंचलिक उपन्यासों में जनपदीय क्षेत्रों के विशिष्ट जीवन एवं संस्कृति को उज़ागर करते हुए उनकी महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। अँचल का जनजीवन,रहन-सहन, आचार-विचार, अन्य देशीय जीवन के

अज्ञात है, अपरिचित है, सभ्यता की दौड़ से पिछड़े हुए है। अतः मानव जीवन को निकट लाने एवं पुनः विस्थापित करने हेतु आंचलिक उपन्यासकारों का योगदान उल्लेखनीय है। प्रत्येक आंचलिक उपन्यासकार अपने चिर-परिचत अंचल के सरल-सहज जीवन, सामाजिक मान्यताओं, लोकविश्वासों, सांस्कृतिक परिवेश को आत्मीयता के साथ पाठकों के सम्मुख रखता है जिसके फलस्वरूप विभिन्न अंचलों की संस्कृति,धर्म, भाषा, बोली, समाज आदि हमारी संवेदनाओं से जुड़ जाती है। इस प्रकार आंचलिक उपन्यास हमारी राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है।

आंचलिक उपन्यास व्यक्तिवादी उपन्यासों की प्रतिक्रियास्वरूप अस्तित्व में आए। आंचलिकता की मांग थी कि जनपदीय भाषाओं एवं ग्रामीण जीवन को महत्व दिया जाए। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के अनुसार,"आंचलिक उपन्यास वस्तुतः सामाजिक उपन्यासों की प्रतिक्रिया में, बल्कि विद्रोह में निर्मित हुए हैं। जब सामाजिक उपन्यास में नागरिक जीवन को चित्रित करते-करते उपन्यासकार थक गए और जब पाठकों का समुदाय उन घिसे-पिटे और अंशतः रूढ़ नागरिक चित्रणों से ऊब उठा, तब नए अज्ञात जीवन और दूरवर्ती प्रदेशों के अपरिचित क्षेत्रों से संबंधित उपन्यास लिखे गए।"[30] आंचलिकता के विकास में प्रगतिवादी आंदोलन का प्रमुख योगदान रहा है। इस संबंध में सुवास कुमार का मत है - 'आंचलिक उपन्यासों के प्रादुर्भाव का एक बड़ा कारण सामाजिक उपन्यासों में ग्राम तथा नगर-चित्रण की रूढ़िवादिता तथा एकरसता भी रही है। इसकी प्रतिक्रिया में रेणु उपन्यास को मध्यवर्ग की मानसिकता से बाहर गाँव के कीचड़-कादों में, निम्नवर्गीय जीवन में, खींच ले गए। इससे उपन्यास विधा को नई जीवनशक्ति और ऊर्जा मिली।"[31]

वर्तमान युग में अधिकतर उपन्यास किसी एक विशिष्ट विचार-धारा से प्रभावित होकर लिखे जा रहे है, तथा उपन्यासकारों द्वारा असत्य को सत्य का चोला पहनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। ऐसी स्थिति में आंचलिक कथाकारों ने किसी अंचल विशेष के भू-भाग की संस्कृति,रीति-नीति,जनजीवन के विविध रूपों, रहन-सहन, सामाजिक-आर्थिक विषमताओं एवं जीवनादर्शों को बड़ी ही सरलता और आत्मीयता के साथ अभिव्यक्त किया है। डॉ० रामदरश मिश्र ने आंचलिक उपन्यासों की महत्ता को निरूपित करते हुए लिखा है - "जैसे नई कविता ने सच्चाई से भोगे हुए, अनुभव की भटटी में तपे हुए पलों को व्यंजित करने में ही कविता की सुंदरता देखी, वैसे ही उपन्यासों के क्षेत्र में आंचलिक उपन्यासों ने अनुभवहीन सामान्य या विराट् के पीछे न दौड़कर अनुभव की सीमा में आनेवाले अँचल विशेष को

उपन्यास का क्षेत्र बनाया।"[32]

हिन्दी उपन्यास साहित्य में आंचलिकता का समावेश अपने सीमित रूप में प्रेमचंद के पूर्व ही हो चुका था, परंतु उसका वास्तविक विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुआ। प्रेमचंद और उनके युग के उपन्यासकारों ने सामाजिक कल्याण के उद्देश्य से साहित्य को कल्पना से दूर करके यथार्थ की भूमि पर स्थापित किया। लेकिन प्रेमचंद युग के अधिकतर उपन्यासकारों ने उपन्यासों में स्थानीय रंगत और स्थानीय बोली का प्रयोग केवल सामाजिक और ऐतिहासिक यथार्थ को उकेरने के लिए किया गया था न कि अंचल विशेष के बहुआयामी व्यावाहारिक जीवन की जटिलताओं एवं संस्कृति को उदघाटित करने के लिए। अतः उपन्यासों की विषयवस्तु एवं आदर्शवादिता की पुरानी परिपाटी को त्यागकर सामाजिक यथार्थ को प्रत्यक्ष करने के उद्देश्य से आंचलिक उपन्यास लिखे गए। यह उल्लेखनीय है कि अपने सीमित रूप में आंचलिक उपन्यास प्रेमचंद की परम्परा के परवर्ती विकास है जो स्वतत्रंता प्राप्ति के पश्चात् अपने व्यापक उद्देश्य, सामाजिक चेतना को पल्लवित करने में सक्षम सिद्ध हुई। आंचलिकता का वास्तविक पल्लवन नागार्जुन के 'बलचनमा' एवं रेणु के 'मैला आँचल' के प्रकाशन के बाद हुआ।

आंचलिक उपन्यासों को सही दिशा प्रदान करने में फणीश्वरनाथ रेणु का योगदान अविस्मरणीय है। रेणु से पहले नागार्जुन के उपन्यासों में भी आंचलिकता के पुट मिलते है। लेकिन इन उपन्यासों में अंचल विशेष के पात्र और घटनाओं को महत्व दिया गया है अंचल की समग्रता को नहीं। रेणु के आंचलिक उपन्यास किसी अंचल विशेष गाँव से संबंधित होते हैं, जिसकी भौगोलिक परिवेश,रीति-नीति,मान्यताएँ,सांस्कृतिक जीवन, धार्मिक क्रिया-कलाप, लोक जीवन आदि दूसरे किसी अंचल से भिन्न होते हैं। आंचलिक उपन्यासों के क्षेत्र में फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' (1954) का प्रकाशन हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक अद्‌भुत घटना मानी जाती है। रेणु ने इस उपन्यास में आंचलिकता के विभिन्न संदर्भों को उजागर किया। आंचलिक उपन्यासों की बनावट, अन्य औपन्यासिक प्रवृति की भांति मानव के जीवन को प्रभावित करने वाले समस्त आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक पहलुओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। आंचलिक उपन्यास तो अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। इन्हीं विशेषताओं के कारण आंचलिक उपन्यासों ने हिन्दी साहित्य को नवीन मोड़ प्रदान करने के साथ ही एक पृथक अस्तित्व प्रदान किया है। आंचलिक उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य अंचल का गुणगान करने के साथ-साथ, अंचल और अन्य प्रदेशों को एक दुसरे के निकट लाना है,

जिससे दोनों के बीच सांस्कृतिक एकता फलित एवं पुष्पित हो सकें।

आंचलिकता का क्षेत्र अपने आप में एक व्यापक परिधि को समेटता है।'आंचलिकता' की अर्थ - सीमा निर्धारित करने के प्रश्न पर विद्वानों में प्रायः मतभेद है। कई आलोचक अंचल को ग्राम अर्थ तक ही सीमित करने के पक्ष में है, तो कई समीक्षकों का यह मानना है कि नगर जीवन से संबंधित कथानक भी आंचलिक उपन्यास का केन्द्र बन सकती है। आंचलिक उपन्यासों में ग्राम्य जीवन का समर्थन करते हुए राजेन्द्र अवस्थी का मानना है कि - "हमारे देश के विभिन्न अंचल ही हमारी संस्कृति के प्रतीक हैं। शहरों ने हमारी संस्कृति को प्रभावित नहीं किया और न उनेक बल-बूते पर एक विराट् सांस्कृतिक धारा बन पाई। हाँ, गाँवों की सहज और उन्मुक्त प्रवृत्तियाँ की भौंडी नकल अवश्य ही शहरों में हुई, लेकिन उससे सांस्कृतिक विकास की दिशा में किसी तरह का बल नहीं मिल सका।"[33]

. विश्वम्भरनाथ मानव का भी यही मानना है कि हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का विकास जनपदीय आंदोलनों में निहित है।"[34] इसी तरह डॉ० कांति वर्मा इसका असमर्थन करते हुए कहते है कि "आँचलिक शब्द का तात्विक अर्थ यह नहीं है कि केवल ग्रामीण कथाएँ ही इसके क्षेत्र में आए, बल्कि किसी छोटे शहर की विशेषता को उभारने वाला साहित्य भी आंचलिकता की सीमा में आ सकता है।"[35] श्री महेन्द्र चतुर्वेदी ने हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण में ग्रामीण और शहरी आंचलिकता का समर्थन करते हुए कहा है- आंचलिक उपन्यास की वर्ण्य-वस्तु विशुद्ध रूप से ग्रामीण हो, यह अनिवार्य नहीं है। किसी उपनगर को भी कथा क्षेत्र के रूप में ग्रहण किया जा सकता है, यह भी हो सकता है कि कथांचल का एक रूख गाँव की ओर हो और दूसरा शहर की ओर।"[36]

आंचलिक उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी पृष्ठभूमि के सबंभ में राजेन्द्र अवस्थी ने अपनी संपादित पुस्तक सत्रह आंचलिक कहानियों में लिखा है-

"आंचलिक शब्द से एक नया भ्रम पैदा हो रहा है। कदाचित् यह समझा जाने लगा है कि आंचलिक उपन्यास वही है जो केवल ग्रामीण जीवन पर आधारित हो और वहाँ की संस्कृति का चित्रण करें।इस तरह का विचार निराधार है। इस बीच हिन्दी में जो लिखा गया- उसमें अधिकांश कथाकारों ने ग्रामों को ही अपनी लेखनी का सम्वल बनाया है। नगर जीवन को लेकर कुछ छिटपुट प्रयत्न हुए, पर उनमें विशेष सफलता नहीं मिल पाई। वास्तविकता यह है कि अंचल एक देहात हो सकता है, एक भारी शहर भी, शहर का एक मुहल्ला भी, और इन सबसे दूर सघन वनों की उपत्यकाएँ भी। नए संदर्भ में

अंचल को एक नयी और विस्तृत दृष्टि से देखना चाहिए।"[37]

उपयुक्त विवेचनों से यह स्पष्ट है कि ग्रामीण और नागरिक पृष्ठभूमि को लेकर लेखकों में विवाद पनपता आया है। जहाँ लेखकों का एक वर्ग आंचलिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि के रूप में केवल ग्रामीण जीवन को स्वीकारता है, तो वही दूसरा वर्ग शहरी जीवन पर आधारित उपन्यासों को भी आंचलिक उपन्यास की पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकारता है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि चाहे ग्रामीण हो या शहरी, सबसे आवश्यक यह है कि आंचलिकता के लिए अनिवार्य तत्वों का पूर्ण रूप से निर्वाह किया जाना चाहिए। अन्यथा वह एक सामान्य उपन्यास की श्रेणी का प्रतिनिधित्व करेंगे न कि आंचलिक उपन्यासों का। इस संबंध में श्रीमती सरोज यादव का मानना है कि "अंचल यद्यपि ग्राम हो या नगर हो, इस पर कोई आक्षेप नहीं है, किंतु अंचल अपने स्वांगीण रूप से अन्तर्भुक्त तत्त्वों को प्राप्त हो, यह आवश्यक है। इस दृष्टि से शहर के किसी भी कोने को अंचल नाम देकर आंचलिकता का निर्माण कदापि नहीं हो सकता, जब तक कि उसमें संरचनात्मक प्रवृतियाँ,उसकी विशेषता, उसके लक्षण उसमें निहित न हों।"[38]

उपन्यास और आंचलिक उपन्यास

साहित्य को 'समाज का दर्पण' माना गया है। साहित्य की अन्य विधाओं की तरह उपन्यास में भी समाज के यथार्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। उपन्यासकार सम्राट प्रेमचदं ने साहित्य को मानव जीवन की आलोचना माना है तथा साहित्य की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि - "साहित्य उस रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़ और सुंदर हौ और जिसमें दिल और दिमांग पर असर डालने का गुण हो। .... साहित्य की बहुत सी परिभाषाएँ की गई है, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है, चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।"[39]

उपन्यास क्षेत्र की व्यापकता, वैविध्य एवं विस्तार के विषय में प्रेमचंद ने लिखा है- "अगर आपको इतिहास से प्रेम है तो आप अपने उपन्यास में गहरे से गहरे ऐतिहासिक तत्वों का निरूपण कर सकते है। अगर आपको दर्शन से रूचि है तो आप उपन्यास में महान दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन कर सकते हैं। अगर आप में कवित्व शक्ति है तो उपन्यास में उसके लिए भी गुंजाइश है। समाज, नीति, विज्ञान, पुरातत्व आदि सभी विषयों के लिए उपन्यास में स्थान है। यहाँ लेखक की अपनी कलम का जौहर

दिखाने का जितना अवसर मिल सकता है, उतना साहित्य के और किसी अंग में नहीं मिल सकता।"[40] उपन्यास जीवन के हर क्षेत्र को स्पर्श करता हुआ छोटी-बड़ी चीज़े अपने अंदर समाविष्ट कर लेता है। इसलिए उपन्यास में जटिल जीवन के विभिन्न स्वरूपों के समसामयिक परिवेश को, बड़े ही यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी कारण उपन्यास अन्य सभी विधाओं में सबसे लोकप्रिय विधा है। उपन्यास में मानव अपने आस-पास के संसार को देखकर, उसके सुख-दुख का अनुभव करता हुआ, आनंद की प्राप्ति कर सकता है। इस संबंध में डॉ० रामदरश मिश्र के विचार है- "उपन्यास जीवन के हर गली-कूचे में घूम सकता है, आवश्यकतानुसार हर छोटी-बड़ी चीज़ का चित्र अंकित कर सकता है अर्थात् उसका मूल उद्देश्य होता है यथार्थ का विश्वास दिलाते हुए आगे चलना।"[41]

उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति

. उपन्यास गद्य में लिखित अपेक्षाकृत बड़े आकार वाली काल्पनिक कथा है। उपन्यास श्रव्य काव्य के अंतर्गत आता है। 'उपन्यास' साहित्य का एक रूप है तथा भाषा के माध्यम से जीवन एवं जगत् की अभिव्यक्ति। उपन्यास आज के साहित्य की सबसे सशक्त एवं लोकप्रिय विधा है।उपन्यास शब्द उप (समीप) तथा न्यास (थाती) दोनों के संयोग से बना है, जिसका अर्थ है मनुष्य के निकट रखी हुई वस्तु। ऐसी वस्तु जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि हमारी कहानी, हमारी भाषा में ही लिखी गई हो। आज जिस अर्थ में उपन्यास शब्द का प्रयोग किया जाता है वह अँग्रेजी का 'नॉवेल' शब्द है। गुजराती में 'नवल कथा',मराठी में 'कादम्बरी' और बंगला एवं हिन्दी में 'उपन्यास' कहलाया। हिन्दी में उपन्यास शब्द अंग्रेज़ी से आया। इसे 'फिक्शन' भी कहा जाता है। 'फिक्शन' का अर्थ गल्प होता है जो जीवन की रंगीनियों से युक्त यथार्थ से असम्बद्ध होता है। इसलिए कुछ लोगों ने इसे रोमांस भी कहा है, परतुं रोमांस में जहाँ असंभव और दुर्लभ कल्पनाएँ रहती है, वहाँ उपन्यास में संभव और कल्पना का मिश्रण रहता है। समय-समय पर अंग्रेज़ी एवं हिन्दी के अनेक विद्वानों ने उपन्यास से संबंधित अपने विचार प्रस्तुत किए है।आइए हम कुछ भारतीय और विदेशी विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषांओ पर दृष्टिपात करें-

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के अनुसार - "मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।"[42]

अज्ञेय कहते है कि- अपने उपन्यासों में मैं स्वयं हूँ, मेरे ही व्यक्तित्व के विकास का विश्लेषण कह कर उपन्यासों को आत्म विश्लेषक कहा है।"[43]

डॉ० रामदरश मिश्र के अनुसार - "उपन्यास का स्वरूप इतना शक्तिशाली इसलिए है कि उसमें साहित्य की सारी विधाओं की छवियों को सन्निहित कर लेने की शक्ति है। उपन्यास में कथा तो है ही, साथ-ही-साथ अवसर-अवसर पर वह काव्य की सी भावुकता और संवेदना जगाकर पाठकों को अपने में तल्लीन करता है।"[44]

वाल्टर एलेन उपन्यास की व्यापकता एवं विविधता के कारण उसे परिभाषित न कर पाने की विविशता को व्यक्त करते हुए कहते है - " मैं उपन्यास को परिभाषित करने का प्रयत्न नहीं करूगाँ क्योंकि जहाँ अन्य सभी हार गए हैं, मेरा सफल होना असंभव ही है।"[45]

राल्फ फाक्स के अनुसार - " उपन्यास केवल गद्य में लिखी हुई कथा ही नहीं है। वह मानव जीवन का गद्य है। ऐसा गद्य जो मानव को समग्रता से समझने तथा अभिव्यक्त करने की चेष्टा करता है।"[46]

ई,एम.फ्रास्टर - " उपन्यास में मानव को विशिष्ट स्थान दिया जाता है। उसमें व्यक्ति के जीवन के साथ-साथ स्वयं उपन्यासकार का परिवर्तनशील जीवन के साथ गहरे संबंध का पता चलना चाहिए।"[47]

उपर्युक्त परिभाषाओं एवं विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उपन्यास मानव जीवन के विविध रूपों, समस्याओं आदि को यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है। उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की कल्पित कथा है, इसमें मानव को समग्रता से समझने का प्रयास रहता है।

उपन्यास को 'मानव जीवन का महाकाव्य' कहा जाता है, क्योंकि इसका मुख्य विषय मानव-जीवन होता है। उपन्यास में यथार्थ घटनाएँ कल्पना के द्वारा नवीन रूप में ग्रहण की जाती है, परतुं उपन्यास की घटनाएँ जीवन से संबंधित होने के कारण यथार्थ, वास्तविक और स्वाभाविक ही लगती है। उपन्यासकार युग-निर्माता और मानव-जीवन का व्याख्याता होता है। वह पात्रों के द्वारा और कथानक की घटनाओं के द्वारा अपने विचार तथा धाराणाएँ व्यक्त करता है। इस प्रकार उपन्यास में हमारी संवेदनाओं विचारधाराओं एवं अनुभूतियों का यथार्थ चित्रण रहता है।निबंध, नाटक, कहानी की तरह उपन्यास जितना चाहे विस्तृत हो सकता है तथा जीवन की जितनी चाहे समग्रता को समेट सकता है। उपन्यास में जहाँएक ओर यथार्थ जीवन की गहरी अनुभूति विद्यमान रहती है वहीं दुसरी ओर कल्पना की अपार शक्ति भी रहती है। उपन्यास जीवन के विविध पहलुओं को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करता हुआ, आधुनिक काल की एक बहुत ही शक्तिशाली और लोकप्रिय विधा के रूप में स्थापित हो चुका है।

उपन्यास की प्रवृत्तियाँ

'मानक हिन्दी कोश' (तीसरा खण्ड) के अनुसार 'प्रवृत्ति' का अर्थ है- किसी काम, विषय या बात की ओर अथवा विशिष्ट दिशा में प्रवृत्त होने या बढ़ने की क्रिया का भाव। उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य मानव के वास्तविक जीवन को अभिव्यक्त करना है।

उपन्यास मानव जीवन के दैनिक व्यापार में घटित होनी वाली घटनाओं का वर्णन करता है तथा उपन्यास की प्रवृत्ति का अर्थ है - उपन्यास में व्यक्त मानव जीवन की विशिष्ट दशा में निरतंर बढ़ने का भाव। उपन्यास की प्रवृत्ति के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि - 'समाज जो पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही है, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकते हैं।"

प्रवृत्ति की दृष्टि से उपन्यास के निम्नलिखित रूप हैं-

1) सामाजिक उपन्यास 2) राजनीतिक उपन्यास 3) ऐतिहासिक उपन्यास 4) मनौवैज्ञानिक उपन्यास 5) जीवनीमूलक उपन्यास 6) आत्मजीवनीमूलक उपन्यास 7) आंचलिक उपन्यास आदि।

उपन्यास के तत्त्व - उपन्यास के छह तत्त्व हैं 1) कथानक 2) पात्र एवं चरित्र-चित्रण, 3) कथोपकथन 4) वातावरण एवं देशकाल 5) भाषा-शेली 6) उद्देश्य। इन्हीं तत्त्वों के कारण उपन्यास को एक आकार प्राप्त हुआ है। आइए इन तत्त्वों पर विचार-विश्लेषण करें।

कथानक - कथानक उपन्यास का मुख्य अंग है। उपन्यास की कथावस्तु के कुछ सामान्य गुण है - जिज्ञासा या कौतूहल, स्वाभाविकता, रोचकता और प्रवाहमयता। इसके साथ ही कथावस्तु का सुगठित होना भी एक आवश्यक गुण है। उपन्यास में कथा के रूप में मानव जीवन का चित्र होता है। उपन्यास की कथा किसी भी प्रकार की हो सकती है। उपन्यास की कथा का समर्थन मनुष्य के आर्थिक जीवन से भी हो सकता है, धार्मिक जीवन से भी, राजनैतिक से भी और सामाजिक जीवन से भी। उपन्यास एक मनुष्य की कथा कहता है, जो संघर्ष में लगा रहता है। अतः उपन्यास में संघर्ष होता है।

पात्र या चरित्र-चित्रण - उपन्यासकार का उपन्यास लेखन के पीछे उद्देश्य, उपन्यास का कथ्य, उसकी कथावस्तु, उसकी पात्र योजना का निर्धारण करना होता है। अतः उपन्यासकार द्वारा अपनी कथावस्तु के अनरूप पात्रों का चयन करते हुए उनकी रूपाकृति, उनके स्वभाव, उनकी मनोदशा और

विचारों आदि का इस प्रकार प्रस्तुतिकरण किया जाता है कि उपन्यास की कथावस्तु सजीव हो उठें। उपन्यास में पात्रों के चरित्रों का विश्लेषण इस प्रकार करना चाहिए कि वे यथार्थ की भूमि से संबंधित हों।

उपन्यासकार की सफलता इस तथ्य पर निर्भर रहती है कि पात्रों के क्रिया-कलाप, आचरण और विचार आदि तथ्य ऐसे सजीव-स्वाभाविक होने चाहिए कि वे पाठकों की सहानुभूति अर्जित कर सकें और उन्हें ऐसी अनुभूति रहे कि वे पात्र बहुत-कुछ अंशों में उनका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

पश्चिम के विख्यात विद्वान ई.एम फार्स्टन ने पात्रों के दो प्रकार बताए हैं- गोल अथवा चपटे। गोल पात्र वे होते है जो उपन्यास की कथा के विकास के साथ-साथ विकसित होते है। चपटे पात्र वे होते हैं, जो कथा के आरभं में प्रस्तुत विशेषताओं को कथा के अतं तक बिना परिवर्तन के बनाए रखते हैं। चरित्र-चित्रण के मुख्य दो प्रकार माने गए है- एक वर्णनात्मक प्रणाली दूसरी सांकेतिक प्रणाली। इन सभी प्रकारों के अतिरिक्त लेखक का पात्रों के चरित्र-चित्रण को सजीव बनाने के लिए निष्पक्षता एवं तटस्थता का भाव रखना भी अत्यंत आवश्यक है।

कथोपकथन - उपन्यासकार कथोपकथन के माध्यम से ही पात्रों के अतंर जगत में पनपने वाले मनोभावों को रोचक ढंग से पाठकों तक पहुँचाने का कार्य करता है। कथोपकथन के माध्यम से ही उपन्यासकार कथावस्तु का विकास, टूटी कड़ियों को जोड़ना, विगत घटनाओं की सूचना देना तथा पात्रों के चरित्रोद्‌घाटन जैसे तथ्यों को उज़ागर करता है। कथोपकथन परस्पर संबंधित और क्रमबद्ध होने चाहिए जिससे पात्रों का चरित्र चित्रण और कथानक को गति प्रदान हो सकें।

कथोपकथन का प्रमुख उद्देश्य कथानक को रोचक बनाकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करना है। कथोपकथन के संबंध में प्रेमचंद ने विचार प्रकट करते हुए कहा है- "उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना कम लिखा जाए, उतना ही उपन्यास सुंदर होगा। वांर्त्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक वाक्य को, जो किसी चरित्र के मुहँ से निकले, उनके मनोभाव और चरित्र पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए। बातचीत का स्वाभाविक परिस्थतियों के अनुकूल सरस और सुक्ष्म होना जरूरी है।"[48]

वातावरण और देशकाल - वर्ण्य-विषय के अनुकूल देशकाल ओर वातावरण की उचित योजना भी उपन्यास का अनिवार्य तत्त्व है। इन्हीं तत्त्वों के फलस्वरूप उपन्यास की वर्ण्यवस्तु में विश्वसनीयता का

समावेश होता है। पात्रों को यथार्थमय तथा कथा को विश्वसनीय और प्रभावशाली बनाने की दिशा में देशकाल और वातावरण योजना का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। डॉ० गुलाबराय ने कहा है कि - "कथानक के पात्र भी वास्तविक पात्र की भाँति देशकाल के बँधन में रहते हैं। यदि वे भगवान की भांति देशकाल के बँधनों से परे हो तो वे भी हम लोगों के लिए रहस्य बन जाएगें। इसलिए देशकाल का वर्णन आवश्यक हो जाता है। जिस प्रकार बिना अँगूठी के नगीना शोभा नहीं देता, उसी प्रकार बिना देशकाल के पात्रों का व्यक्तित्व भी स्पष्ट नहीं होता और घटनाक्रम को समझने के लिए भी उसकी आवश्यकता होती है।"[49]

भाषा-शैली - उपन्यास की संरचना में उसकी कथावस्तु के साथ-साथ भाषा-शैली का विशेष महत्व है, क्योंकि यही वह सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा उपन्यासकार अपने कथ्य को पाठकों तक संप्रेषित करता है।भाषा विचार का वाहन है, अतः भाषा में स्पष्टता और शक्ति का होना भी आवश्यक है। प्रवाहमयी भाषा उपन्यास के आकर्षण को और अधिक बड़ा देती है और क्लिष्ट भाषा उपन्यास के प्रभाव को कम कर देती है। भाषा का स्तर पात्रों के व्यक्तित्व के अनुसार होना चाहिए। उपन्यास की शैली में स्पष्टता और प्रभाव के साथ-साथ मधुरता और शक्ति भी होनी चाहिए। उपन्यास मानव-जीवन के विविध रूपों का चित्रण करता है, अतः शैली को विविधरूपा भी होना चाहिए। अवसर के अनुकूल शैली में परिवर्तन आवश्यक है।

उद्देश्य - प्रत्येक साहित्यिक कृति की रचना के पीछे लेखक का कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य रहता है। उपन्यास आधुनिक युग की सबसे सशक्त साहित्यिक विधा है। उपन्यास रोचक और मन को रमाने वाला अवश्य होना चाहिए, पर यह उसकी सफलता है, सार्थकता नहीं है। श्रेष्ठ उपन्यास में कहीं कुछ उच्च वस्तु आवश्यक होती है। यह उच्च वस्तु मानव जीवन का चित्रण भी हो सकती है और जीवन संदेश भी।उपन्यास के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए डॉ० श्यामसुंदर दास ने लिखा है - 'उपन्यासों में मुख्यतः यही दिखलाया जाता है कि पुरूषों और स्त्रियों के विचार भाव और पारस्परिक संबंध कैसे है, किन-किन कारणों अथवा प्रवत्तियों से प्रेरित होकर कैसे-कैसे कार्य करते है, अपने प्रयत्नों में वे किस प्रकार सफल अथवा विफल होते हैं, और इन सबके फलस्वरूप उनमें कैसे-कैसे मनोविकार आदि उत्पन्न होते हैं। उपन्यास लेखक का, जीवन के किसी एक अथवा अनेक अंगों के साथ बहुत ही घनिष्ठ संबंध होता है, इसलिए किसी न किसी रूप में यह प्रकट करना उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि जीवन के साधारण और असाधारण सभी व्यापारों का उस पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ा है। कुछ विशेष सिद्धांतों अथवा विचारों

को प्रतिपादन के उद्देश्य से तो बहुत ही कम उपन्यास लिखे जाते हैं, पर सभी उपन्यासों में कुछ न कुछ विशेष विचार अथवा सिद्धांत आप से आप आ जाते है।"[50] संक्षेप में यही कहा जा सकता है उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य सत्य को उद्घाटित करते हुए मानव जीवन के संशिलष्ट यथार्थ को अभिव्यक्त करना है।

आंचलिक उपन्यास

आंचलिक उपन्यास पहले उपन्यास होता है, फिर आंचलिक। इसलिए उपन्यास के सभी विधायक तत्त्व-कथावस्तु, पात्र-परिवेश, भाषा-शैली तथा उद्देश्य-आंचलिक उपन्यासों में भी होते है।अंतर केवल इन उपन्यासों की अंचल केन्द्रित दृष्टि का है जो अंचल को ही उपन्यास के सभी तत्त्वों का दृष्टिकेन्द्र बना देती है।फिर भी साधारण उपन्यासों में कुछ अंतर दिखाई पड़ते है, जिनका नीचे विवेचन किया जा रहा है-

कथानक - सामान्य उपन्यासों का कथानक व्यापक जीवन या सामान्य जीवन की कथा कहता है। उसके कथानक का संबंध किसी भी गाँव, कस्बे या क्षेत्र से संबंधित हो सकता है। इसके विपरीत आंचलिक उपन्यास का केन्द्रबिदुं सीमित परिवेश वाला विशिष्ट अंचल ही होता है। आंचलिक उपन्यासों में किसी विशिष्ट अंचल में रहनेवाले सामान्य जनों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन का अंकन करके उस अंचल की कथावस्तु का निर्माण किया जाता है। जैसे ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिकता, सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक विश्लेषण, आदि के आधार पर कथानक का निर्माण किया जाता है। इसी तरह आंचलिक उपन्यासों की भी एक निश्चित कथावस्तु होती है, किन्तु अन्य उपन्यासों की तरह इसकी कथावस्तु में फैलाव नहीं होता, बल्कि बिखराव होता है क्योंकि वास्तविक जीवन-चित्रण पर विशेष बल देने के कारण आंचलिक उपन्यासकार अपनी कृति में किसी एक ऐसी निश्चित कहानी की योजना नहीं कर पाते जिसका कि समन्वित प्रभाव पाठकों पर समान रुप से पड़ सकें।

आंचलिक उपन्यासों का कथानक अंचल से संबंधित होता है तथा इसका पूर्ण विकास भी इसी अंचल में होता है।जबकि अन्य उपन्यासों का कथानक पात्रों के साथ एक नगर से दुसरे नगर तथा एक भूखण्ड से दूसरे भूखण्ड में तहलता हुआ पाया जाता है। भिन्नता स्पष्ट करने वाला एक और तथ्य है- आंचलिक उपन्यासकारों का अंचल विशेष के साथ संवेदनशीलता एवं आत्मीयता का संबंध। अपने कथानक के निर्माण के लिए लेखक उसी ग्रामांचल या क्षेत्र को आधार बनाता है जिसकी पग-पग भूमि

से उसका परिचय होता है। अपनी आँखों देखे परखे तथा अनुभूत जीवन को चित्रित करने में उसे आसानी होती है और वह सफलता प्राप्त करता है। इसके विपरीत सामान्य उपन्यासों में अनुभव की सच्चाई एवं प्रमाणिकता का अभाव पाया जाता है। हालांकि उसमें भी यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति होती तो है, पर लेखक स्वयं उसका उपभोक्ता नहीं होता।

पात्र - साधारण उपन्यासों में नायक-नायिका की परिकल्पना की जाती है, जबकि नायक-शून्यता आंचलिक उपन्यासों की प्रमुख विशेषता होती है। अंचल जीवन को उसकी समग्रता के साथ उभारने के लिए आंचलिक उपन्यासकार अनेक प्रसंगों की सृष्टि करता है, जिससे अंचल जीवन का कोई भी कोना छूट न जाए। अतः विविध पक्षों को उद्घाटित करने के लिए भिन्न-भिन्न स्तर के पात्रों की योजना करनी पड़ती है। अंचल के विशिष्ट जीवन से केन्द्रित होने कारण इसकी कथा किसी व्यक्ति विशेष की न होकर सम्पूर्ण अंचल की होती है। अतः यदि किसी एक पात्र को प्रधानता मिलती भी है तो अंचल से उनका तादात्म्य दिखाने के उद्देश्य से, न कि चरित्र-चित्रण को उद्घाटित करने के लिए।

साधारण उपन्यासों में पात्रों की संख्या अधिक नहीं होती। उद्देश्य को ध्यान में रखकर कुछ गिने-चुने पात्रों की योजना की जाती है। वहीं आंचलिक उपन्यासों में अंचल केन्द्रित कथानक के आस-पास पात्रों की एक भीड़ उपस्थित कर दी जाती है क्योंकि इसकी कथा किसी एक व्यक्ति से संबंधित न होकर सम्पूर्ण अंचल की होती है।विभिन्न पात्रों की अलग-अलग व्यक्तिगत विशेषताओं के मेल से अंचल के सामूहिक चरित्र को निरूपित किया जाता है।

देशकाल या वातावरण - साधारण उपन्यासों में वातावरण का चित्रण पात्रों और कथानक को वास्तविकता प्रदान करने के लिए केवल पृष्ठभूमि के रूप में ही किया जाता है, इसके विपरीत आंचलिक उपन्यासों में वह पुरोभूमि बन जाता है। इन उपन्यासों में देशकाल एक वातावरण, एक तत्त्व के रूप में नहीं, बल्कि अंचल विशेष के पूर्ण व्यक्तित्व के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। आंचलिक उपन्यास का वातावरण मुख्यतः कालिक होता है क्योंकि लेखक का उद्देश्य समसामयिक वातावरण को चित्रित करना होता है जिससे की अंचल के विविध पहलुओं को समझकर, आंचलिक उपन्यासों के विशिष्ट स्वरूप को निर्धारित किया जा सके। ऐसे वातावरण में काल या समय वर्तमान रहता है। अन्य उपन्यासों में लेखक देशकाल की योजना अपने उपन्यास के पात्रों में सरलता, सहजता एवं यथार्थता लाने के लिए करता है। लेकिन उपन्यास की कथावस्तु में बदलाव के साथ देशकाल और वातावरण का महत्व घटता-बढ़ता रहता है।

भाषा - आंचलिक और सामान्य उपन्यास की भाषा में अंतर स्पष्ट परिलक्षित होता है। अन्य उपन्यासों में जहाँ भाषा का प्रयोग कथावस्तु को गति प्रदान करने तथा पात्रों के चरित्र को उद्घाटित करने के लिए किया जाता है, वहीं आंचलिक उपन्यासों की भाषा केवल भाषा तक सीमित न रहकर वातावरण बन जाती है।आंचलिक और सामान्य उपन्यासों की भाषा के बीच अंतर को स्पष्ट करते हुए डॉ० जवाहर सिंह का मत है कि - "यहाँ पर अनांचलिक और आंचलिक उपन्यासों की भाषा के प्रयोग में जो अतंर है वह केवल स्तर का, या गहराई का है। सामान्य उपन्यासों में पात्रों के वार्त्तालाप की भाषा का स्वरूप सामान्यतः बोलचाल का ही होता है अर्थात साहित्यिक या परिनिष्ठत हिन्दी न होते हुए भी उससे बहुत भिन्न नहीं होता है।अधिक से अधिक कोई उपन्यासकार उस भाषा में देशज शब्दों या स्थानीय बोली के दो-चार शब्दों, मुहावरों का प्रयोग कर देता है। परंतु आंचलिक उपन्यासों में पात्र के वार्त्तालाप की भाषा का स्तर सामान्य साहित्यिक भाषा से काफ़ी भिन्न होता है। उसमें स्थानीय बोलियों, या आंचलिक भाषा के शब्दों, मुहावरों,लोकोक्तियों, ध्वनि-बिबों और प्रतीकों आदि का प्रयोग ही बहुतायत से नहीं होता, बल्कि कहीं-कहीं तो पूरा का पूरा वार्तालाप ही स्थानीय बोली में हो जाता है।"[51]

इस प्रकार जनपदीय शब्दों की बहुलता के कारण कहीं -कहीं अर्थ बोध में क्लिष्टता आ जाती है, जो पाठकों की आनंद प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करती है। परतुं यह भी सत्य है कि स्थानीय शब्दों, उच्चारणों तथा बोलियों का वास्तविक चित्रण ही पाठक को किसी अंचल विशेष के यथार्थ स्वरूप की अनुभूति कराने में सफल होता है।

शिल्प - उपन्यासकार के संवादों, चरित्र-चित्रण एवं वातावरण निर्माण के विश्लेषण की भाषा में शैली के विविध और स्पष्ट रूप दिखाई देते हैं। आंचलिक उपन्यासों में संपूर्ण अंचल के जीवन यथार्थ को यथातथ्य चित्रित करना पड़ता है, इसलिए उसकी शैली में विवरणात्मकता एवं इतिवृत्तात्मकता के गुण स्वतः ही आ जाते हैं। आंचलिक एवं सामान्य उपन्यासों की तुलना करने पर यह बात स्पष्ट है कि दोनों के कथानक - निर्माण शिल्प में भी पर्याप्त अंतर दिखायी देता है। आंचलिक उपन्यासों में अंचल वैशिष्ट्य को यथार्थ रूप देने के लिए स्थानीय बोली, मुहावरों,लोककथाओं, लोकगीतों आदि के विस्तृत वर्णन पर बल देने के कारण कथानक में बिखराव आ जाता है। ठोस कथावस्तु के अभाव को लेखक शैली द्वारा ढकने का प्रयास करता है।

उद्देश्य - आंचलिक उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन अंचल संस्कृति की चेतना को विलुप्त होने से बचाना है, क्योंकि यह अज्ञात अंचल हमारी राष्ट्रीयता के प्रतीक है। इसके विपरीत अन्य उपन्यासों में किसी आदर्श, सिद्धांत या दर्शन की स्थापना के लिए काल्पनिक पात्रों और वातावरण का निर्माण किया जाता है और इनके माध्यम से ही उद्देश्य को प्रतिफलित किया जाता है। आंचलिक उपन्यासों का मात्र एक ही उद्देश्य होता है- किसी अंचल के वैशिष्ट्य को उभारना जबकि सामान्य उपन्यास किसी भी उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिखे जा सकते है। डॉ० त्रिभुवन सिंह ने आंचलिक उपन्यासों को अन्य उपन्यासों से भिन्न मानते हुए कहा है कि - "आंचलिक उपन्यासों का उद्देश्य अन्य उपन्यासों से भिन्न नहीं पर आंचलिक उपन्यासकार अन्य उपन्यासकारों की भांति समस्त मानव-समाज एवं अखण्ड भू-भाग को सामने रखकर अपनी रचना नहीं करता बल्कि वह उसके लिए समाज विशेष एवं भूखण्ड को ही आधार बना लेना है जो समस्त मानव-समाज एवं सम्पूर्ण भूमण्डल का अंग होते हुए भी अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण भिन्न जान पड़ता है।"[52]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यास, उपन्यास होते हुए भी अपनी कुछ विशेषताओं के कारण भिन्न है या यूं कहा जाए कि यह भिन्नता ही इसकी पहचान एवं विशेषता है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का परिचय

फणीश्वरनाथ 'रेणु' कृत 'मैला आंचल' का प्रकाशन 1954 में एक नयी दृष्टि और नयी विधा को लेकर हुआ। लेखक ने उपन्यास की भूमिका में इसको 'आंचलिक' की संज्ञा दी है और इसमें विहार के पूर्णिया जिले के मेरीगजं नामक गाँव से संवंधित लोगों की कहानी कही गयी है जिनमें सभी वर्गों के लोग आते है।लेखक ने मेरीगंज नामक गाँव को वहाँ के अनेक गाँवों का प्रतीक मानकर ग्रामीण यथार्थ को उसके भले और बुरे सभी रंगों में सजीव कर दिया है। उपन्यास का प्रारंभ सन् 1946 में बिहार के पूर्णिया जिले के मेरीगंज नामक गाँव मे मलेटरी(मिलिटरी) के आने की अफ़वाह के साथ होता है। पर वास्तव में गाँव में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अधिकारी मलेरिया सेंटर खोलने के लिए आए थे। उपन्यास के घटनाक्रम को सन् 1946 से आरंभ करते समय 'रेणु' ने यह पाया कि सन् 1942 के जन आंदोलन की खबर यहाँ अफ़वाहों के रुप में ही अधिक पहुँची है। उपन्यास की कथा मेरीगंज गाँव में मलेरिया सेंटर खुलने की प्रक्रिया से आरंभ होती है। दिखाया गया है कि अनपढ़, अनजान निवासी इस परिवर्तन से

कैसे घबराते है और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते है। डॉ० प्रशांत कुमार के मलेरिया सेंटर का इंचार्ज बनकर आने से कथा को गति मिलती है। प्रशांत कुमार गाँव को चिकित्सा-सुविधा प्रदान करने के साथ-साथ गाँव के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन से भी गहरे रुप में जुड़ता है।

'मैला आंचल' किसी एक व्यक्ति अथवा परिवार की कहानी नहीं है, वह पूरे गाँव की कहानी है। उपन्यास के शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि लेखक ग्रामीण जीवन में व्याप्त धूल-शूल वाली उक्ति को सार्थक करना चाहता है। गाँव के तीन प्रमुख दल है- कायस्थ, राजपूत और यादव। ये तीनों दल आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं और इन्हें लड़ाने का कार्य ब्राह्मणों का है क्योंकि इनकी संख्या कम है। गाँव में विभिन्न जातियों के लोग किस प्रकार अलग-अलग टोलियाँ बना लेते है, और किस प्रकार उनके मध्य तरह-तरह की खींचातानी चलती रहती है, इस तथ्य को उपन्यासकार ने मालिकटोला, यादवटोली, सिपहियाटोली आदि गाँव की जातियों से संबंधित अनेक टोले-टोलियों के माध्यम से प्रदर्शित किया है। उनके बीच तनाव दिखाकर 'रेणु' ने मुहल्लों की वास्तविक स्थिति को चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त संथाल है जो बस्ती से दूर रहते है। आदिवासी संथालों के विरुद्ध संघर्ष में गाँव के ये तीनों प्रमुख टोले शोषक वर्ग की भूमिका निभाते हैं।

सारे मेरीगंज में कुल दस आदमी पढ़े-लिखे है। इनमें से नए पढ़ने-वालों की संख्या है पन्द्रह। गाँव की मुख्य पैदावार धान, पाट और खेसारी है। बालदेव कांग्रेस का नेता है और कालीचरण सोशलिस्ट पार्टी का। मठ के महंत है सेवादास, उनका चेला रामदास है और कोठारिन लक्ष्मी है। लक्ष्मी का निर्माण गाँवो के मठों में होने वाले दुराचार का पर्दाफाश करने के लिए किया गया है। धर्म की आड़ लेकर न जाने कितने ढोंगी साधु-सन्यासी अनैतिक कार्यों में लिप्त रहते है और समाज का अधिकांश भाग अपनी अंधआस्था के कारण इनसे प्रायः अपरिचित ही रहता है। मठ की सम्पत्ति से भी अधिक मूल्यवान वस्तु लक्ष्मी कोठारिन है, जिसे पाने के लिए साधु-वैरागी व्याकुल और लालायित रहते हैं।

'मैला आंचल' के अधिकांश पात्रों में यौन संबंधी दुर्बलताओं का संकेत प्राप्त होता है। बालदेव और कालीचरन को परोपकारी और मानवतावादी व्यक्तियों के रुप में चित्रित किया गया है। परंतु बालदेव कोठारिन लक्ष्मी के साथ कंठी पहन कर उसके साथ रहने लगता है वही कालीचरण भी मानवोचित दुर्बलताओं का शिकार होकर चरखा चेंटर की शिक्षिका मंगलादेवी के प्रेम में पड़ जाता है। साथ ही, तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की पुत्री कमला और डॉ० प्रशांत के प्रेम प्रसंगों का सरस वर्णन उपन्यासों

में मिलता है। गाँव में अनैतिक संबंधों की बाढ़-सी दिखाई देती है। गाँव के अधिकांश लड़के-लड़कियों के बीच अवैध संबंध है। उच्च वर्ग के द्वारा निर्धनों की बहु-बेटियों के साथ यौन शोषण किया जाता है। इस प्रकार के अनेक प्रसंग उपन्यास में भरे पड़े है जो गाँव के सामाजिक जीवन की वास्तविकता की प्रकट करते हैं। रेणु की दृष्टि समान रुप से गाँव के सभी पात्रों की ओर गतिशील है क्योंकि वे अंचल को उसकी समग्रता में चित्रित करना चाहते है। मेरीगंज ग्राम, उसके प्राकृतिक दृश्य, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्थितियों का अत्यंत सजीव वर्णन किया है। लेकिन लेखक का मुख्य उद्देश्य पूरे अंचल के जन-जीवन को उसकी पूरी विविधता व सजीवता के साथ चित्रित करना है, इसलिए उन्होंने गाँव के जीवन के प्रायः सभी पक्षों को किसी-न-किसी प्रसंग द्वारा अपनी कथा में बुना है-चाहे वह होली का त्योहार हो या कोई अन्य पर्व।

उपन्यास की चरम सीमा है - महात्मा गाँधी के प्रिय शिष्य बावनदास का, गाँधी की शहादत के दिनों में, ही देश के लिए शहीद हो जाना। यह उपन्यास के दूसरे खंड की घटना है। देश की स्वांतत्र्योत्तर परिस्थितियों से यह सच्चा गांधीवादी अत्यंत विचलित एवं हताश होता है तथा उसके अंदर, देश की प्रगति में बाधा उत्पन्न करने वाले स्वार्थी लोगों के प्रति घृणा का भाव जागृत होता है और उनका प्रतिरोध करने पर उसे मृत्यु की प्राप्ति होती है। बावनदास की हत्या गांधीवाद की हत्या है। इस तरह डॉ० प्रशांत और कमला के मिलन के साथ, तथा बावनदास की शहादत से उपन्यास का अंत होता है। 'रेणु' ने विभिन्न राजनैतिक दलों और उनके कार्यकर्त्ताओं की दुर्बलताओं को अत्यंत यथार्थ रुप में चित्रित किया है। गरीबों की पार्टी सोशलिस्ट पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी जिंदाबाद कीं ध्वनि है तो कहीं 'जै हो गन्ही महतमा की जैहो' की गूंज सुनाई पड़ती है। नारों को कहीं-कहीं गीतो में ढालने का उपक्रम भी है। लेखक ने किसी भी दल विशेष के प्रति, कहीं भी पक्षपात नहीं किया है।

'मैला आंचल' में आंचलिकता अपने बहुविध रुप में प्रस्तुत हुई है। आंचलिक पहलू उभारने के लिए लेखक ने अंचल के भौगोलिक परिस्थितियों के साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन को बड़ी ही गहराई के साथ चित्रित किया है। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर मेरीगंज गाँव, अन्य किसी गाँव से भिन्न प्रतीत होता है। उपन्यास में सृजित भाषा ने इस बहुरंगी आंचलिकता को अत्यंत सरस व सजीव बनाया है। रेणु ने मेरीगंज के जीवन, बोल-चाल, रहन-सहन, गीत-संगीत, तीज-त्योहारों, हास-विलास, रुढ़िवादिता-प्रतिगामिता, रीति-रिवाज आदि तत्त्वों को बहुत ही कलात्मक

रुप में चित्रित किया है। इसका नायक कोई व्यक्ति विशेष न होकर एक अंचल विशेष है।

आधा गाँव

राही मासूम रज़ा ने 'आधा गाँव' उपन्यास में गाज़ीपुर के गाँव गंगौली में रहने वाले शीआ मुसलमानों के दस परिवारों के जीवन यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। पहली बार इस उपन्यास में एक छोटे गाँव में रहने वाले शीआ मुसलमानों की सामाजिक और आर्थिक समस्यायों को सामने लाने का प्रयास किया गया है। देश के विभाजन के मूल्य पर मिली स्वतंत्रता कितनी मँहगी पड़ी 'आधा गाँव' उसकी कहानी कहता है। हिन्दु और मुसलमान दोनों ही इससे प्रभावित हुए है। लेखक ने उपन्यास में केवल शीया मुसलमानों के जीवन-संघर्षो को चित्रित करने का प्रयत्न किया है साथ-साथ आवश्यकतानुसार अन्य जातियों एवं सम्प्रदायों का उल्लेख मात्र किया गया है। अतः लेखक ने इस उपन्यास को 'आधा गाँव' कहना अधिक उचित समझा है। स्वतंत्रता के समय होने वाले बँटवारे और पाकिस्तान के निर्माण के कारण हिन्दु और मुसलमानों को जो मानसिक आघात सहने पड़े 'आधा गाँव' उसकी कहानी कहता है।

उपन्यास में राही अपने पूरे परिवार के साथ स्वंय भी उपस्थित है तथा वहाँ की घटने वाली घटनाओं में उनकी मौजुदगी स्पष्ट दिखाई पड़ती है।....... मैं जिस गाँव और जिन लोगों की बातें कर रहा हूँ, वह मेरा गाँव और मेरे अपने लोग हैं और मैं उनसे प्यार करता हूँ।........... मैंने पूरे गाँव को नही चुना, बल्कि गाँव के उस टुकड़ें को चुना, जिसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"[53] आधा गाँव की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पूरे परिवेश, उसकी समस्याएँ और पात्र लेखक के समझे-बुझे और निकट से जाने-पहचाने है। फुन्नन मियां, गुज्जन दा, अब्बू दा, सुलेमान चा, मौलवी बेदार, सैफुनिया, सितारा आदि पात्र लेखक के लिए अजनबी नहीं बल्कि जाने-पहचाने से हैं।

'आधा गाँव' में मुस्लिम सम्प्रदाय के लोगों की भीतरी और बाहरी समस्यायों का वर्णन यथार्थ भूमि पर हुआ है। इस उपन्यास में मुस्लिम जनजीवन की सामाजिक विसंगतियों, धार्मिक पाखंड, अनैतिक संबंधों, द्वेष, स्पर्धा, जातीय दंभ, आदि का यथार्थ प्रस्तुतिकरण मिलता है। उत्तर पट्‌टी और दक्षिण पट्‌टी के आपसी तनाव से उपन्यास का प्रारंभ होता है, जो इस बात के संकेत देता है कि धर्म भी ज़मीदारों के हाथों की सम्पत्ति है। धर्म के नाम पर होनेवाले पाखंड,ताज़िए के जुलूस में हुई फौज़दारी तथा थानेदार को दी गई रिश्वत जैसी घटनाएँ यही बताती है कि गंगौली का मोहर्रम, नाम के लिए एक

धार्मिक त्योहार है, वास्तविकता तो यह है कि वह दलबंदी का एक स्थल है।

'आधा गाँव' की कथावस्तु का निर्माण मुख्य रूप से तीन समस्याओं को केन्द्र में रखकर लिखा गया है-पाकिस्तान के निर्माण से उत्पन्न होने वाली लोगों की विविध प्रकार की मानसिकताएँ, ज़मीदारी प्रथा की समाप्ति तथा मुस्लिम समाज की यौन संबंधी अनैतिकता। स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् तथा पाकिस्तान निर्माण को लेकर गंगौली के आम आदमी की मानसिकता का परिचय देते हुए लेखक ने हकीम सैयद अली कबीर के कथन में इस समस्या की अभिव्यक्ति करते हुए कहा है - "ए बशीर ई पाकिस्तान त हिन्दु-मुसलमान को अलग करे को बना रहा। बाकी हम तो ई देख रहे कि ई मिया-बीबी, बाप-बेटा और भाई-बहन को अलग कर रहा।"[54] उपन्यास में अब्बास के माध्यम से पाकिस्तान के निर्माण में अलीगढ़ की भूमिका को उज़ागर किया है। साथ में, पाकिस्तान बनने की राजनीति के खोखलेपन तथा उसकी विडम्बना को चित्रित किया गया है।

विभाजन के साथ आज़ादी आई और ज़मीदारी समाप्त हो गई। गंगौली के मुसलमानों की ज़मींदारी प्रथा की समाप्ति के पश्चात् आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई। ज़मींदार फुस्सू मियां ने इमामबाड़े के कमरे में जूतों की दुकान खोल दी। जब्बाद मियां अपने बेटे कलीमउद्दीन की डॉक्टरी का प्रचार करने लगे। मिगदाद ज़मींदारी खत्म होने पर भी हल-बैल का सहारा लेता है और गाँव के जुलाहे दिन रात कपड़े बुना करते है।फुन्नन मियां ने बदली परिस्थितियों में सबसे उचित यही समझा कि परशुराम एम.एल.ए से दोस्ती की जाए ताकि कमाई होती रहे। नई अर्थव्यवस्था ने नए सामाजिक संबंध दिये और गंगौली के अधिकाशं मुसलमान इस दुख में डूब गए कि उनके सामने ज़मीन पर बैठने वाले लोग, अब उनसे अधिक सम्पन्न है।

गंगौली के लोगों में यौन संबंधों के प्रति काफ़ी आकुलता दिखाई देती है। दूसरा ब्याह करना या किसी ऐरी-गैरी औरत को घर में डाल लेना, सामान्य सी बात समझी जाती है। यौन दुर्बलताओं का चित्रण करने के लिए उपन्यासकार ने सामाजिक रस्मों एवं त्यौहारों तक भी अछूता नहीं रहने दिया है। मोहर्रम के मातम के समानान्तर परदे के पीछे यौन दुर्बलताओं की लीला किस प्रकार से चलती है इसका वर्णन किया गया है। सुलेमान चा बड़े धार्मिक है पंरन्तु वे मोहर्रम की बैठक में न जाकर फुनिया की माँ को एकांत में सीने से चिपकाते है। 'अब्बास' मोहर्रम के अवसर पर ही सितारा से मिलने आता है और मोहर्रम की मजलिश शुरु होते ही सितारा और अब्बास एक हो जाते हैं।

मुसलमानों में अनेक त्योहार होते है पर इस उपन्यास में 'मोहर्रम' का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है। मोहर्रम के जुलूस के बड़े ही प्रभावशाली वर्णन किए गए है, जो मोहर्रम की दस बैठकों के विवरणों की भांति ही यथार्थ है। इस अवसर पर लोग किस प्रकार मातम करते-करते बेहाश हो जाते थे इसका सजीव वर्णन उपन्यास में मिलता है। फुन्नन मियां जैसे अनपढ़ ओर नमाज न कह सकने वाले मुसलमानों को भी अनेक मर्सिये याद है। मोहर्रम गंगौली के जीवन की धुरी है जो वहाँ के बिखरे जीवन को समेटती है। राही ने शीआ मुसलमानों के जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं को मोहर्रम के चारों तरफ़ मकड़ी के जाले की तरह बुन दिया है।

'आधा गाँव' उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य गंगौली में रहने वाले मुसलमानों के जीवन के विविध पहलुओं का साक्षात्कार कराना है। यह उपन्यास अपनी सभी बुराईयों और अच्छाईयों के साथ गंगोली गाँव की सच्ची कहानी कहता है। उपन्यास में जातिगत उच्चता, गाँव की दलबंदी, आपसी झगड़े, हिन्दु मुस्लिम एकता तथा वैमनस्य, आज़ादी के बाद उत्पन्न ग्रामीण राजनीति का ओछापन, तथा आर्थिक समस्याएं आदि कुछ ऐसी प्रमुख आंचलिक समस्याएं है जिससे कथानक का निर्माण हुआ है। उपन्यास का कथानक लेखक के भोगे हुए यथार्थ की सच्ची अभिव्यक्ति है। आंचलिक पहलू को अभिव्यक्त करने के लिए लेखक ने अंचल के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का वर्णन यथार्थ की भूमि पर किया है। इसके अलावा भाषा इतनी धारदार और उकेरे गए चित्र इतने जीवंत हैं कि वे पाठकों पर अमिट छाप छोड़ते है। आंचलिकता के आग्रह के कारण इसमें इतने पात्र आ गए हैं कि सबको स्मरण रखना पाठक के लिए कठिन है। भोजपुरी का प्रयोग पाठक को गहराई में ले जाता है और गालियाँ गंगौली के सामाजिक जीवन से जुड़ी हुई है, आरोपित नहीं।

कब तक पुकारूँ

'कब तक पुकारूँ' में रांगेय राघव ने ब्रज क्षेत्र की एक खानाबदोश जाति 'करनट' के जीवन संघर्षों का चित्रण किया है। करनट जरायमपेशा कहे जाते हैं। करनट नटों की उपजाति है, किंतु नट इन्हें अपने से नीचा समझते हैं। उपन्यास में नट जाति की अशिक्षा, रुढ़िवादिता, अज्ञात, शोषित एवं तिरस्कृत जीवन की व्यथा-कथा कही गयी है। समाज की यह उपेक्षित जाति उच्च जाति वालों के शोषण, पुलिस और दुसरे कर्मचारियों के भ्रष्टाचार तथा सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक समस्याओं से पीड़ित हैं।

कथानक कुछ इस प्रकार है, सुखराम एक करनट है। वह अत्यंत साहसी, परिश्रमी और

बलशाली है। इस जाति के लोग प्रकृति की गोद में पलकर और संघर्ष करके बड़े होते हैं जिसके फलस्वरूप ये लोग शारीरिक दृष्टि से बलशाली होते हैं। सुखराम का अपने पिता के प्रति यह कथन इस तथ्य की पुष्टि करता है - "मैंने उसे भिट दबाकर लोमड़ी पकड़ते देखा था, वह भागते रोज़ को घेर लेता था, वह तीन हाथ में कांटे फेंकती सेही को मार देता था, और बिज्जू जैसे सख्त और खतरनाक जानवर को उसने सबके सामने अकेला मार डाला था।"[55] सुखराम ठाकुरों का वशंज है और अपने आपको अभिजात घोषित करने की अभिलाषा, उसके एकाकीपन को बढ़ाकर और भी करूण बना देता है। इस जाति के लोगों के पास जीविकोपाजर्न के लिए कोई साधन नहीं है। घोर अभावों से त्रस्त यह करनट समाज, जंगली जानवरों का शिकार करना, चोरी करना, नाच दिखाना, भीख माँगना, कला करतब दिखाना आदि के जरिए अपना जीवन जापन करते हैं। इन्हें जड़ी-बूटियों की पहचान भी होती है और ये इलाज भी करते हैं।

कजरी और प्यारी दोनों सुखराम की पत्नियाँ है। सुखराम के व्यक्तित्व पर रीझकर प्यारी ने उससे विवाह किया था परतुं प्यारी की महत्वकांक्षा उसे सिपाही रूस्तमखाँ की रखेल बनने को बाध्य करती है। एक अन्य स्त्री कजरी भी सुखराम पर मुग्ध हो उससे विवाह कर लेती है। प्यारी और कजरी का सुखराम के प्रति प्रेम, ईष्या, प्रतिस्पर्द्धा ओर आतंरिक आत्मीयता के प्रसंग मार्मिक बन पड़े हैं। सुखराम विषम परिस्थितियों मे भी अपमानजनक जीवन व्यतीत करते हुए भी मानव सुलभ गुणों से युक्त है।

लेखक ने इस विशद उपन्यास में करनट जीवन की यौन स्वच्छंदता एवं मान्यताओं का विशेष रूप से चित्रण किया है। औरत को वैश्या बनाकर मर्द उनसे धन कमाते हैं। यौन-नैतिकता जैसी कोई चीज़ भी होती है, नट जाति की कोई स्त्री नहीं जानती, फलस्वरूप प्यारी और कजरी भी नहीं जानती तो कोई हैरानी की बात नहीं है। रोजी-रोटी के लिए अपना शरीर बेचना कोई बुरा नहीं समझती।[56] करनट समाज में यौन व्यापार खुलकर चलता है। नारी और पुरुष के शारीरिक संबंध सामाजिकता और नैतिक दायरे से हटकर होते हैं। सुखराम का यह कथन नट जीवन की सारी विसंगति, अभाव, जीवन संघर्ष तथा उनके बीच उभरने वांली नई चेतना का संकेत देती है- " रोओ नहीं भाभी। उनको जुल्म करने दो, तुम रोओ नहीं। सहो, और सहा नहीं जाता तो लड़ो। हम नट है। हमारे पास कुछ नहीं। हम जुआरी, चोर, उचक्के, बेईमान, कमीने, धोखेबाज़, झूठे हैं। हमारी ओरतें कुत्तियों की तरह रहती है। ये सिपाही, ये बड़े लोग इन्हें बीमारी देते हैं। फिर वे औरतें वे ही बीमारी हमें देती हैं। फिर हम मरते हैं। मरते वक्त

गुस्सा आता है तो कतल तक करते है।..... हम बेघर-बार कुत्ते की तरह घूम-घूमकर जूठन खाने को अपनी आज़ादी कहते है।"[57]

सुखराम क़ा चरित्र करनटों में सबसे उँचा देखा गया है। वह मानवीय गुणों से युक्त है। प्यारी और कजरी की जीवन संघर्ष में मृत्यु हो जाती है और वह अकेला पड़ जाता है। अतः वह अपनी अंग्रेजी मालकिन की स्मृति, उसकी पुत्री चंदा को अपनी संतान मानकर उसका पालन-पोषण करता है। चंदा ठाकुर के बेटे नरेश से प्रेम करने लगती है। परंतु ठाकुर वंश से करनट की बेटी का विवाह संभव नहीं है। सुखराम दोनों के प्रेम को समझते हुए भी समाज की मर्यादा तोड़ नहीं पाता और मानसिक उलझन में पड़कर चंदा की हत्या करने को विविश हो जाता है।

इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य एक ऐसे वर्ग के जीवन संघर्षो को अभिव्यक्त करना है, जो अब तक अछुता था। इसमें नट जाति की आर्थिक एवं नैतिक मान्यताओं तथा उनके भीतर उभरती हुई नयी चेतना का वर्णन मिलता है। समाज की यह तिरस्कृत और उपेक्षित जाति शोषण और अमानवीयता का शिकार बनती है। करनट समाज का भयंकर शोषण मानवता की जड़े हिला देता है। उपन्यास में आंचलिक पुट की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। लेखक ने अपनी अभिव्यक्ति के द्वारा ग्रामीण अंचल और चारों और फैले हुए प्राकृतिक परिवेश को सजीव बना दिया है। करनटों के जीवन यथार्थ को गहराई से अंकित करने के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है, जो करनटों की भाषा से मिलती जुलती है।स्थानीय मुहावरों और कहावतों का प्रयोग आंचलिकता की पुष्टि करता है। लेखक ने लोक जीवन से संबंधित उपमानों का प्रयोग किया है, जिससे यह पता चलता है कि लेखक ने लोक जीवन को निकट से देखा है, जो आंचलिकता के लिए अनिवार्य शर्त है। इसके साथ, करनटों की सांस्कृतिक जीवन, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, अंधविस्वास, जादू-टोने आदि का चित्रण परिवेश को सजीव बनाता हैं।

अलग-अलग वैतरणी

शिवप्रसाद सिंह की पहली औपन्यासिक कृति 'अलग-अलग वैतरणी' सन् 1967 में प्रकाशित हुई। इस उपन्यास में लेखक ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक गाँव करैता के माध्यम से स्वातंत्र्योतर ग्रामीण जीवन की समस्याओं, बिखराव, नैतिक मूल्यों में गिरावट, जातिगत भेदभाव, अज्ञानता आदि का अत्यंत यथार्थवादी दंग से विचार विश्लेषण किया है। यह एक व्यक्ति विशेष की कहनी न होकर सम्पूर्ण गाँव की कहनी है। यह उपन्यास एक प्रकार से गाँव की जिंदगी का दस्तावेज़ है जिसे 'ग्रामात्मा की खोज'

कहा गया है।[58]

कथा का प्रारंभ करैता गाँव के देवी धाम पर लगनेवाली सालाना रामनवमी के मेले से होता है। मेले में हेल-मेल और आनंद के स्थान पर गुंडई होती है। इस विषय में दयाल पंडित का कहना है - "जो जन्ता को जितना चुतिया बनाता है उतना ही मजा काटता है। यह नया जमाना है न ?"[59] इन अशोभनीय घटनाओं के बावजुद भी ग्रामीण मानसिकता का मेलों के प्रति जितना मोह है, इसका परिचय ग्रामीण संस्कृति व धार्मिक विश्वासों में मिलता है।

स्वतत्रंता के बाद गाँव में ज़मीदारी प्रथा के अंत के पश्चात् ग्रामीण जनता, विशेषकर किसानों को लगा कि अब उनके सौभाग्य का उदय होगा, परंतु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। ज़मींदारों का स्थान उन लोगों ने ले लिया, जो पहले ज़मींदारों के अत्याचारों से पीड़ित थे। ज़मींदार जैपालसिहं ज़मींदारी टूटने के बाद गांव में जो नए परिवर्तन आते हैं, उनका सामना नहीं करना चाहते और गांव छोड़कर चले जाते हैं। वे पुनः गाँव लौटते है, तब जब उनके हाथ में ग्राम पंचायत की बागडोर आ जाती है। इस तरह शोषक, शोषण का कोई-न-कई नया मार्ग ढूँढ ही लेता है। करैता गाँव की जनता को यदि नए सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों ने कुछ दिया है तो वह है नारकीय घुटन, स्वार्थपरता, वर्गों का आपसी संघर्ष, भ्रष्टाचार आदि।

'अलग-अलग वैतरणी' अपने नाम के अनुरूप पूरे समाज के विभिन्न वर्गों के सामूहिक दुखों की अलग-अलग वैतरणियाँ, पुराने और नए मूल्यों की छटपटाहटें, बिखराव, घुटन आदि को व्यक्त करता है। लेखक ने एक केन्द्रीय कथा के चारों ओर बहुत सी उपकथायें बुनकर पूरे गाँव को चित्रित किया है।ज़मींदार पुत्र विपिन नगर से पढाई समाप्त कर गाँव में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से आता है। इसमें उसके सहयोगी हैं डॉ० देवनाथ और मास्टर शशिकांत। परतुं गाँव की भयानक भीषण परिवेश से प्रताड़ित होकर ये सभी गाँव छोड़कर चले जाते हैं और गाँव में रह जाती है घुटन, स्वार्थपरता और सड़ी-गली नैतिकता। इन सबके कारण गाँव टूट रहा है। गांव की वर्तमान पीढ़ी भीषण परिवेश में छटपटा रही है। सभी के मन पर एक आतंक छाया रहता है, जो उन्हें अंदर ही अंदर खाए जा रहा है। गाँव की वर्तमान हालत के संदर्भ में जग्गन मिसिर का विश्लेषण कितना सही है - "यहाँ रहते वे है, जो यहाँ रहना नहीं चाहते, पर कहीं जा नहीं पाते। यहाँ से जाते अब वे है, जो यहाँ रहना चाहते है, पर रह नहीं पाते।"[60]

इसके अलावा उपन्यास में खोखली हो चुकी ग्राम पंचायत के वास्तविक स्वरूप पर प्रकाश डाला

गया है। राजनीति के घिनौने रूप को ग्राम पंचायत के माध्यम से लेखक ने चित्रित किया है। गाँव के तीन उम्मीदवार हैं - सुरजु सिंह,जैपाल सिहं, और सुखदेव राम। जैपाल सिंह स्वयं को जीतना न देखकर, सुखदेव को अपने समर्थकों का वोट दिलाकर जीता देते हैं। लेकिन इसके बदले वास्तविक सत्ता अपने हाथ में धर लेते है। वह सभापति न होकर भी सभापति बन जाते हैं। इस प्रकार पंचायतों की स्थिति और भी बिगड़ गयी है। भूतपूर्व ज़मींदार, छुटभइये, समाज के अगुवा, धर्म और समाज के ठेकेदार, भ्रष्ट सरकारी अफसर सबने मिलकर एक नहीं अनेक नरकों का निर्माण किया है। सामाजिक मूल्यों का विघटन करैता गाँव को बिल्कुल बदल देता है।

प्रस्तुत उपन्यास में यौन संबंधों के पीछे छिपी मानसिकता को महत्व दिया गया है। नयी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में यौन संबंधों का बिगड़ जाना आम बात है, इसके उदाहरण पटनहिया भाभी,. उसका पति कल्पनाथ, मुंशी जवाहरलाल आदि है। अपने पति कल्पनाथ से असंतुष्ट होकर पटनहिया भाभी कभी देवनाथ की ओर तो कभी शशिकातं और विपिन की ओर आकर्षित होती है। मुंशी जवाहरलाल और रमचलेवा के बीच समलैंगिक संबंध है। इस अनैतिक व्यभिचार को देखकर शशिकातं की गर्दन झुक जाती है।

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य 'करैता' गाँव की घटनाओं, दुर्घटनाओं, सांस्कृतिक रूढ़ियों, सामाजिक, आर्थिक, बदलाव, राजनीतिक जीवन आदि का सजीव चित्रण करने के साथ ही, गाँव के जनजीवन में बन गयी अलग-अलग वैतरणियों की कथा कहना है। एक अंचल करैता के जीवन में व्याप्त विघटन और मानवीय मूल्यों को लेखक ने यथार्थवादी दृष्टि से अंकित किया गया है। उपन्यास में लेखक ने आंचलिक पहलु को उभारने के लिए ग्राम-जीवन की अनेक समस्याओं, प्रश्नों, आपदाओं और संभावनाओं को संपूर्ण संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया है। उपन्यास, के प्रारंभ में जो मेले का चित्रांकन किया गया है वह हिन्दी कथा-साहित्य में चित्रित किसी भी मेले से अधिक उदात्त, सांस्कृतिक और विशाल है। इस उपन्यास में उस अंचल की स्थानीय भाषा भोजपुरी का प्रयोग किया गया है। आंचलिक भाषा के सारे उपादानों - लोकगीतों, लोककथाओं, मुहावरों आदि का प्रयोग कर आंचलिक वातावरण को सजीवत्म बनाया गया है।

सागर,लहरें और मनुष्य

उदयशंकर भट्ट बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। कवि,नाटककार और उपन्यासकार तीनों रूपों में

उन्होंने अपना लोहा मनवाया है। 'सागर, लहरें और मनुष्य' में लेखक ने बंबई के पास समुद्र तट पर बसी मछुओं की बस्ती (बरसोवा) को अपनी कथा का आधार बनाया है। यहाँ के निवासी कोली कहलाते हैं। कोली जाति का प्रमुख पेशा समुद्र में मछली मारना है और यही उनकी जीविका का प्रमुख साधन है। इनमें स्त्री-पुरूष दोनों अर्थोपाजन के लिए श्रम करते हैं। अपनी जान को जोखिम में डालकर ये लोग समुद्र में मछली पकड़ने जाते है। कोली समाज स्त्री-प्रधान है।जहाँ पुरूष वर्ग दिन भर सागर की लहरों पर तैरता, जाल लेकर पकड़ने का कार्य करता है, वही स्त्रियाँ शहर में जाकर मछलियों को बचने का कार्य करती है।

उपन्यास में लेखक ने बरसोवा में रहनेवाले मछलीमारों के जीवन का विशद विवेचन किया है। इसी परिवार की एक बेटी रत्ना है जो अत्यंत महत्वकांक्षी है और शहरी जीवन के प्रति उसके मन में आकर्षण है।बरसोवा गांव में रहनेवाले जितने भी मछलीमार है उनमें न तो शिक्षा के प्रति लगाव है और न ही वे पढ़े लिखे है। इनकी आर्थिक स्थिति भी दयनीय है। वंशी और विट्ठल की बेटी रत्ना ही शिवकर कोलियों में कॉलेज जाती है और एफ.ए में पढ़ती है। रत्ना का शहर के प्रति अत्यधिक मोह, उसके मन में उसकी सभ्यता और आचार-विचार के प्रति घृणा का भाव जाग्रत कर देता है। वह बरसोवा से बाहर निकलने के लिए एक ऐसे साथी की आशा करने लगती है जो उसके सपनों को हक़ीकत में बदल सकें।

शहर का आकर्षण उसे माणिक से बाँधता है। विवाहोपरान्त माणिक के साथ जब उसे छोटी सी गंदी कोठरी में रहना पड़ता है, तो उसके सारे स्वप्न चूर-चूर हो जाते है और उसे अपने बरसोवा ग्राम की याद आने लगती है। माणिक के साथ रत्ना की गृहस्थी सुचारू रूप से चल नहीं पाती क्योंकि माणिक स्वास्थ में रत्ना की अपेक्षा हीन है तथा लोभी प्रकृति का व्यक्ति है। वह रत्ना के सतीत्व का प्रयोग अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए करना चाहता है। दुर्बल पति स्वयं अपनी पत्नी पर अविश्वास करने लगता है। ऐसी विषम परिस्थितियों में रत्ना उसका साथ छोड़कर अंचल में वापिस नहीं लौटती वरन् मुबंई में रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करने का निश्चय करती है। लेकिन यहाँ पर उसे कई ऐसे कटु अनुभव प्राप्त होते हैं जो उसके सतीत्व को छलनी कर देते हैं। संयोग से रत्ना को डाक्टर पांडुरंग के यहाँ नर्स की नौकरी मिल जाती है। शीघ्र ही वह अपनी सेवाभाव से डाक्टर को प्रभावित करने लगती है और डाक्टर उसे पत्नी के रूप में अपना लेता है। रत्ना का निराश प्रेमी यशंवत विवाह नहीं करता, वह अंचलवासियों की भलाई में अपना जीवन समर्पित करने का निश्चय करता है।

उपन्यास में, लेखक ने कोली समाज में व्याप्त अनैतिक संबंधों की चर्चा की है। विवाहरोपरान्त भी अनैतिक संबंध प्रायः देखने को मिलते है।वंशी अपने पति के होते हुए भी अपने नौकर जागला से संबंध रखती है। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि इस प्रकार के संबंध मानसिक दृष्टि से नहीं, बल्कि आर्थिक दृष्टि को केन्द्र रखकर स्थापित किए जाते हैं। इस समाज में विवाह धार्मिक बंधन न होकर आर्थिक बंधन रह गया है।

इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य मछुओं की आर्थिक स्थिति और नारी समस्या के साथ-साथ मछुओं के जीवन संघर्ष, अभाव, संगति-विसंगति की सच्ची तस्वीर पाठकों के सम्मुख रखता है। लेखक ने बरसोवा ग्राम के जीवनगत पहलुओं को यथार्थवादी दृष्टि से उज़ागर किया है। मछुओं की आर्थिक समस्या और कोली समाज में नारी समस्या- इन दोनों समस्याओं का स्वरूप विशिष्ट आंचलिक है और ये ही इस उपन्यास को आंचलिकता प्रदान करते हैं, आंचलिक वातावरण को सजीव बनाने के लिए लेखक ने कोलियों के जीवन की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक पक्ष को उभारने के अलावा कोलियों के संवादों में बंबइया हिन्दी का प्रयोग कराया है। यद्यपि कथानक का मुख्य केन्द्र अंचल ही है, पर कहानी बीच-बीच में शहर की ओर जाती है और लौट आती है और बरसोवा ग्राम के वैशिष्ट्य क़ो उभारने के साथ ही उसे प्रभावित करती है। बरसोवा के मछुओं के विशिष्ट पर्व-त्योहार, लोकनृत्य, लोकगीत तथा अन्य लोक तत्त्वों के प्रयोग से ही कथा की विशिष्ट आंचलिकता बनी रहती है।

कपिली परिया साधु

नवकातं बरूआ कृत 'कपिली परिया साधु' उपन्यास में नगाँव ज़िले में प्रवाहित होने वाली कपिली नदी के आस-पास फलने-फूलने वाले गाँवों की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रवाह का सजीव चित्रण किया गया है। उपन्यास में नदी को एक जीवंत चरित्र के रूप में अंकित किया गया है। यह नदी लोगों की श्रद्धा का पात्र होने के साथ ही, एक जीवनदायिनी स्त्रोत भी है।

'कपिली परिया साधु' उपन्यास की कथावस्तु की बुनावट को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है- कपिली के किनारे बसे लोगों का जीवन चित्र, रूपाय के जीवन की कथा,और स्वतंत्रता आंदोलन से सबंधित कथा। कपिली नदी का निर्मल जल न केवल लोगों की प्यास को तृप्त करती है, वरन् उन्हें एक सामाजिक-आर्थिक आधार भी प्रदान करती है। ग्रामीण जनों के लिए कपिली नदी सर्वस्व है और बदले में कपिली भी लोगों की भावनाओं, इच्छाओं, आशाओं को भली भाँति समझती है। यह नदी

उनकी सहचरी, पालन-पोषण करने वाली माँ और कभी-कभी विनाश करने वाली विध्वंस शक्ति के रूप में प्रकट होती है। कपिली नदी जहाँ एक ओर बाढ़ लाकर अनिष्ट करती है, वहीं दूसरी तरफ़ किसानों को सिंचाई के लिए जल प्रदान करती है और व्यापार-वाणिज्य में सहायता प्रदान करती है। इतना ही नहीं, आहोम जंयतियाँ विवाद में, तथा अन्य कई युद्धों में कपिली का किनारा युद्धों का स्थल रहा है।

कपिली को रूपाइ माँ मानता है और उसके किनारे बैठकर,उसके ममत्व का अनुभव करते हुए, अपनी समस्त वेदना, पीड़ा, हर्ष-विषाद को बाँटता है। कपिली नदी उसके जीवन के सभी रहस्यों को जानती है तथा विषम परिस्थितियों में उसका मनोबल बढ़ाती है। लेखक ने रूपाइ के माध्यम से कथा को गति प्रदान करते हुए, समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव की प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत की है। उपन्यास में यह दर्शाया गया है कि जाति प्रथा के चलते ही रूपाइ न तो अपने प्रेम को प्राप्त कर सका और न ही अपने पिता का पिंडदान कर सका। कारण वह एक अनाथ था, जिसका सिर्फ़ लालन-पालन धीरसिंह ने किया था। इसके साथ ही उपन्यास में शिक्षा को आवश्यक मानते हुए, उसके प्रचार-प्रसार के लिए ग्रामीण जनों का प्रयास सराहनीय है। ग्रामीण जनों का आर्थिक आधार खेत-खलिहानों से प्राप्त आय है। रूपाइ भी खेती करने के साथ-साथ सूत काटता है। वह गांधीजी का सच्चा भक्त है तथा उन्हीं के आदर्शों पर चलना चाहता है। अहिंसा का मार्ग अपनाना चाहता है। वह महात्मा गांधी के निद्धेशानुसार सूती कपड़ा पहनता है और विदेशी वस्तुओं का परित्याग करता है। वह गाँव के लोगों को भी स्वदेशी वस्तुएँ के उपयोग एवं महत्व के बारे में समझाता है।

देशव्यापी आंदोलन का छोटा सा रूप हमें इस सीमित अंचल गाँव में भी दिखाई देता है। तात्पर्य यह है कि अंग्रेज सरकार के दमन चक्र से वे बेखबर नहीं है। राष्ट्रीय चेतना व सामाजिक जागरूकता का नवीन रूप हमें इस उपन्यास में देखने को मिलता है। देश को स्वाधीन कराने में रूपाइ भी पूरा सहयोग देता है तथा पुलिस की मार खाता है और जेल यातना भी सहता है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि इन सबके पीछे जो शक्ति विद्यमान है वह है अपनी माँ जैसी कपिली नदी के साथ उसकी आत्मीयता एवं घनिष्ठ प्रेम जो उसे हताश परिस्थितियों में भी विचलित होने नहीं देती।

उपन्यास में लेखक ने असमिया समाज के सांस्कृतिक परिवेश को भी कुशलता एवं सजीवता के साथ उजागर किया है। असमिया समाज में पान-सुपारी अर्पित करने या भेंट में देने के महत्व को लेखक ने स्पष्ट किया है। कपिली नदी में नावों को चलाने से पूर्व पान-सुपारी दान में दी जाती है। इतना ही

नहीं, हर मांगलिक कार्य से पूर्व पान-सुपारी को चढ़ावे के रूप में अर्पित किया जाता है।

इस प्रकार लेखक ने आंचलिक पहलुओं को उभारने के लिए सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक स्थिति, धार्मिक वातावरण तथा राजनैतिक हलचलों का यथार्थ चित्रण किया गया है। प्रायः सभी आचंलिक उपन्यासों में कथात्मकता का अत्यंत अभाव पाया जाता है जिससे उपन्यास के माध्यम से किसी एक अविस्मरणीय-चरित्र का निर्माण नहीं हो पाता, परतुं प्रस्तुत उपन्यास के संबंध में इस प्रकार की कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती।लेखक ने छोटी-छोटी घटना का चित्रण कर इस अंचल को साकार करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास द्वारा रीति-रिवाज़, मान्यताएँ, आस्थाएँ आदि मुखरित होती है।

नोई बोई जाए

डॉ० लीला गोगोई कृत 'नोई बोई जाए' उपन्यास में असमिया संस्कृति के विविध पहलुओं - सामाज़िक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन का विशद विवेचन विश्लेषण मिलता है। अंचल विशेष का जीवन नित्य नए उपादान ग्रहण करते हुए, निरंतर परिवर्तित हो रहा है। इसी परिवर्तित समाज को केन्द्रित करते हुए लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में यह दशाने का प्रयत्न किया है कि नगरीय जीवन में मिश्रित जीवनशैली का विकास होता जा रहा है जिसके मूल में, गांव छोड़कर नगर में आकर बसने वाले लोग है। ऐसे लोग न ही पूरी तरह ग्रामीण जीवन को भूल पाते हैं और न ही नगरीय परिवेश के अनुकूल अपने आप को ढाल पाते है। ऐसे लोग आधुनिकता के मोह में पड़कर आंचलिक परिवेश को खो बैठते है। भगीरथ फुकन का बेटा विजन भी इसी नगरीय परिवेश का हिस्सा है जो अपने परंपरागत संस्कारों को सुरक्षित रख पाने में असमर्थ है। नगरीय चकाचौंध ने रिश्तों की परिभाषा ही बदलकर रख दी है। विजन के लिए 'मैं और मेरा संसार' के अतिरिक्त, दूसरी कोई भावना शेष नहीं रह गयी है।

लेखक ने भगीरथ फुकन के माध्यम यह दिखाने का प्रयास किया है कि समाज में न तो पहली जैसी आत्मीयता शेष है और न ही मानवीयता। भगीरथ अपने बीते दिनों की तुलना, आज के वर्तमान जीवन से करता है तो स्पष्ट तौर पर यह अनुभव करता है कि लोगों का रहन-सहन, रीति-नीति, आचार-विचार, खान-पान, मान्यताएँ आदि में परिवर्तन आ गया है। इसके अलावा धार्मिक अनुष्ठानों एवं सामाजिक सभाओं का अभाव लोगों की संकुचित मनोवृति का परिचय देती है। भौतिकवादी जीवन ने मनुष्य को स्वार्थी बना दिया है जिसके कारण समाज पहले की अपेक्षा संकीर्ण होता जा रहा है। भगीरथ फुकन के सभी बच्चे नगरीय परिवेश में अपना जीवन यापन करते हैं। गाँव के साथ आत्मीयता के संबंध

को सभी भूल चुके है, यहाँ तक कि जन्मदाताओं के प्रति, अपने कत्तव्यों से विमुख हो जाते हैं। समाज परिवर्तित तो हो रहा है, परतुं अपने मौलिक आदर्शों को पीछे छोड़ता जा रहा है ।

उपन्यास में लेखक ने असमिया ग्रामीण समाज की सुक्ष्म से सुक्ष्म घटना का विस्तार से विश्लेषण किया है। जात-पात की कठोर व्यवस्था ने लोगों की धारणाओं को संकुचित बना दिया है। समाज निरंतर परिवर्तन की दिशा की ओर अग्रसर हो रहा है, फिर भी जात-पात के बंधन ढीले नहीं हुए है। इसी छुआछुत और ऊँच-नीच की प्रबल भावना के कारण, जब भगीरथ फुकन की मौसी को मुसलमान जाति के डाक्टर से सुई लगवानी पड़ती है तो उन्हें लगता है कि जैसे उनका धर्म भ्रष्ट हो गया। अतः उन्होंने इसका प्रायश्चित किया।"[61] शिक्षा के महत्व को समझते हुए भगीरथ अपनी संतानों को उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करता है।

असमिया ग्रामीण समाज मुख्यतः कृषि प्रधान है, अतः नारी को इस समाज में विशेष सम्मान प्राप्त है। वह परिवार की देखभाल करने के साथ-साथ खेतों का कार्य भी कुशलता से करती है। कृषि प्रधान समाज व्यवस्था के कारण ग्रामीण जनों का आर्थिक आधार खेती से प्राप्त आय है। इसके अलावा लेखक ने असमिया समाज की सांस्कृतिक जीवन का बड़ा ही विशद विवेचन किया है। असमिया समाज का जातीय उत्सव - बिहु का जैसा सुंदर और सजीव वर्णन लेखक ने किया है, शायद ही अन्यत्र मिलें। बिहु उत्सव के तीनों प्रकारों- माघ बिहु, बहाग बिहु और काति बिहु का विस्तृत विवेचन किया गया है। असमिया ग्रामीण समाज की रीति-नीति, अंधविश्वास,विश्वास, जादू-टोना आदि के वर्णन के साथ ही स्वतंत्रता आंदोलन की गूँज भी सुनाई देती है। भगीरथ फुकन का बेटा सोन महात्मा गाँधी के विचारों से प्रभावित होकर कॉलेज छोड़कर लोकसेवा में लग जाता है।

कथानक का केन्द्र भगीरथ फुकन के जीवन के विविध पहलुओं से संबंधित है, साथ ही लेखक ने बहुत सी उपकथायें बुनकर पूरे गाँवों के आंचलिक वातावरण को चित्रित किया गया है, जिसकी टूटती बनती संस्कृति है, अपने विश्वास और मान्यताएँ है, अपने अच्छे बुरे चरित्र है, अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित इंसान है, अपने संघर्ष हैं, जिसकी अपनी भाषा व बोलचाल, रीति व्यवहार का ढंग है। लोक साहित्य के विभिन्न उपादानों-लोक- गीत, लोक-नृत्य, लोक-कथाएँ, लोक-कहावतें आदि से उपन्यास भरा पड़ा है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास असमिया समाज के यथार्थ परिवेश को अभिव्यक्त करने में सफल रहा है और आंचलिक तत्त्वों से पूर्ण है।

रंगमिलीर हाँही

रंगबंग तेरांग कृत उपन्यास 'रंगमिलीर हाँही' में कारबी जनसमुदाय के जीवनगत पहलुओं पर विचार-विश्लेषण किया गया है। कारबी समाज के संश्लिष्ट यथार्थ को उभारने के लिए लेखक ने वहाँ के सामाजिक मूल्यों, रीति-रिवाज़ों, आचार-विचार, लोकविश्वास, मान्यताएँ, आर्थिक और धार्मिक परिवेश का विशद विवेचन किया है। उपन्यास की प्रमुख विशेषता इसका आंचलिक परिवेश है। कथा का प्रारंभ प्रकृति के सुंदर वर्णन से होता हुआ, कारबी समाज की विशिष्ट जीवन-प्रणाली और विचित्र-सी लगने वाली सामाजिक, धार्मिक, नैतिक मान्यताओं वाली जातियों के लोगों के जीवन पर केन्द्रित है।

कथानक का प्रमुख पात्र सारइक तेरांग अंचल की जीवंतता का प्रतीक बनकर ग्रामीण जीवन में व्याप्त रुढ़िवादी परपरांओं के खिलाफ़ आवाज़ उठाता है। वह कारबी समुदाय के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए स्कूल खुलवाने का प्रयत्न करता है जिसके फलस्वरूप उसे अपने मुखिया पद का त्याग करना पड़ता है। परंतु वह एक परिवर्तित समाज का आकांक्षी है, अतः वह हार नहीं मानता और निरंतर प्रयास करता रहता है। उपन्यास के अंत में कारबी दरबार का गठन इस बात का सूचक है कि कारबी समाज अब परिवर्तन की दिशा में आगे बढ़ रहा है।

लेखक ने शिक्षा को आवश्यक माना है तथा उपन्यास में हेमाय के माध्यम से शिक्षा की गुणवता पर प्रकाश डाला है। इसके साथ इस तथ्य को भी उज़ागर किया है कि शिक्षित समाज ही लोगों में जागरूकता लाने के साथ, पुरानी रुढ़ियों के बंधन ढीले करने में सहायक बन सकता है। इतना ही नहीं, लेखक ने कारबी समाज के पिछड़ेपन का मूल कारण 'अफ़ीम के नशे' को बताया है, जो समाज को पतन की ओर ले जाता है। लिडंक के माध्यम से अफीम के कुप्रभावों का भावपूर्ण वर्णन-विश्लेषण किया गया है। कारबी लोगों का आर्थिक आधार झूम खेती है। गाँव की मुख्य पैदावार धान, सरसों है, साथ में पशुपालन पर भी ध्यान दिया जाता है।

कारबी समाज में नारी का विशेष महत्व है। वह गृहस्थी के कार्य-कलापों के अलावा खेती के कार्यों में भी पुरुष वर्ग की सहयोगी बनती है। अमफू, कादम्ब, कासांग सभी लड़कियाँ इसका उदाहरण है। कारबी समुदाय की संस्कृति का विशिष्ट अंग 'जिरसंग' की स्थापना है। जिरसंग एक सामाजिक अनुष्ठान है जो गाँव के लोगों की उन्नति का आधार माना जाता है। इसके साथ ही पूजा, पर्व-त्योहारोंया अतिथि के आगमन पर शराब का पान कराना, कारबी समाज की संस्कृति का अभिन्न अंग है। उपन्यास

के अंत में 'कारबी दरबार' की स्थापना के संकेत मिलने लगते हैं। कारबी समाज को आशा है कि इसकी स्थापना से उनका पिछड़ापन दुर होगा तथा उन्नति एवं कल्याण के नए मार्ग खुलेंगे। इस उपन्यास में लेखक ने इस तथ्य को उज़ागर किया है कि जब तक कारबी जनसमुदाय परिवर्तित समाज की मांग नहीं करेगा, तब तक सभ्यता की दौड़ में पिछड़ा ही रहेगा। यह पिछड़ापन वहाँ के भौगोलिक या प्राकृतिक परिवेश द्वारा उत्पन्न की गयी विभिन्न समस्याओं का सामूहिक प्रभाव है।

'रंगमिलीर हाँही' उपन्यास में लोक उपादानों के सामूहिक प्रभाव के कारण, वातावरण अधिकाधिक यथार्थवादी और विशिष्ट आंचलिक रंग में रंगी हुई है तथा इसकी कथावस्तु भी आंचलिक है। लेखक ने आंचलिक परिवेश को सजीव करने के लिए प्रकृति के बदलते स्वरूपों को, अपनी लेखन शैली द्वारा बड़े ही सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है। अंचल को उसकी संपूर्णता में चित्रित करने के लिए तथा यहाँ के वैविध्यपूर्ण जीवन की समग्रता को आलोकित करने के निमित लेखक ने कारबी समाज की अच्छी-बुरी सभी विशिष्टताओं, अंधविश्वासों से लेकर सांस्कृतिक मान्यताओं का वर्णन पूर्ण विस्तार के साथ किया है। धार्मिक अनुष्ठानों में स्वजन पूजा का विशेष महत्व है अतः लेखक ने इसका वर्णन विस्तार से किया है। हमफू देवता को पशुओं की बलि देकर, उसके फेफ़ड़े और कलेजे को देखकर ही मंगल-अमंगल का संकेत प्राप्त किया जाता है। लोक नृत्य, लोक वाक्य, लोकगीत आदि के प्रयोग से कथा को विशिष्ट आंचलिकता प्रदान की गई है। इस उपन्यास का महत्व इसलिए है क्योंकि लेखक ने पहली बार एक ऐसे समुदाय के जीवन के विविध पहलुओं को इस प्रकार सामने रखा कि सामाजिक परिस्थितियों से उनका घनिष्ट संबंध देखा जा सकता है।

मिरि ज़ियरी

'मिरि ज़ियरी' रजनीकांत बरदलै की पहली औपन्यासिक कृति है। इसकी रचना सन् 1894 में हुई थी। यह उपन्यास सोवणशिरी नदी के किनारे बसे धुनासूती गाँव में निर्वाह करने वाले लोगों की जीवन कथा कहता है। 'मिरि जियरी' एक आंचलिक प्रेम कहानी है, जिसका दुखद अतं पाठकों में वेदना की टीस उत्पन्न करता है। आचंलिक उपन्यासों में वर्णित प्रेम-कथा या प्रेम-प्रसंग सामान्य सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, उपन्यासों में आयी प्रेम-कथाओं से बहुत भिन्न, अलग और स्वतंत्र दिखाई देते हैं। जंकी और पानेई का प्रेम सरल, निष्कपट, अकृत्रिम और आडम्बर से रहित नैसर्गिक आंचलिक जीवन का स्वाभाविक प्रवाह है।

जंकी और पानेई इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं जो सोवणशिरी नदी के किनारे ही खेलकूद करते हुए पले-बड़े। दोनों का प्रेम शैशावस्था में प्रस्फुटित हो चुका था, परतुं उसका वास्तविक पल्लवन यौवन में हुआ। उनका प्रेम हृदय की सच्ची अनुभूति थी न कि मात्र क्षण भर का आकर्षण। दोनों प्रेमी युगल, नराचिगा बिहु वाली रात सोअनश्रिरी नदी के किनारे कारसिंण कारतान (चन्द्र, सूर्य) देवता को साक्षी मानकार एक-दुसरे के साथ जीवन व्यतीत करने की शपथ लेते हैं। लेकिन पानेई के पिता इस प्रेम का विरोध करते है तथा भारी धनराशि के लोभ में पड़कर पानेई का विवाह मुखिया के बेटे कुमुद से करने का निर्णय लेते हैं। पानेई अपने पिता की मनः स्थिति को भाप जाती है और जंकी के साथ भागकर गंधर्व-विवाह कर लेती है। लेकिन भाग्य को तो जेसे कुछ और ही मंजूर था, कुछ दिनों उपरातं दोनों पकड़े जाते है और उनकी लखीमपुर सदर कोर्ट में सुनवाई होती है। इधर तामेड रोष में आकर पानेई और कुमुद के विवाह का दिन निश्चित कर देता है।

पानेई जो जंकी के प्रेम में डूबी हुई थी, वह यह बात जानकर, हताशा अवस्था में जंगलों में भटकने लगती है और गाछी मिरि (पर्वतीया मिरि) के हाथों पकड़ी जाती है। जब जंकी को यह पता चलता है तो वह विचलित होकर अपनी प्रेमिका की खोज में निकल पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप गाछी मिरि उसे भी बंधी बना लेते हैं। दोनों प्रेमी फिर से एकजुट होकर भागने की चेष्टा करते हैं, परतुं पुनः पकड़े जाते हैं, दोनों प्रेमी युगल को दंड ढेने के उद्देश्य से मिरि समाज की बैठक (केबांग) बिठाई जाती है, जिसमें दोनों को दोषी मानते हुए प्राणदंड की सजा सुनाई जाती है और उनकी लाशों को सोवणशिरी नदी में बहा दिया जाता है। 'मिरि जियरी' प्रेम की त्रासदी मूलक कथा है।

ग्रामीण सभ्यता नदी केन्द्रित होती है, अतः मिरि समाज भी इससे अलग नहीं है। सोवणशिरी नदी उनके लिए जीवनदायिनी स्त्रोत है जो उनके समग्र जीवन को प्रभावित करती है। लेखक ने सम्पूर्ण उपन्यास में सोवणशिरी नदी के महत्व को प्रतिपादित किया है।

यह नदी केवल घटनाओं की पृष्ठभूमि ही नहीं वरन् मिरि जाति की अमूल्य धरोहर और श्रद्धा का पात्र है। सुख-दुख, अनुकूल- प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में मिरि समाज के लोग इस नदी के साथ गहरे रूप में जुड़े हुए है। यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि मिरि समाज का सोवणशिरी नदी के साथ आत्मीयता, घनिष्ठता और संवेदना का संबंध है। जंकी और पानेई का प्रेम इसी नदी किनारे विकसित हुआ और अंत में इसी नदी की धारा में विलीन हो गया।

'मिरि ज़ियरी में आंचलिकता के सभी पुट मिलते है। हालांकि जब इस उपन्यास की रचना की गई थी, तब तक उपन्यास साहित्य में आंचलिक उपन्यासों का श्रीगणेश नहीं हुआ था । लेकिन फिर भी इस उपन्यास में आंचलिक तत्त्वों की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। इसकी कथावस्तु जटिल एवं उलझी हुई न होकर सरल है। कहानी को गति प्रदान करने के लिए लेखक ने अनावश्यक, अटपटे और अस्वाभाविक प्रसंगों की सृष्टि नहीं की है। कथानक में कहीं पर भी बिखराव नहीं है, जो अधिकांश आंचलिक उपन्यासों में पाया जाता है। उपन्यास में मिरि समाज अपने जीवंत परिवेश के साथ उपस्थित हुआ है। जंकी और पानेई के प्रेम और वियोग के चित्र, मिरि समाज को अपने साथ लेकर चलते हैं। उपन्यास में मिरि समाज के रहन-सहन, रीति-नीति, सामाजिक मूल्य, सीमित मनोवृति, संस्कार, संघर्ष, सरग पूजा, लोक-गीत, लोक-नृत्य, लोक-खेल, अंधविश्वास, मान्यताओं आदि का सजीव वर्णन मिलता है। कुल मिलाकर यह कहना समीचीन होगा कि लेखक ने मिरि जनजीवन के आंचलिक पहलुओं को अधिक तटस्थ और यथार्थवादी ढंग से चित्रित करने का प्रयास किया है।

कईनार मूल्य

लुम्मेर दाई कृत उपन्यास 'कईनार मूल्य' में आदि समाज में रहनेवाले तथा बसनेवाली विशिष्ट दंग की जीवन-प्रणाली और विचित्र-सी लगनेवाली सामाजिक- आर्थिक, नैतिक मान्यताओं का विश्लेषण किया गया है। उपन्यास में लड़की बेचने तथा उसका मूल्य ग्रहण करने की सामाजिक कुप्रथा का बड़ा ही हदयस्पर्शी वर्णन मिलता है।

उपन्यास का कथानक सरल है, आदि समाज में लड़की का पैदा होना हर्ष का विषय माना जाता है। कारण, लड़की को विवाह के नाम पर बेचा जाता है और लड़केवालों को उसका मूल्य चुकाना पड़ता है। इसी सामाजिक कुप्रथा के तहत गुमबा को उसके पिता कारगुम बचपन में ही बेच देते हैं, जिसके बदले उसे नकद रूपए, कास्य के बर्तन, मेथोन, गाय आदि मिलते हैं। कारगुम गुमबा को शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्कूल भेजता है। थोड़ी बहुत शिक्षा प्राप्त करके, गुमबा इस तथ्य को समझ जाती है कि यह एक सामाजिक कुरीति है जिसका विरोध किया जाना चाहिए। इस विरोध के परिणामस्वरूप उसे रुप में पूर्णतः स्वीकृत और प्रतिष्ठित हो चुकी है। यह स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य का एक अभिनव प्रयोग और महत्वपूर्ण उपलब्धि है। अपने परिवार, ससुराल वालों तथा समाज का अमानवीय व्यवहार सहना पड़ता है। उपन्यास में आदि समाज के सामाजिक परिवेश का यथार्थ चित्रण मिलता है। एक ओर

लड़की बेचने की कुप्रथा है, तो वहीं दूसरी ओर बाल-विलाह की शिकार गुमबा का शारीरिक यातनाओं को दृढ़ता से सहना जैसे प्रसंग उपन्यास में मार्मिक बन पड़े है। लेखक ने आदि समाज के कटु सत्य को उज़ागर करने के साथ ही परिवर्तन को आवश्यक माना है।

इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें गुमबा, आदि समाज की सामाजिक कुरीतियों, अनीति, अत्याचारों के विरुद्ध लड़ती है तथा अंत में इस परंपरागत कुप्रथा से समाज को मुक्त कराने के प्रयास में सफल होती दिखाई देती है। उसका प्रतिवाद आदि समाज के कुछ लोगों को रुढ़िवादी नियमों के प्रति सचेत करता है। मिजुंम का मानना है कि "आदि समाज की मुख्य समस्या बाल-विवाह प्रथा और बलपूर्वक विवाह है, जो स्त्री जाति पर किसी निर्मम अत्याचार से कम नहीं है।"[62]

आधुनिकता अपने भीतर नुतनता और परिवर्तन को समाविष्ट किए रहती है। यह उस निदिष्ट समाज़ के ऊपर निर्भर करता है कि क्या ग्रहण किया जाए और किसे छोड़ा जाए। आदि समाज आज भी पिछड़ा हुआ है। कारगुम के लिए समय नापने का साधन कटहल के पेड़ पर लगनेवाले फल तथा बांस के वृक्षों का बढ़ना है। आदि समाज आज भी परंपरागत नीति-नियमों को आत्मसात किए हुए है तथा परिवर्तन के धोर विरोधी है। समाज के ठेकेदार परिवर्तन का विरोध करते हुए यह तर्क देते है कि इससे उनके सामाजिक नियम समाप्त हो जायेंगे, जो उनके अस्तित्व के लिए घातक सिद्ध साबित होगा। लेकिन उपन्यास के अंत तक गुमबा के प्रयासों से यह भान होने लगता है कि लोगों की सोचने-विचारने की शक्ति में परिवर्तन आने लगा है। समाज इस तथ्य को समझने लगा है कि जिस प्रकार पानी की बहती धारा को रोका नहीं जा सकता, ठीक वैसे ही समाज में होने वाले परिवर्तनों को रोकना व्यर्थ है।

उपन्यास में आंचलिकता की पुष्टि के लिए आदि समाज की विभिन्न सामाजिक मान्यताओं, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश तथा संगतियों, विसंगतियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। लुम्मेर दाई ने आदि समाज के जीवन यथार्थ का चित्र प्रस्तुत किया है साथ ही एक सड़ी-गली मान्यता, स्वार्थवृत्ति तथा पुरानी पीढ़ी की शोषक प्रणाली जैसी आंचलिक समस्याओं को केन्द्र में रखकर उसका यथार्थवादी दंग से विश्लेषण किया है। ये सभी समस्याएँ अंचल-जीवन से संबंधित है तथा इनका चित्रण आत्मीयता और अनुभव की प्रामाणिकता के साथ इस उपन्यास में हुआ है।

निष्कर्ष

उपन्यास जीवंत रचनाविधा है और हर सत्ता की तरह निरंतर विकासमान है। वास्तव में, लेखक

मानव जीवन का मूल्यांकन करते हुए अपने जीवन दर्शन को प्रस्तुत करता है। उपन्यास युगीन सत्य के निकट होता है, जिसमें मानव जीवन का यथार्थ भी सम्मिलित होता है। उपन्यास साहित्य में यथार्थ के आग्रह ने आंचलिक प्रवृत्ति को बल दिया तथा लेखकों को लोकसंस्कृति और विभिन्न भू-भागों के जीवन की ओर आकृष्ट किया। अंचल के रीति-नीति, परंपराए-मान्यताएँ, जाति प्रथा, लोकाचार, वेश-भूषा, भाषा आदि ने, आंचलिक तत्त्वों के संमिश्रण से हिन्दी उपन्यास साहित्य कला, एक नई विधा के रूप में विकसित हुई। इसके विकास में जहाँ एक ओर स्वातंत्र्योत्तर राजनैतिक सामाजिक परिस्थितियाँ है, वहीं बाह्य-प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित है। आंचलिक उपन्यास, साहित्य की एक स्वतंत्र और विशिष्ट विधा के रूप में स्वीकृत और प्रतिष्ठित हो चुकी है। यह स्वातंत्रोत्तर हिन्दी कथा साहित्य का एक अभिनव प्रयोग और महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

आंचलिक उपन्यास में, मुख्यतः किसी एक विशिष्ट अंचल के भौगोलिक परिवेश, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन का यथार्थवादी दंग से विश्लेषण किया जाता है। आंचलिक उपन्यासकार विशिष्ट अंचल तक अपने को सीमित अवश्य रखता है, पर जहाँ तक जीवन के भौतिक पहलुओं के चित्रण का संबंध है, वह किसी निश्चित दायरे के अंतर्गत कार्य नहीं करता। मनुष्य की जितनी भी सार्वभौम एवं सार्वजनीन समस्याएँ हो सकती है उनका चित्रण आंचलिक उपन्यासों में विशद रुप से किया जाता है और उनसे किसी-न-किसी चिरंतन सत्य का प्रतिपादन किया जा सकता है। इसलिए आंचलिक उपन्यासकार अंचल के जीवन के भोक्ता या निकट द्रष्टा होते हैं।

आंचलिकता की इस प्रवृति ने प्रेमचन्द्रोत्तर काल के हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में दृष्टिगोचर होने वाली दो प्रबल धाराओं के मध्य एक सेतु बनाने का कार्य किया। प्रथम धारा थी प्रेमचंद की ही परम्परा को नए रुपविधान एवं शिल्प देकर देशकाल के योग्य बनाने की, और द्वितीय थी व्यक्ति की सत्ता को सर्वोपरि मानकर उसे साहित्य में प्रतिष्ठित करने के प्रयत्न की। आंचलिकता की इस नयी धारा ने प्रेमचंद युग की पिछड़ी हुई परंपराओं को त्यागकर व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता की प्रतिष्ठा से उत्पन्न विनाशकारी तत्त्वों के विरुद्व नये युग की नई चेतना और नवीन मूल्यों को ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करने की प्रबल चेष्टा की है।

आंचलिक उपन्यासों में अंचल क्षेत्र की विशिष्टता के तत्त्व निहित तो है ही, साथ ही राष्ट्रीय चेतना की भावना को भी अभिव्यक्त करते हैं। अंचल के प्रत्येक हिस्से की विशेष महक और क्षेत्रीयता का

ज्ञान इन्हीं उपन्यासों के माध्यम से संभव हुआ है। आंचलिक उपन्यासों की विषयवस्तु और शिल्प सामान्य उपन्यासों से भिन्न है, क्योंकि आंचलिक उपन्यास में कथा के संगठन का आधार कथानक, पात्र अथवा उद्देश्य विशेष न होकर एक विशिष्ट भू-भाग होता है।

भारतीय उपन्यास साहित्य में, चाहे वह जिस-किसी भी भाषा का हो, आंचलिक तत्त्वों समावेश मिलता है। हिन्दी तथा असमिया उपन्यास साहित्य के संदर्भ में यह तथ्य पूर्णतः सत्य है। सामान्य जनजीवन पर प्रकाश डालते हुए उनकी अपनी समस्याओं का विश्लेषण करते वक्त इस प्रकार आंचलिक तत्त्वों की पकड़ उपन्यासकारों के लिए सहज ही नहीं अनिवार्य भी हो जाती है। इसलिए अनेक श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यासों की श्री-समृद्धि से हिन्दी का उपन्यास-साहित्य सम्पन्न हुआ। इन लेखकों में फणीश्वर नाथ रेणु, उदयशंकर भट्ट, राही मासूम रज़ा, रांगेय राघव, नागार्जुन, शिवप्रसाद सिंह आदि प्रसिद्ध है।

असमिया में भी हिन्दी की तरह सामाजिकता के साथ उपन्यासों में आंचलिकता का समावेश हुआ है। आरंभकालीन असमिया की औपन्यासिक कृतियों में भी वस्तुतः आंचलिक तत्त्व देखे जा सकते हैं। सामाजिक यथार्थवाद के प्रभाव के कारण असमिया उपन्यासों में अंचल विशेष के जीवन का भी चित्रण अनिवार्य सा हो गया और इस नाते लेखकों ने आंचलिकता को अपनाया और इसके विविध तत्त्वों के परिप्रेक्ष्य में अपनी कृतियों को अधिक मोहक बनाया। असमिया उपन्यासकारों ने अपने परिचित वातावरण को साकार रूप देने में निष्ठावान है। इसलिए यहाँ के उपन्यासों में आंचलिकता का भाव आ ही जाता है। कभी-कभी यह स्थानीय रंगत और पात्रों के सम्पूर्ण वातावरण को भी सीमित करता है। परंतु आज के वर्तमान समय में इस स्थिति में परिवर्तन आ रहा है और आंचलिक उपन्यासों की रचना उसके अपने समस्त तत्त्वों के आधार पर होने की एक प्रबल धारा प्रवाहित होने लगी है। असमिया आंचलिक उपन्यासकारों में प्रमुख है- रजनीकांत बरदलै, नवकांत बरुआ, रंगबंग तेरांग, लुम्मेर दाई, डॉ० लीला गोगोई, होमेन बरगोहाई आदि।

कुल मिलाकर यह कहना समीचीन होगा कि भारत के सभी अंचल एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी किन्हीं अर्थों में अभिन्न है। यदि अंचल की तुलना की जाए तो प्रत्येक अंचल की अपनी विशेषताएँ हैं, इसका कारण यह है कि यह अंचल एक विशिष्ट भौगोलिक पर्यावरण में स्थित है। भारत की सर्वसाधारण जन-जीवन की अनुभूतियों को रूपायित करने एवं उसके माध्यम से विशाल भारत का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में आंचलिक उपन्यासकारों ने आंचलिक भाषाओं का प्रयोग कर, अपनी रचनाओं के उद्देश्य को स्पष्ट करने में पूर्णरूप से सफल रहें है।

संदर्भ सूची

1. मैला आंचल, भुमिका, फणीश्वरनाथ रेणु ।

2. आधुनिक परिवेश और नव-लेखन, शिवप्रसाद सिंह, पृ-116

3. पूर्णिमा, राजनाथ पाण्डेय - (अप्रैल 60, पृ- 6)

4. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि, आदर्श सक्सेना, पृ - 21

5. हिन्दी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा,भाग- I. पृ-95

6. वहीं, भाग-I पृ-156

7. सारिका 'मासिक' - अक्टूबर 1961.

8. आंचलिकता यथार्थवाद और फणीश्वरनाथ रेणु, सुवास कुमार , पृ-17

9. हिन्दी उपन्यास-एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ-225

10. हिन्दी के आंचलिक उरन्यासों में जीवन सत्य, इन्दु प्रकाश पाण्डेय , पृ-23

11. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत (द्वितीय भाग), गोविन्द त्रिगुणायत, पृ-443

12. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, शशिभूषण सिंहल, पृ-219

13. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, विद्याधर द्विवेदी , पृ-13

14. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, प्रकाश बाजपेयी - , पृ-6

15. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ - 935

16. साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ, जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, पृ - 57

17. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि, आदर्श सक्सेना, पृ - 21

18. The English Regional Novel, Phyllis Bentley, P -7

19. Abrams, 1970 - P, 113

20. Encyclopaedia Americana, Voi XVII, P - 571.

21. उपन्यास आरू असमिया उपन्यास, गोविन्द प्रसाद शर्मा , पृ 309.

"एटा अंचलक केन्द्र करि अर्थात् सेई अंचलतोर अकल पटभूमियेई नहय विषयवस्तु हिसापेउ लोय उपन्यास रचना करा हय, सेईबोर उपन्यासके आंचलिक उपन्यास बोले।

एने उपन्यासत जीतो अंचलतोए एने भूमिका पालन करे जे सेई अंचलतोर मानुहबोरर रीति-नीति, मात-कथा, लोकविश्वास, धर्म-विश्वास आदि सकलो कथा तात प्रतिफलित होय।"

22. आधुनिक असमिया उपन्यासर शिल्परीति, प्रदीप कुमार बरूआ, पृ 80.

"आंचलिकतार सर्वप्रथम उपादान होल भौगोलिक परिवेश। प्रतितो अंचलरे किसु निजस्व भौगोलिक उपादान थकातो नितान्तई अपरिहार्य। भौगोलिक उपादान समूहे मानूहर देहिक गठन, खाद्य-भाषा, साज-पार, चिंता-चर्चा आरू भाषा-संस्कृतिर निजस्व रूप एता लोआत सहाय करे।"

23. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ-226.

24. हिन्दी उपन्यास, सुषमा प्रियदर्शिनी , पृ-79-80.

25. आंचलिक उपन्यास : संवेदना और शिल्प, ज्ञानचंद गुप्त , पृ-24.

26. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और शिल्पविधि, आदर्श सक्सेना , पृ-203.

27. रेणु का आंचलिक कथा-साहित्य, पूर्णदेव , पृ-13.

28. साहित्यलोचन, श्यामसुंदर दास , पृ-259

29. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में शिल्पविधि, जवाहर सिंह, पृ-266

30. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, भुमिका ,आचार्य नंददुलारे बाजपेयी,लेखक प्रकाश बाजपेयी,पृ-2

31. आंचलिकता यथार्थवाद और फणीश्वरनाथ रेणु, सुवास कुमार, पृ-16

32. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ-224

33. गंधदीप, कहानी आज की, 1963, पृ-246

34. महेन्द्र और शर्मा, 1963, पृ-132

35. स्वातंत्र्योतर हिन्दी उपन्यास, कांति बर्मा, पृ-184

36. हिन्दी उपन्यास, एक सर्वेक्षण, श्री महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ-203-208

37. सत्रह आंचलिक कहानियाँ - भुमिका, राजेन्द्र अवस्थी, पृ-7

38. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में राजनैतिक चेतना, सरोज यादव , पृ-37

39. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद , पृ-2

40. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, पृ-60

41. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ-14

42. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, पृ-54

43. शेखर एक जीवनी, अज्ञेय, भूमिका

44. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ-14

45. Reading A Novel, Allen Walter, P -13.

46. The Novel and the people,Raulf Fox , P-2.

47. Aspects of Novel E.M.Foster, P- 27.

48. कूछ विचार, प्रेमचंद, पृ-163

49. काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ-175

50. साहित्यलोचन, श्यामसुंदर दास, पृ-175

51. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प-विधि, जवाहर सिंह, पृ-218

52. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, त्रिभुवन सिंह, पृ-415

53. आधा गाँव (उपन्यास के बीच में लिखी गई भूमिका),राही मासूम रज़ा, पृ-302

54. वहीं, पृ-297

55. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ-18

56. वहीं, पृ-35

57. वहीं, पृ-268

58. स्वातंत्र्योतर हिन्दी कथा - साहित्य ओर ग्राम-जीवन, विवेकी राय, पृ-156

59. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ-6

60. वहीं, पृ-485

61. नोई बोई जाए, लीला गोसाई, पृ-82

62. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, पृ-109

द्वितीय अध्याय

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में सामाजिक जीवन

द्वितीय अध्याय

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में सामाजिक जीवन

आंचलिक उपन्यास का आधार और पृष्ठभुमि कोई अंचल विशेष होता है। यह अंचल विशेष न केवल भौगोलिक और प्राकृतिक दृष्टि से अपने आस-पास के विस्तृत क्षेत्र से भिन्न एवं विशिष्ट होता है, बल्कि इसकी सामाजिक संरचना, आर्थिक समस्याएँ, सांस्कृतिक परिवेश तथा निवासियों की मानसिकता भी सामान्य से भिन्न और विशिष्ट होती है। "आंचलिकता अपनी बनावट में किसी भी अन्य औपन्यासिक प्रवृत्ति की भाँति मनुष्य को उसकी जिंदगी के साथ खोजती है। उसे घेरने वाले तमाम आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक पहलुओं के बीच। मनुष्य की खोज जितनी महत्वपूर्ण है उतने ही महत्वपूर्ण ये पहलु भी हैं।"[1] आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक जीवन, किसी विशेष भू-भाग में रहनेवाले जनमानस से संबंधित होते हैं। इसमें उस विशिष्ट समाज में प्रचलित विभिन्न जातियों, अनेकानेक विचार पद्धतियों, मान्यताओं एवं मर्यादाओं का पूर्ण ध्यान रखा जाता है। साथ ही पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं का वर्णन मिलता है। घटनाएँ काल्पनिक न होकर यथार्थ के धरातल पर आधारित होती है तथा इसके पात्र यथार्थ जीवन के सजीव प्राणी है इसलिए वह आजीवन संघर्ष करता रहता है।

आंचलिक उपन्यासों में मुख्यतः सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक तथा आर्थिक समस्याओं पर विशेष बल दिया जाता है।वास्तविक जीवन चित्रण पर विशेष आग्रह होने के कारण आंचलिक उपन्यासकार अपनी कृति में सामाजिक स्थितियों का यथार्थ वर्णन करते हैं जिसके फलस्वरूप सामाजिक बुराईयों का चित्रण अधिक मिलता है और इसके स्वस्थ्य सामाजिक रूपों की वे प्रायः उपेक्षा कर देते हैं। आंचलिक उपन्यासों में सामाजिक जीवन को लक्ष्य करते हुए डॉ० विद्या सिन्हा लिखती है कि - "आंचलिक उपन्यासों में सामाजिक स्थितियाँ किसी विशिष्ट भौगोलिक परिधि के भीतर विद्यमान सामाजिक संरचना की स्थितिशीलता और उसके टूटने की प्रक्रिया तथा मानवीय संबंधों के बदलाव के संदर्भ में उत्पन्न होती है और उनका प्रयोग लेखक अपने वस्तु संगठन के लिए करता है।"[2]

आंचलिक उपन्यासों में सामाजिक जीवन का चित्रण दो भागों में हुआ है, पहला ग्रामीण जीवन तथा दूसरा शहरी जीवन। आंचलिक उपन्यासों को इस आलोक में परीक्षित करना, आंचलिकता के प्रति

एक सार्थक दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर सकेगा।

ग्रामीण जीवन

भारतीय जीवन का यथार्थ स्वरूप गाँवों में बसता है। "भारतीय जीवन तथा सभ्यता का मूल स्त्रोत कृषि है और उसका विस्तार ग्राम-जीवन में ही परिलक्षित होता है।"[3] यदि हम डॉ० विवेकी राय के शब्दों को ही लें तो कह सकते हैं कि, "ग्रामजीवन एक विशेष मनोदशा है, एक सहज, सरल वृत्ति है और भारतीय जीवन का शाश्वत रागबोध है। वह अकृत्रिम तलवर्ती संस्पर्श है। इसे गाँव में ही नहीं, शहर के जीवन में भी जीते हुए अगणित सुख-दुख की मूरतों में उतारा गया है।"[4] ग्रामीण जीवन के समग्र रूप और उसके प्रामाणिक अध्ययन के लिए आवश्यक है कि उसके विविध पक्षों का गहन अध्ययन विश्लेषण किया जाए तथा उसके आंतरिक स्वरूप को भलीभांति समझा जाए। अतः आगे हम हिन्दी और असमिया आंचलिक उपन्यासों के आलोक में ग्रामीण जीवन में घटित होनेवाली सामाजिक स्थितियों का विश्लेषण करेंगे।

परिवार

ग्रामीण समाज में परिवार का विशेष महत्व है। परिवार के सभी सदस्यों के विचारों और जीवन के प्रति दृष्टिकोण में समानता पाया जाती है। परिवार प्रेम की अटूट डोर से बँधे होते है तथा आतंरिक भेद बहुत कम पाए जाता है। परिवार के मुखिया की शक्ति सबसे अधिक होती है तथा अन्य सदस्य उसके निद्धेशानुसार कार्य करते हैं और वह भी जब सोचता है तो व्यक्तिगत रूप में न सोंचकर अपने परिवार के बारे में पहले सोचता है। परिवार के सदस्य आपस में सुदृढ़ संबंधों से बँधे रहते हैं, अतः मान-अपमान, अच्छा-बुरा, प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा, सबका सम्मिलित प्रभाव एक व्यक्ति पर न पढ़कर समस्त परिवार पर पड़ता है।

ग्रामीण समाज में सामाजिक उत्तरदायित्व की इकाई परिवार ही होते हैं। सभी प्रकार के कार्यों का उत्तरदायित्व भी परिवार पर ही रहता हैं। चाहे विवाह से संबंधित विभिन्न प्रकार के संस्कार हो, उत्सव या पूजा-पाठ हो, परिवार के सभी सदस्यों द्वारा एक साथ मनाये जाते है। परिवार का मुखिया, परिवार को अटूट डोर से बाँधने के साथ-साथ, अन्य सदस्यों की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक अनुष्ठानों तथा ज्ञान संबंधी सभी मामलों में निर्देशन करता है तथा उचित-अनुचित बातों से अवगत कराता है।

ग्रामीण समाज में परिवार की महत्वता स्पष्ट तौर पर परिलक्षित होती है। ग्रामीण जन संयुक्त

परिवार में रहना पसंद करते है तथा एक दुसरे के सुख-दुख को अपना मानते है। घर में बड़े-बुजुर्गों के प्रति सम्मान का भाव रखा जाता है और उन्हीं के जीवानुभावों का अनुसरण कर, जीवन पथ को सुगम बनाने का प्रयास किया जाता है। 'मैला आंचल' में खेलावनसिंह यादव की डेरावाली बालदेव की बुढ़ियाँ मौसी को अपने साथ रहने का निमत्रंण देती हुई कहती है -

"घर आँगन सब आपका ही है। जिस घर में एक बूढ़ी नहीं, उस घर का भी कोई ठिकाना रहता है। मैं अकेली क्या करूँ, दुध-घी देखूँ कि गोबर-गुहाल ?"[5]

समसामयिक भारतीय ग्रामीण समाज के संयुक्त परिवार के परम्परागत ढाँचे में निरंतर परिवर्तन आ रहा है, आज संयुक्त परिवार धीरे-धीरे लघु परिवारों की ओर अग्रसर हो रहा है। 'अलग-अलग वैतरणी' के ठाकुर जैपालसिंह इस बदलते हुए परिवेश से भली भांति परिचित है और परिवार के मुखिया होने के नाते यह चाहते हैं कि उनका परिवार कभी न बिखरे। वे अपने बड़े-बेटे बुझारथ के चाल-चलन को अच्छी तरह पहचानते थे और जानते थे कि उनके मृत्युपंरात यह परिवार टूट जाएगा। अतः वह भयभीत और चिंतित होकर यहीं सोचते रहते, कि किस प्रकार इस परिवार को जोड़े रखा जाए। वह अपनी बहु कनिया से कहते है - "मुझे बड़ा भय था। दुश्चिन्ता से रात-रात भर नींद नहीं आती थी। मैं सोचता था कि हे भगवान, क्या यह भी होगा मेरे परिवार में ? मैं जानता था बेटी कि चाहे जो कुछ हो जाए, पर तु माथा नहीं झुकायेगी। अन्याय के सामने तू नहीं झुकेगी। इसीलिए मैं और भी परेशान था कि कहीं मेरा परिवार टूट न जायें। बेटे-बहु बिछुड़ न जायें। पर बेटी, तूने मेरे परिवार को सँभाल लिया। तू भीतर से अपने को ताड़कर भी परिवार भी को बचाये रही।"[6]

ग्रामीण समाज में पारिवारिक संबंधों में तनाव का कारण पुरातन एवं नवीन पीढ़ी के विचारों में मतभेद है। यही कारण है कि आज माता-पिता के साथ संतान के संबंधों में विच्छेद आ गया है। देवनाथ और उसके पिता के बीच विचारों को लेकर तर्क-वितर्क होता है और अंत में देवनाथ अपने पिता के संबंध में अपनी राय अपने दोस्त विपिन को बताते हुए कहता है - "हमारे बाबूजी यह मानते है कि उनके घर में उनका एक पक्ष है, बाकी लोगों का एक पक्ष। सिर्फ़ उनका पक्ष सही है, बाकी लोगों का पक्ष गलत है, अनुचित है और परिवार की प्रतिष्ठा के लिए घातक है। वह जो सोचते हैं ठीक है, बाकी लोग जो सोचते हैं गलत है। इसीलिए बाकी लोगों को सोचने का कोई हक नहीं है।"[7]

इसके साथ ही, पति-पत्नी के संबंधों में भी दरारें उभर कर सामने आने लगी है। कल्पू की

नपुंसकता पटनहिया के वैवाहिक जीवन को नष्ट कर देती है- "मैं जिस आदमी को ब्याही गयी, उसने मुझे औरत की तरह कभी नहीं देखा। सच तो यह है दिदिया कि मैंने यह जाना नहीं कि आदमी के माने क्या होता है।"[8] सुभागी और जगेसर के संबंध तनिक सी बात पर बिगड़ जाती है और वह पत्नी को पीटने लगता है - "जगेसर रज़ाई फेंककर तमतमाया हुआ उठ बैठा। उसने सुभागी की पीठ पर ज़ोर का एक हाथ दे दिया .... उसने खींचकर एक थप्पड़ उसके गाल पर जड़ दिया।"[9] संबंधहीनता के इस दौर में परिवार के अन्य संबंधों में भी खिचांव आ गया है। बड़े भाई बुझारथ और विपिन के बीच मतभेद की पुष्टि बार-बार होती है। इसके अलावा बुट्टू अपने चाचा विपिन को लाठी से मारता है - "बट्टू ने विपिन को मारा है। .... बड़ा भाई मार भी दे तो उसका कुछ भी जवाब न देने की परम्परा आज अचानक भहराकर गिर गयी थी। बुट्टू तो भाई भी नहीं, लड़का है। यह घटना स्वंय में उतनी बड़ी नहीं, जितनी बड़ी वह पारिवारिक व्यवहार के इस संदर्भ में लगती है।"[10] इस प्रकार ग्रामीण समाज में भी परम्परागत पारिवारिक ढाँचा में परिवर्तन के साथ संबंधों में तनाव आ गया है।

"आधा गाँव" में, ग्रामीण जीवन में परिवार की महत्ता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन समाजों में धार्मिक विश्वासों तथा अनुष्ठानों पर भी परिवार के महत्व की छाप होती है। कोई भी उत्सव या पूजा-पाठ हों, समस्त परिवार एकजुट होकर उसमें शामिल होते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने परिवार के सभी सदस्यों द्वारा मोहर्रम की तैयारी किए जान का वर्णन करते हुए कहते है कि - "नवीं मोहर्रम के आते-आते तो अम्मू (चाचा), चच्चा, बच्चा, शब्बर दा, अग्गू दा, हम्माद दा, फुन्नन दा, अबबू दा, सिब्तू दा, हामिद दा और हद तो यह है कि गोरे दा और गुज्जन दा भी बढ़-बढ़कर मातम के हाथ लगाने लगते थे, और मातम इतना ज़ोरदार हो जाता था कि हाँडियों और कँवलों और फ़ानूसों की बिल्लूरी क़लमें मातम की गमक से काँप उठा करती थीं।"[11]

इसके विपरीत पारिवारिक संबंधों में आर्थिक विषमता के कारण मतभेद की स्थिति भी उत्पन्न होने लगती है। परिवार में अपना अधिकार स्थापित करने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है। "बुढ़िया मरने का नाम भी नहीं ले रही थी। कुंजियाँ सँभाले बैठी हुई थी और सकीना को एक एक पैसा का मुँह देखना पड़ता था। रब्बनबी ने जो पहना दिया, पहनना पड़ा, जो खिला दिया, खाना पड़ा।"[12] सास-बहु में अधिकार स्थापत्य को लेकर काफ़ी तनाव उत्पन्न होता है।

'सागर, लहरें और मनुष्य' में त्यौहारों पर परिवार के सभी सदस्यों का एकजुट होकर कार्य

करना, परिवार के बीच प्रेम को दर्शाता है। होली के उत्सव के दिन बरसोवा के कोलियों में नई चेतना जाग्रत हो जाती है वंशी और उसके परिवार के अन्य सदस्य मिलकर तैयारी करते है - "वंशी ने अपनी ओर से तैयारी की। घर के सामने मैदान में दरियाँ बिछवाई। .... वंशी खाने की तैयारी में रही, रत्ना स्त्रियों के स्वागत में। विट्ठल-जागला आदमियों की तरफ़ थे। भोज हुआ। शराब में धुत्त कोली स्त्री-पुरूष झांगरी लिए गोल बाँधकर नाचने लगें।"[13]

कोली समाज में स्त्रियों का राज है और लड़कियाँ घर का सारा कामकाज देखने के अलावा बाहर जाकर मछलियाँ बेचती है। इसलिए घर की मुखिया प्रायः कोई औरत होती है। वंशी अपने परिवार की मुखिया है और सभी सदस्य उसके निर्देशानुसार कार्य करते हैं। वंशी सदैव अपने परिवार के सकुशल होने की कामना करती है। जब उसका पति समुद्री तुफ़ान से सकुशल लौट आया, तब वंशी ने परिवार की शांति के लिए पूजा-पाठ करवाया। वंशी ने महाभारत की कथा बैठाई जो एक मास तक चली।"[14]

इन प्रमुख उपन्यासों के अतिरिक्त रामदरश मिश्र के जल टूटता हुआ, पानी के प्राचीर, रेणु के परती परिकथा, नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची', सच्चिदानंद धूमकेतु के 'माटी की महँक' आदि आंचलिक उपन्यासों में भी ग्रामीण जीवन में परिवार की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

असमिया आंचलिक उपन्यासों में भी, ग्रामीण जीवन में परिवार की महत्ता, व्यक्ति, परिवार और समाज के आपसी संबंधों का वर्णन मिलता है। 'नोई बोई जाए' में लेखक ने ग्रामीण जीवन में परिवार, वंश की महत्ता को स्पष्ट करते हुए, इस बात के संकेत दिए है कि ग्रामीण परिवेश में अधिकतर लोग संयुक्त परिवार में रहना पंसद करते है। परिवार के सभी सदस्य आपस में प्रेम और त्याग की भावना से जुड़े रहते है। सभी सदस्यों के विचार और जीवन के प्रति दृष्टिकोण में समानता दिखाई देती है। ऐसे परिवार में आंतरिक भेद बहुत कम पाया जाता है। भगीरथ फुकन अपने परिवार के संबंध में कहता है कि - "परिवार बड़ा होने पर भी, सब लोग एकसाथ मिलजुलकर रहते थे। यदि किसी को किसीसे शिकायत भी होती थी, तो बाहर के लोगों को इसका पता नहीं चलता था।"[15]

इसी प्रकार भगीरथ फुकन के माध्यम से लेखक ने खारघोरिया फुकन के वशंज एवं परिवार का वर्णन करते हुए कहा है कि आज भी इस परिवार के लोग संयुक्त रूप से मिलजुल कर रहते हैं। एक दुसरे की भावनाओं का आदर करते हैं और घर के बड़े-बुजुर्गों की अनुमति लिए बिना कोई कार्य नहीं करते। बहुएँ भी सांस-ससुर के प्रति श्रद्धा का भाव रखती है। उस संबंध में भगीरथ फुकन कहता

है कि - "भरापूरा परिवार। बहुत से लोग है। जवान-बुढ़ा, बेटी-बहु, लड़का-लड़की सब मिलकर कुल चालीस लोग होंगे। एक ही चूल्हें में खाना खाते हैं। बहुएँ बारी-बारी से अपने हिस्सें का काम करती है, बेटे अपने-अपने हिस्से का। सास-ससुर की अनुमति के बिना घर में कोई कार्य नहीं होता। यदि बहुओं को मायके भी जाना होता है तो, वे अपनी सांस के जरिए ससुर से आज्ञा लेती है।"[16]

परिवार की भूमिका विवाह, उत्सवों के अवसरों पर अधिक बढ़ जाती है। परिवार के सभी सदस्य एकजुट होकर उनमें सम्मिलित होते हैं। विवाह आदि के निमत्रंण भी परम्परागत रूप से व्यक्तियों को न दिए जाकर परिवारों को दिए जाते है। भगीरथ फुकन भी अपने बेटे सोन की शादी के सुअवसर पर अपने समस्त परिवार को आमंत्रित करता है। इस संबंध में भगीरथ फुकन कहता है कि - "सगे संबंधी रिशतेदार किस किसको आमंत्रित करना है, माँ ने इसका लेखा-जोखा दिया। फूफ़ा-मौसी, मामा-भांजा, दीदी-ज़ीजा, बहन-बहनोई, दादा-दादी, नाना-नानी, जेठ-जेठानी, वशं के अन्य सदस्यों, दोस्तों, तथा, जितनें भी लोग थे सबको निमत्रंण देने हेतु हम लोगों ने आगे और पीछे से कटे हुए तामोल पान को कोऊ पत्ते में लपेटा और इधर-उधर जाने लगे।"[17]

धीरे-धीरे आधुनिक परिवर्तित समाज में, पारिवारिक संबंधों में अलगाव बढ़ता ही जा रहा हैं। आधुनिक समाज में व्यक्तिवाद का अधिक महत्व है। सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के आते ही संयुक्त परिवार का विघटन भी शुरू हुआ। 'नोई बोई जाए' में यह वर्णित है कि भगीरथ फुकन और उसके परिवार के बीच का संबंध नवीन सामाजिक परिवेश में कुछ ढीला हो गया है। भगीरथ फुकन का इस संबंध में कहना है कि - "बहुत दिनों तक एक दुसरे से अलग-थलग रहने के पश्चात् पोता-पोती, नाती-नातिन आदि के बीच संबंधों में दूरियाँ पैदा हो गयी हैं। चाचा-भतीजे में भी पहचान नहीं।"[18]

'कईनार मुल्य' में परिवार के बीच आपसी प्रेम, सोहार्द्र और सुदृढ़ संबंधों का उल्लेख मिलता है। आदि समाज में लड़कियों का मूल्य ग्रहण करने की प्रथा है। औरतें जहाँ एक ओर घर-गृहस्थी का सारा कार्य करती है, वहीं दूसरी ओर अपने पूरे परिवार की देखभाल भी करती है। इसी कारण समाज में औरतों का मूल्य अधिक नापा जाता है। अतः लड़के के माता-पिता विवाह के अवसर पर लड़कीवालों को रूपए-मेथोन गाय आदि देते हैं। कारगुम को भी जब अपनी बेटी के मुल्य के रूप में रूपए, मेथोन, कास्य के बर्तन आदि मिलते हैं तो वह उनका बँटवारा अपने भाईयों, वंश के अन्य सदस्यों के बीच करता

है, जिससे परिवार के सदस्यों के बीच आपसी संबंधों की पुष्टि होती है। - "गुमबा के दाम के बदले में, कारगुम को पांच मेथोन, सात गाय, ग्यारह थाली और कास्य के छह कटोरी मिली। साथ में, नकद तीन हज़ार रूपए। उसी में से डेढ़ हज़ार रूपए उसने अपने भाई-बड़े भाई और वंश के विभिन्न सदस्यों के मध्य बाँट दिया।"[19]

ग्रामीण परिवारों में घर के मुखिया का अन्य सदस्यों के प्रति उत्तरदायित्व सबसे अधिक होता है। वह उचित-अनुचित के प्रति सदैव सचेत रहता है। उसकी आज्ञा के बिना कोई कार्य सम्पन्न नहीं होता। 'मिरि जियरी' में जब जंकी अपने प्रेम और शादी का प्रस्ताव पानेई के समक्ष रखता है तो वह कहती है कि, यदि उसके माता-पिता इस बात के लिए अपनी अनुमति देगें, तभी वह उसका प्रेम-प्रस्ताव स्वीकार करेंगी। वह कहती है - "यदि माता-पिता चाहेंगे तभी तेरे साथ विवाह करूँगी।"[20] ग्रामीण परिवारों में एक-दुसरे की भावनाओं, सुख-दुख का पूरा ख्याल रखा जाता है। परिवार के मुखिया की अनुमति के बिना कोई कार्य उचित नहीं माना जाता।

ग्रामीण समाज में परिवार के सभी सदस्य एक दुसरे के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भली भांति पहचानते हैं, वे जब भी सोचते है अपने पूरे परिवार के हित के बारे में सोचते हैं। अतः कोई अच्छा कार्य करने से पूरे परिवार की प्रतिष्ठा बढ़ती हैं और बुरा कार्य करने पर परिवार को कलंक लगता है। 'रंगमिलीर हाँही' में सारइक तेरांग, गांव का मुखिया होने के साथ ही घर का भी मुखिया है। परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे के प्रति आदर का भाव रखते हैं। घर में होने वाले क्रिया-कलापों में परिवार के सभी सदस्य समान रूप से हिस्सा लेते है, चाहे कोई पर्व या उत्सव हो या फिर घर-गृहस्थी के सामान्य कार्य जैसे लड़की चुनना, पशुओं की देखभाल करना इत्यादि। घर का वरिष्ठ सदस्य होने के नाते सारइक तेरांग अपने परिवार को लेकर सदैव चिंतित रहता है। वह अपने बेटे हेमाय की पढ़ाई लिखाई को लेकर, चिंता प्रकट करता हुआ कहता है कि - "हाँ भई हेमाय को लेकर मुझे बहुत चिंता होती है।"[21] इसी तरह सारइक तेरांग अपनी बेटी अम्फू के विवाह को लेकर चिर्तित स्वर में कहता है कि - "हाँ भई मेरी लड़की बुढ़ी होती जा रही है। ऐसी स्थिति में दुल्हा कहाँ से मिलेगा?"[22] इस तरह, यह स्पष्ट है कि परिवार सदैव एक-दूसरे के प्रति अपने उत्तरदायित्व को पहचानते हैं और मिलजुलकर रहते हैं।

इन प्रमुख उपन्यासों के अतिरिक्त, मामोणी रयसम गोस्वामी कृत 'दँताल हाटीर ऊइये खुआ

'हाउदा', होमेन बरगोहाई के 'हालधीया चराइ बाऊ धान खाय', शीलभद्र के 'मधुपूर', लक्ष्मीनंदन बोरा के 'गंगा शिलनीर पाँखी' आदि में परिवार की भूमिका स्पष्ट रूप से परिलक्षित है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में पारिवारिक जीवन सुदृढ़ एवं रसीला है। 'अलग-अलग वैतरणी' में जैपालसिहं घर के मुखिया होने के नात सदैव अपने घर-परिवार की एकता और अखण्डता बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं। कारण, वे इस बात से भली-भांति परिचित है कि समाज निरंतर परिवर्तित हो रहा है जिसमें परिवार की भूमिका घटती जा रही है। इसी प्रकार 'सागर, लहरें और मनुष्य', 'आधा गाँव' उपन्यासों में तीज-त्योहारों के समय परिवार के बीच पारस्परिक सहयोग एवं प्यार-विश्वास का वर्णन मिलता है। परिवार एक मूलभूत संगठन है जो आंतरिक मानवीय भावनाओं से सदस्यों को बाँधकर रखता है। जीवन में सुख-समृद्धि एवं ऐश्वर्य के लिए पारस्परिक सहयोग अनिवार्य है जो इन उपन्यासों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इसी प्रकार 'नोई बोई जाए', 'कईनार मूल्य', 'रंगमिलीर हाँही' में भी परिवार के बीच प्रेम, सोहार्द्र की भावना दिखाई देती है। परिवार द्वारा ही मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने का कार्य सम्पन्न होता है।

लेकिन इन सबके विपरीत इन उपन्यासों में इस बात के भी संकेत मिलते है कि धीरे-धीरे भौतिक आकर्षण ने पारिवारिक संबंधों को शिथिल बना दिया है। परिवार में भी पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पुत्र आदि के बीच संबंधों में दरार पड़ती जा रही है। उदाहरण के लिए 'अलग-अलग वैतरणी' में देवनाथ और उसके पिता के बीच विचारों में मतभेद पाया जाता है। इसी प्रकार नोई बोई जाए में भी भगीरथ फुकन और उसके परिवार की बीच अलगावों की पुष्टि बार-बार होती है। अब वह समय नहीं रहा जब घर के बड़े बुजुर्गों के नेतृत्व और नियंत्रण में पूरे परिवार के लोग एक साथ कमाते और जीवन-यापन करते थे।

शिक्षा

शिक्षा मानव जीवन के विकास की कसौटी है। शिक्षा मनुष्य के भीतर उचित-अनुचित के प्रति नवीन दृष्टिकोण जाग्रत करती है। अतः शिक्षा को प्रत्येक श्रेणी के लोगों के लिए अनिवार्य माना गया है। एक शिक्षित समाज ही देश की उन्नति में सहायक बनता है, परंतु हमारे देश की विडम्बना यह है कि, आज भी ग्रामीण जनों में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं है, यदि कहीं पर है भी तो शिक्षण क्षेत्र में अनेकानेक बाधाएँ उत्पन्न हो जाती है। स्वतंत्रता से पहले गांवों में शिक्षा की सुविधाएँ नहीं के बराबर थीं। सरकार तथा अनेक निजी संस्थाओं एवं व्यक्तियों ने शहर तथा नगरों में शिक्षा केन्द्र खोले हैं। लेकिन

स्वतंत्रता के बाद सुविधा एवं आबादी वाले गांवों में भी नई-नई संस्थाएँ खोली जाने लगी है। ये सब होने पर भी गांव के अधिकाशं बच्चे पढ़ने नहीं जाते। आर्थिक संकट तथा शिक्षा के महत्व की अज्ञता आदि इसके प्रमुख कारण है। पढ़ी-लिखी नई पीढ़ी की नई मानसिकता ग्राम-समाज में उन्नति लाने के लिए पर्याप्त सहायक रही है।

'मैला आंचल' उपन्यास में मेरीगंज गाँव में शिक्षा की दुखद स्थिति का वर्णन करने हुए स्वयं रेणु लिखते है- "सारे मेरीगंज में दस आदमी पढ़े लिखे हैं-पढ़े-लिखे का मतलब हुआ अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई। नए पढ़नेवालों की संख्या है पंद्रह।"[23] मेरीगंज जैसे विशाल गाँव में केवल दस लोगों का शिक्षित होना इस बात का सूचक है कि ग्रामीण जनों में शिक्षा के प्रति कोई उत्साह नहीं है, साथ ही इस बात के संकेत भी मिलते है कि गाँव में शिक्षा के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है।गाँव के संदर्भ में, शिक्षा की समस्या को बड़ी ही गंभीरता के साथ शिवप्रसादसिहं ने 'अलग-अलग वैतरणी' में प्रस्तुत किया है। शिक्षा के नाम पर होनेवाले छिछलेपन को लेखक ने मौलिकता और प्रामाणिकता के साथ चित्रित किया है। डॉ० विवेकी राय का इस संबंध में कहना है कि - "इस क्षेत्र की नग्न वास्तविकता को उपन्यासकार ने इस कोण से उठाया है कि समूचा क्षयग्रस्त आयाम उजागर हो जाता है। लगता है अँग्रेजी राज तक में शिक्षा का जो सांस्कृतिक रुप सुरक्षित था, स्वराजोपरांत ध्वस्त हो गया। शिक्षा-विस्तार नीति के दीपक तले शोचनीय छिछलेपन का अंधकार अवस्थित है।"[24]

करैता गाँव के स्कूल में पढ़ाई के नाम पर हेडमास्टर जवाहिरलाल की आवभगत होती है। स्कूल के लड़के पढ़ाई लिखाई छोड़कर उनके घर के कार्य-कलापों में व्यस्त रहते हैं। इस अंधकारमय परिवेश में उत्साही अध्यापक शशिकांत उजाले की एक किरण बनकर आता है तथा शिक्षण प्रक्रिया में सुधार हेतु अनेकानेक प्रयत्न करता है। वह लड़कों में पढ़ाई के साथ-साथ खेलकूद की व्यवस्था भी करता है और उज़ड़ी हुई बागवानी के पुनरूद्धार के लिए अथक प्रयत्न करता है। लेकिन हेडमास्टर उसके इन कार्यों में हतक्षेप करने लगता है - "आप क्या पूजा पाठ करते हैं जो फूल के लिए व्याकुल है।"[25] हेडमास्टर स्वंय गाँव की पार्टीबंदी में फसंकर शशिकांत को भी फँसाना चाहता है। शशिकांत जो गाँव में शिक्षा को प्रतिफलित करने आया था, किसी की हाथ की कठपुतली बनने को तैयार न था। अतः उसे सबका विरोध सेहते हुए, हताश परिस्थितियों में अपने सपनों, योजनाओं को त्यागकर करैता छोड़कर भागना पड़ता है।[26]

ग्रामीण परिवेश में नारी शिक्षा अभी पूरी तरह रस-बस नहीं पाई है। आज भी लोग नारी शिक्षा के प्रति स्वस्थ्य भाव नहीं रखते। 'आधा गाँव' में सईदा का पढ़ना-लिखना उसके परिवार के कुछ सदस्यों को ही नहीं रमता। अकबीरी बो सईदा के अँग्रजी पढ़ने-लिखने से बहुत खफ़ा होकर कहती है- अच्छा रहेओ दो। सारी बिरादरी में नाक कट गयी। एके अलीगढ़ जाये से नुनहरा पारे जंगीपुर, अरजानीपुर, देवकठिया कहीं मियाँ लोगन की कोनो लड़की अँग्रजी पढ़े है कि अग्गू की लड़की पढ़िहे। बशीरो मुन्नी को अँग्रेजी पढ़ाये चाहिन .... मैं जूती लेके खड़ी हो गइउँ कि खबरदार जो तू ई सोचियो।"[27] इसी प्रकार 'सागर, लहरें और मनुष्य' में भी कोली समाज में शिक्षा की अवहेलना की जाती है। बरसोवा गाँव में रहनेवाले जितने भी मच्छीमार हैं वे न तो अधिकांश पढ़े-लिखे हैं न उनमें शिक्षा के प्रति कोई उत्साह है। हाँ इतना अवश्य है कि रत्ना को उसकी माता बहुत पढ़ाना चाहती है तथा उसी के प्रयास से वह एफ.ए. में पढ़ती है।- "रत्ना, उसी की लड़की एफ.ए. में पढ़ रही है। शायद यही बरसोवा के शिवकर कोलियों की लड़की है जो कॉलेज जाती है।"[28] इसके अलावा रत्ना का पूर्व प्रेमी यशंवत, शिक्षा के महत्व को समझते हुए, उसे बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्राइमरी स्कूल को दोबारा खुलवाना चाहता है। वैसे एक स्कूल पहले से था, पर लड़के जाते ही नहीं थे। अतः वह घर-घर जाकर बच्चों के अभिवावकों से उन्हें स्कूल भेजने के लिए प्रेरित करता है। उदयशंकर भट्ट का इस संदर्भ में कहना है कि - "अब वह घर-घर घूमकर बच्चों के माँ-बाप से उन्हें स्कूल भेजने का अनुरोध करता। उन्हें पढ़ने-लिखने के साथ अपने न पढ़ने की बुराई बताता। यशंवत ने प्रयत्न करके जो स्कूल खुलवाया उसमें समय मिलने पर वह खुद भी पढ़ने और सिखने जाता।"[29]

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि वर्तमान समय में राष्ट्रीय उत्थान का एकमात्र आधार शिक्षा ही है। पढ़ी-लिखी नई पीढ़ी शिक्षा की उपयोगिता को समझती हैं। वह जानती है कि पिछड़े अंचलों में अज्ञानता एवं अंधकारमय जीवन व्यतीत करने वाले लोगों की स्थिति को सुधारने का एकमात्र साधन शिक्षा का प्रचार-प्रसार है। वस्तुतः उचित शिक्षा के माध्यमों व साधनों का विकास दूरवर्ती अंचलों में हो रहा है।

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अलावा नागार्जुन कृत 'बाबा बटेसरनाथ', 'रतिनाथ की चाची', रेणु कृत 'परती परिकथा', रामदरश मिश्र के 'जल टूटता' हुआ आदि उपन्यासों में भी शिक्षा के प्रति आकर्षण देखा जा सकता है। पढ़ाई-लिखाई के प्रति लोगों में उत्साह दिखाई देता है।

'नोई बोई जाए' उपन्यास में लेखक ने इस बात के स्पष्ट संकेत दिए है कि ग्रामीण परिवेश में जीवन यापन करने वाला भगीरथ फुकन, शिक्षा की उपयोगिता एवं महत्त्व को भली-भांति समझता है। अतः वह अपने सभी बच्चों को शिक्षित बनाने का अथक प्रयास करता है। उसका मानना है कि पढ़ा-लिखा व्यक्ति ही सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है - "पिताजी का कहना है कि हमारे साथ जो हुआ सो हुआ। पढ़े-लिखे लोग ही सुखमय जीवन का आनंद ले सकते हैं।"[30]

भगीरथ फुकन स्वयं तो अधिक शिक्षा प्राप्त न कर सका, परतुं अपने दोस्त गोविन्द की आर्थिक उन्नति से वह प्रभावित होता है और शिक्षा के लाभकारी पक्ष से अवगत होता है। वह समझ जाता है कि शिक्षा मनुष्य की उन्नति का मार्ग खोल देती है। इस संदर्भ में वह कहता है कि - "मेरे साथी मित्र गोविन्द ने थोड़ी बहुत अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की और चाय बागान में मुंशी की नौकरी करने लगा। देखा जाए तो ये गुलामी है। लेकिन वह तो धन-धान्य के साथ सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा है।"[31] भगीरथ इस तथ्य को समझ चुका है कि केवल खेती-बाड़ी से वह सुख नहीं मिलेगा, जो नौकरी करने से प्राप्त होगी। शिक्षा से ही जीवन अधिक व्यवस्थित बनेगा तथा आर्थिक आधार सुदृढ़ होगा। अतः वह अपने बेटे सोन को पढ़ाने के लिए शहर भेजता है- "सोन को पढ़ा - लिखाकर अच्छा आदमी बनाना पड़ेगा।"[32]

'कईनार मूल्य' में इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते है कि आदि समाज में शिक्षा और शिक्षित युवतियों के प्रति लोगों के मन में स्वस्थ्य भाव नहीं है। ग्रामीण जनों का मानना है कि शिक्षित जन,पुराने सामाजिक नियमों में अविश्वास दिखाते हैं तथा उसे बदलने का प्रयत्न करते है। उनका कहना है कि - "एकदिन भी स्कूल जाने वाले लोगों को समाज के नीति नियम क्यों नहीं भाते ? क्या नीति-नियमों को त्यागने की बात स्कूल में पढ़ाई जाती है ?"[33]

कारगुम शिक्षा को अनावश्यक मानता है और चाहता है कि बेटी गुमबा पढ़ाई छोड़कर, अपने पति ढाकत के पास चली जाए। उसका मानना है कि पढ़-लिखकर कोई बड़ा आदमी नहीं बन सकता है। अतः वह गुमबा से कहता है कि - "इस्कूल-तिस्कूल छोड़ दें। पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बनने के लिए तो स्कूल नहीं जाते।"[34]साथ ही उसकी धारणा है कि लड़कियों का काम घर गृहस्थी की देखभाल करना है तथा स्कूल भेजने के कारण ही गुमबा की बुद्धि भ्रष्ट हो गई और वह समाज के परपरांगत नियमों को चुनौती देने लगी है। कारगुम कहता है कि - "इसलिए तो कहता हूँ कि एकदिन भी स्कूल जाने से सब कुछ नष्ट हो जाता है ? मैंने गलती कि जो अपनी बेटी को स्कूल भेजा। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए

था। दूसरे लोगों को अपने लड़के-लड़कियों को स्कुल भेजते देखकर मैंने भी अपनी बेटी को स्कूल भेजा।"[35]

'कपिली परिया साधु' में रूपाइ शिक्षा के महत्व को समझता है। अतः ग्रामीण जनों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने हेतु गांव की पुरानी पाठशाला की मरम्मत करने के लिए जंगल से बांस के वृक्ष लाता है। इस काम में भाँगुरी भकत उसकी सहायता करता है। लेखक ने गांव की पाठशाला का विवरण देते हुए कहा है कि - "असमिया गांव के नियमानुसार, गांव की सबसे जर्जरहीन अवस्था में दिखाई देने वाला घर ही बच्चों की पाठशाला थी। बहुत दिनों से प्रयोग में न आने के कारण घर की हालत बिल्कुल ही नाजुक थीं उसकी परतें उखड़ती जा रही थी। ऐसे में वह (रूपाइ) स्वंय जंगल से सोनारू के खंभे लाता है और बाड़ी में से बांस काटकर घर बनाने का कार्य अकेले ही शुरू करता है।"[36]

'रंगमिलीर हाँही' में लेखक ने स्पष्ट किया है कि कारबी समाज में शिक्षा के प्रति उदासीनता पाई जाती है। ग्रामीण जन शिक्षा की अवहेलना करते हुए यह तर्क देते है कि उनका समाज बिना पढ़े-लिखे ही अपना जीवन-यापन कर रहा है। गांव का एक प्रमुख व्यक्ति हाबेसिक स्कूल खोलने का सख्त विरोध करते हुए कहता है कि - "मैं हाबेसिक जब तक रहूँगा, तब तक गाँव में स्कूल खोलने नहीं दूगां।[37] उसका तर्क है कि क्या कारबी लोग पढ़-लिखकर ही पले-बड़े है वह कहता है कि - "क्या हम क,ख पढ़कर ही बड़े हुए है ? .... मेरे गाँव में इस्कूल-तिस्कूल बनने नहीं दूगाँ।"[38]

इसके विपरीत गांव के मुखिया सारइक तेरांग शिक्षा के महत्त्व को समझते है। यही कारण है कि वे अपने बेटे हेमाय को खूब पढ़ाना-लिखाना चाहता है। उनका कहना है कि - " बहुत सारे बच्चे स्कूल में पढ़ते है। हेमाय को भी पढ़ाना पड़ेगा। उसको कामपुर में रहनेवाले धनेश्वर मास्टर के घर पर छोड़ कर आने की बात सोच रहा हूँ। वह वहीं रहकर पढ़ेगा।"[39] इसके अलावा वह अपने गांव में भी स्कूल खुलवाने का प्रयत्न करता है परंतु वह लोगों को इस बात के लिए सहमत नहीं कर पाता और आलोचना का पात्र बन जाता है। इस संबंध में कथावाचक का कहना है कि - " बईठालांगसर के आस-पास के गांवों के लोगों को समझा-बुझाकर भी स्कूल न खोल पाने के असफल प्रयास से सारइक हताश हो गया। वह समस्त अंचल की आलोचना का पात्र बन गया।"[40] इस तरह कारबी समाज में शिक्षा के प्रति मिली-जुली प्रतिक्रिया देखने मिलती हैं।

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त, मामोणी रयचम गौस्वामी के 'दँताल हाटीर ऊइये खुआ हाऊदा' होमेन बरगोहाई के 'हालधिया चराए बाऊ धान खाय,' लम्मेर दाई के 'पृथ्वीर हाँही' आदि में भी शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में शिक्षा के प्रति मिली-जुली प्रक्रिया देखने मिलती है। गांव के बुजुर्ग लोग शिक्षा को अपनी परम्परा के खिलाफ़ मानते हैं। शिक्षा उनके रीति-रिवाजों में बाधा पहुँचाएगी, यही ग्राम समाज का विश्वास है। हिन्दी आंचलिक उपन्यासों जैसे 'आधा गाँव', 'मैला आंचल', 'सागर लहरें और मनुष्य' में स्त्री शिक्षा के प्रति उदासीनता पाई जाती है। अज्ञानवश लोग नारी-शिक्षा को बुरा समझते है। 'आधा गांव' में सकीना की पंढ़ाई-लिखाई करना गांव के लोगों को खलता है। यही नहीं उसे तरह-तरह के ताने तक सुनने पड़ते है। इसी प्रकार 'कईनार मूल्य' की गुमबा मानती है कि नारी स्थिति में सुधार् केवल अनुकूल शिक्षा के प्रसार से ही संभव है। गुमबा तमाम शारीरिक, मानसिक अत्याचारों को सहने के पश्चात् भी नारी-शिक्षा की हिमायती है। वह जानती है कि नारी-शिक्षा, नारी जगत के मानसिक विकास का आवश्यक अंग है।

ग्रामीण अंचलों में शिक्षा की सुविधाएँ भी बहुत कम है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों जैसे 'अलग-अलग वैतरणी' में शंशिकांत, 'सागर, लहरें और मनुष्य' में यशवंत तथा असमिया आंचलिक उपन्यासों जैसे, 'कपिली परिया साधु' में रूपाय रंगमिलीर हाँही में सारइक तेरांग और 'नोई बोई जाए' का सोन ऐसे ग्रामीण हैं जो शिक्षा की उपयोगिता से भली-भांति परिचित है और यह मानते हैं कि पढ़े-लिखे लोग ग्राम-सुधार के लिए महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। साथ ही, गांव के प्राथमिक शिक्षा केन्द्र की हालत में सुधार करने का प्रयत्न करते हैं जिसके फलस्वरूप गांव के अधिकांश बच्चे पढ़ सके।

जातिगत स्वरूप

ग्रामीण परिवेश में जात-पात का स्वरूप बड़ा ही कठोर है। जाति बहुत बड़ी चीज़ मानी जाती है। जाति के आधार पर ही समाज में किसी व्यक्ति की स्थिति का अंकन किया जाता है। उसका मान-सम्मान, रहन-सहन, आचार-विचार सभी पर इसका प्रभाव पड़ता है। ग्रामीणों के विकास के लिए प्रस्तावित सरकारी योजनाएँ और प्रयास भी जातिवाद के चलते खटाई में पड़ जाते है। जातिवाद एक ऐसा अजगर है जो सम्पूर्ण समाज को निगलता जा रहा है और मानवीय जीवन को खोखला बनाता जा रहा है, परंतु इसकी पकड़ आज भी ढीली नहीं हो पाई है। जातिगत प्रथा के चलते एक मनुष्य द्वारा,

दुसरे मनुष्य के साथ पशुता सा व्यवहार किया जाता है। ग्रामीण समाज में आज भी जातिगत बँधन अपनी पकड़ मज़बूत बनाए हुए है। हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में जातिगत प्रथा और उसके कुप्रभावों का वर्णन मिलता है। जातिप्रथा के कारण सामाजिक मूल्यों का विघटन होता जा रहा है, इस पर लेखकों ने प्रकाश डाला है।

'मैला आंचल' उपन्यास में जातिप्रथा का विस्तृत विवरण मिलता है। मेरीगंज में तीन जातियाँ निवास करती है - कायस्थ, राजपूत और यादव। ब्राह्ममणों की संख्या कम है, इसलिए वे हमेंशा तीसरी शक्ति का कार्य करते हैं - "अब गाँव में तीन प्रमुख दल हैं, कायस्थ, राजपूत और यादव। ब्राह्मण लोग अभी भी तृतीय शक्ति है। गाँव के अन्य जाति के लोग भी सुविधानुसार इन्हीं तीनों दलों में बँटे हुए हैं।"[41] प्रत्येक जाति का अपना मुहल्ला है, जिसे टोली कहा जाता है। मेरीगंज गाँव में विभिन्न टोलियाँ है - पोलिया टोली, तंत्रिमा-छत्री टोली, यदुवंशी छत्रीटोली, गहलोत छत्रीटोली, कुर्म छत्रीटोली, अमात्य ब्राह्मणटोली, धनुकधारी छत्रीटोली, कुशवाहा छत्रीटोली और रैदासटोली।[42] प्रत्येक जाति के लोग अपने आप को दूसरी जाति से श्रेष्ठ समझते है। इन जातियों में अहंकार, द्वेष-ईर्ष्या, वैमनस्य तथा एक दुसरे को नीचा दिखाने की मनोवृत्ति निरंतर विद्यमान रहती है।

जातिगत प्रथा, ग्रामीण जनों के सामाजिक जीवन को दीमक की तरह खोखला करता जा रहा है। आपसी मनमुटाव, द्वेष, अहंकार ने लोगों के बीच प्रेम और सहयोग की भावना को जैसे मिटा दिया है। यही कारण है कि भडांरा के समय सिपहैया टोली के लोग ग्वालों के साथ एक पंगत में बैठने को तैयार नहीं होते।[43] कुछ लोग मानते हैं कि यदि भंडारे का इंतजाम बालदेव करेंगा, तो वह भडांरा अशुद्ध हो जाएगा । इसी तरह बाह्मण लोग भी अपना अलग प्रबंध चाहते है। जाति-बिरादरी का दबदबा इतना अधिक है कि यदि कोई बिरादरी की बात काटे, तो उसे जाति-बहिष्कृत कर दिया जाता है। एक बार बिरंची ने राज की गवाही देने के बदले तहसीलदार द्वारा दी गयी जलेबी खा ली थी, इस बात को लेकर गाँव में अफ़वाह उड़ गयी कि बिरंची ने तहसीलदार का जूठा खाया है। बस फिर कया था उसे सज़ा सुनाई गयी और उसका हुक्का पानी तक बंद करा दिया गया तहसीलदार ने कहा - जाति-बिरादरी का मामला है इसमें वे कुछ बोल नहीं सकते।"[44] इसके अलावा विविध संस्कारों के अवसरों पर भी जाति-बिरादरी का साया मडरांता रहता है - "तहसीलदार ने अपने बाप के श्राद्ध में जाति-बिरादरी वालों को भात और गैर जाति के लोगों को दही-चूड़ा खिलाया था।"[45]

जातिगत प्रथा का सबसे ज्वलंत उदाहरण डॉ० प्रशांत है। वे जब पहली बार मेरीगंज गाँव में आते है तो गांववाले सर्वप्रथम उनकी जाति के बारे में पूछते है। लेखक के शब्दों में - "जाति बहुत बड़ी चीज़ है। जात-पात नहीं माननेवालों की भी जाति होती है। सिर्फ़ हिन्दु कहने से ही पिंड नहीं छूट सकता। बाह्मण है ? .... कौन बाह्मण। गोत्र कया है ? मूल कौन है ? .... "[46]

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास में लेखक ने जातिगत प्रथा का विस्तार से वर्णन किया है। करैता गाँव में शुद्र, चांडाल, चिड़ीमार, कसाई, ब्राह्मण. कई प्रकार की जातियाँ निवास करती है। गाँव के बीच में एक तलैया है, इसके उत्तर तरफ़ सुवर्ण और दक्षिण तरफ़ शुद्र बसे हुए हैं। यह खाईनुमा तलैया इसलिए बनाया गया है जिससे कि चमरोटी की आबादी, समतल सीमा को चीरकर किसी दिन सट न जाए और उत्तर की तरफ़ के सुवर्ण से मेल न खा जाए। इस संवंध में लेखक का कहना है कि -"इसलिए हमेंशा माटी निकाल-निकाल इस तलैया को गहरा किया जाता रहा होगा और भेदकारी पूर्वी भाटे को ऊँचा। पूर्वी भाटा ऊँचे छंतरे की तरह गाँव को चमरोटी से जोड़ता है। दोनों बस्तियों को दूर-दूर रहना जरूरी है क्योंकि व्यवस्था है। इसलिए तलैया है। कि्तुं दोनों के मिले बिना एक दूसरे का काम न चलेगा। इसलिए ऊँचा भीटा है। पोढ़ रास्ता है। यह दोनों को जोड़ता है।"[47]

जातिगत वैषम्य के कारण सदियों से नीच जात को बलि का बकरा बनना पड़ता है, जबकि उच्च वर्ग साफ़ हाथ बचाकर निकल जाता है। ठाकुर सुरजू सिंह चमार पुत्री सुगनी के साथ रंगे हाथ पकड़ लिए जाते है। चमारों में रोष की स्थिति उत्पन्न होती है और चमारों के बारहों गाँवों के चौधरियों की एक बटोर होती है। बटोर ने सर्व-सम्मति से फैसला सुनाया कि - "सुरजू सिंह कल सुबह सुगनी को अपनी पत्नी समझकर खुद आकर चमरोटी से लें जाएँ, नहीं कल शाम को चमार लोग सुगनी को ले जाकर उनके घर बैठा आयेंगे।"[48]परतुं सुरजू सिंह ऐसा करने से बचना चाहते थे,अतः वे अपने पुराने दुश्मन जैपालसिंह के बेटे बुझारथ से मदद की गुहार लगाते है। अतः जैसे ही चमारों का जुलूस सुगनी को आगे लिए सुरजू सिंह के घर की ओर बढ़ता है। गाँव के उच्च वर्ग बोखला जाते है और चमारों के विरूद्ध उच्च वर्ग का संयुक्त मोर्चा बन जाता है। अतः दोनों में संघर्ष होने लगता है। चमारों का जुलूस जब गली के मोड़ पर आया तो ठकुराने के लठैत बिना कुछ कहे सुने उन पर टूट पड़े।.......... एक तरफ़ चीख मचाती चमारिनें और उनके छोटे-छोटे लड़के-लड़कियाँ थीं, तो दूसरी ओर अपने स्वजनों की खेर-कुशल मनाती ठकुराने की माताएँ-बहिनें।"[49] जातिवर्ग संघर्ष में सरूप भगत की मृत्यु हो जाती है।

इसी प्रकार राजपूत शोभनाथ और नीच जात की सोनवाँ में अगाढ़ प्रेम था। सोनवाँ की माँ उसे कई बार समझाती हुई कहती है - "देख सोनवाँ, हम लोग नान्ह जात है। ऊ लोग बड़े है। भला हमारी उनकी क्या मेल-जोल ?"[50] दोनों का प्रेम जातिगत प्रथा की भेंट चढ़ जाता है, एक साज़िश के तहत सोनवाँ को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है।

'आधा गाँव' उपन्यास में भी जातिगत भेदभाव का वर्णन मिलता है। गंगौली में कई जातियाँ निवास करती है। गंगौली के कोनों पर सय्यद लोगों के मकान हैं जिनकी कुल संख्या दस है। दक्षिणवाले घर दक्षिणी पट्टी कहलाते है और उत्तरवाले घर उत्तरीपट्टी। बीच में जुलाहों का घर है। इसके अलावा गाँव के आस-पास के झोपड़ो में अहीर, चमार, भर तथा राक़ियों के घर भी है। परंतु इनकी संख्या कम है। इन जातियों में परस्पर मतभेद बना रहता है।

ऊँच-नीच की भावना हिन्दुओं में नहीं वरन् ग्रामीण मुसलमानों में भी विद्यमान है। अब्बास अपने से नीची जाति के फारूक़ से मिलने की सोचता है, पंरतु जात-पात प्रथा के कारण वह उसके घर जा नहीं पाता। यदि वह चला जाता तो हो सकता है, उसके अब्बा के हाथों से जूते खाने पड़ते।- "बड़े जूते पड़ते.... 'मियाँ अब्बू, तुम इतने बड़े हो गये और तुम्हें यह भी नहीं मालूम कि अशराफ़ राकियों वाकियों के दरबाजों पर नहीं जाते।"[51] यहाँ पर उल्लेखनीय बात यह है, कि यदि कोई जातिगत वैषम्य को भुलाकर आगे बढ़ना चाहता है, तो समाज इसकी अनुमति नहीं देता। परिणामस्वरुप जाति प्रथा अंत होने की बज़ाय बढ़ती ही जाती है।

शीआ-सुन्नियों में भी परस्पर मतभेद है। शीआ अपनी रक्त-शुद्दता पर गर्व करते है तथा अपने आप को इमाम हुसैन का वशंज मानते है। सुन्नियों को वे हेय दृष्टि से देखते हैं। शीआ लोग पहले तीन खलीफ़ाओं को नहीं मानते और मोहर्रम के समय अन्य तीन खलीफ़ाओं पर अपमानजनक कविताएँ गाते है जिसे 'तबर्रा' कहा जाता है, जो अकसर शीआ और सुन्नी के झगड़े का कारण बनता है।[52] शीआ, सुन्नी लड़कियों से विवाह नहीं करते क्योंकि सुन्नी बहुएँ मोहर्रम के शोक की अवधि में भी चूड़ियाँ खनखनाती फिरेंगी - "अब्बास ने एक सुन्नी लड़की से शादी की है और वह उसे इसलिए घर नहीं लाता कि वह मोहर्रम में चूड़ियाँ नहीं बढ़ा सकती।"[53] इसके साथ ही, हकीम साहब भी जाति प्रथा से पीड़ित है। उन्होंने अपने से नीची जाति के एक काफ़िर का हाथ नब्ज़ देखने के लिए छुआ था। अतः वे हौज़ के किनारे बैठकर उस हाथ को साफ़ करने लगते है।"[54] जाति प्रथा का आलम यह है कि चमार औरत को घर

में रखते है, बच्चे पैदा करते है, लेकिन उसके हाथ का बनाया भोजन ग्रहण नहीं करते। सुलेमान चा ने चमाइन झंगटिया बो को अपने घर में रख लिया, पंरतु उसके हाथ का बनाया कुछ नहीं खाते - "सुलैमान चा मज़हबी आदमी थे इसलिए वह झंगटिया बो की छुई हुई कोई गीली चीज़ इस्तेमाल नहीं कर सकते थे। इसलिए घर में एक औरत के आ जाने के बाद भी सुलैमान चा को अपना खाना खुद ही पकाना पड़ता था।"[55]

'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में लेखक ने करनटों के सामाजिक जीवन की विसंगतियों का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि इस समाज के लोग भी जात-पात की भावना रखते हैं। करनट जरायमपेशा कहे जाते हैं। करनट नटों की उपजाति है किंतु नट इन्हें अपने से नीच समझते हैं। समाज की इस तिरस्कृत और अपेक्षित जनजाति को ऊँच वर्ग के लोग नीचा समझते हैं। ठाकुर चक्खन कज़री के हाथ से रोटी खाने से मनाकर देता है - "अरे चल नटिनी। तेरे हाथ का खाऊँगा मैं ?"[56] परतुं जब कजरी उसे प्रेम प्रसंग के तहत जंगल में चलने के लिए कहती है तो वह झट से राज़ी हो जाता है, तब कजरी कहती है - "इसमें धरम नहीं जाता तेरा।"[57] जात-पात् के कारण ठाकुर का बेटा ओर सुखराम की बेटी चंदा का प्रेम संबंध समाज को ग्राहय नहीं। अतः सुखराम मानसिक उलझन में पड़ जाता है और अपनी पुत्री चंदा की हत्या करने को विवश हो जाता है। दोनों का प्रेम जातिवाद की बलि चढ़ जाता है।

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त, डॉ० विमल शंकर नागर कृत 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास-सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ पुस्तक के आधार पर भैरवप्रसाद गुप्त के 'सती मैया का चौरा', शिवशंकर शुक्ल के 'मोंगरा', फणीश्वरनाथ रेणु के 'परतीः परिकथा',सच्चिदानंद धूमकेतु के 'माटी की मँहक', रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर','जल टूटता हुआ' आदि आंचलिक उपन्यासों में जाति-व्यवस्था के समसामयिक स्वरुप का किसी न किसी रुप में चित्रण मिलता है।

जातिवाद ग्रामीण जीवन का महत्वपूर्ण अंग हैं। वर्ण-व्यवस्था से उद्‌भुत जाति-व्यवस्था ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख आधार स्तंभ माना जाता है। असमिया के आंचलिक उपन्यासों में भी जाति-व्यवस्था के समसामयिक स्वरुप का किसी न किसी रुप में चित्रण मिलता है। 'नोई बोई जाए' उपन्यास में असमिया समाज के सामाजिक जीवन का विस्तृत विवरण मिलता है। जात-पात की कट्‌टरता समाज को किस रुप से प्रताड़ित करती है, इसको दर्शाने के लिए कथावचक ने निरंजन गोस्वामी का उदाहरण

दिया है। निरंजन गोस्वामी के सेदुंरीपाम गांव में आते ही जात-पात की व्यवस्था अधिक कठोर हो गई। पहले विभिन्न जातियों के लोगों (आहोम, कछारी, चूतिया, कोच) में विवाह संबंध स्थापित होते थे, परतुं निरजंन गोस्वामी ने ऐसी समाज व्यवस्था का खण्डन करते हुए एक जाति द्वारा, दूसरी जाति के साथ विवाह संबंधों पर रोक लगा दी - "निरंजन गोस्वामी के गाँव में आने के पश्चात् ही, जात-कुल की कट्टरता बढ़ती चली गई। पहले आहोम, कछारी, चुतिया, कोच जाति के लोगों की बीच विवाह सम्पन्न किया जाता था। लेकिन गोस्वामी जी ने एक जाति द्वारा दूसरी जाति से विवाह सम्पन्न करने पर, प्रायश्चित की प्रक्रिया लागू कर दी, जिसके फलस्वरुप लोगों का मन संकीर्ण होता चला गया।"[58] इस कारण परंपरागत समाज व्यवस्था खंडित हो गयी।

निरजंन गोसांई एक कट्टर पंडित है, उसके घर के आँगन में नीची जात का कोई भी व्यक्ति प्रवेश तक नहीं कर सकता। उनके घर पर आनेवाले नीची जाति के लोग जहाँ पर बैठते है तथा जिस थाली में खाते हैं, उसे उन्हें स्वयं धोकर जाना पड़ता है।"[59]

'कपिली परिया साधु' उपन्यास में लेखक ने स्पष्ट क्रिया है कि जातिवाद ग्रामीण जीवन का अभिन्न अंग है। जात-पात की कुप्रथा किस तरह रूपाय के सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करती है इसका वर्णन उपन्यास में किया गया है। रूपाय आजीवन धीरसिंह को अपना पिता मानता रहा, परंतु उसकी मृत्युपरांत रूपाय को पिडंदान करने से वंचित कर दिया जाता है। कारण वह उसका सगा बेटा न होकर एक अनाथ था, जिसका केवल धीरसिंह ने पालन-पोषण किया था। ग्रामीण समाज इस बात की इज़ाजत नहीं देता कि एक ऐसे व्यक्ति द्वारा पिंडदान कराया जाए जिसके जात-कुल का कोई ठिकाना नहीं। इस संबंध में लेखक कहता है कि - बीड़ी पीने वाला वह काले दाँत का लड़का.... वह पिंड देगा... वह भतीजा है।..... उसे हक है। रूपाय कुछ भी नहीं।"[60]वह तो अनाथ है जो बाढ़ के पानी में बहकर आया था, जिसे धीर सिंह ने गोद लिया था। हमारे समाज के अधिकत्तर सामाजिक कार्य-कलाप जात-पात के आधार पर ही सम्पन्न किए जाते हैं।

विवाह एक सामाजिक संस्कार है, परंतु इसमें भी जात-कुल को अधिक प्रमुखता दी जाती है। रूपाय को उसकी माँ विवाह करने को कहती है तो वह सोच में पड़ जाता है। उसकी धारणा है कि क्या जाति, कुल,वंश आदि की जानकारी के बिना कोई मुझसे विवाह सम्पन्न करेगा। इस संबंध में वह कहता है कि - "जिस व्यक्ति के जात-कुल का को ठिकाना नहीं है, ऐसे आदमी को कौन भला अपनी बेटी देगा मां।"[61]

इतना ही नहीं जब भी गांव में कालिय-दमन का नाटक होता है, तो कृष्ण की भूमिका निभाने का सौभाग्य केवल बाह्मण पुत्र को ही मिलता है, दूसरी जात का अन्य व्यक्ति ऐसा कदापि नहीं कर सकता।"[62] अतः स्पष्ट है कि ग्रामीण जन जातिगत भेदभाव के कार निरंतर शोषित एवं प्रताड़ित होते रहते हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में जातिगत प्रथा ग्रामीण समाज का अभिन्न अंग है। इस प्रथा ने ही गांवों में शोषण एवं अनाचार की परम्परा को फैलाया। अशिक्षा, नियति में विश्वास आदि इसके आधारभूत कारण है। 'मैला आंचल' में डॉ० प्रशांत को गांव पहुँचते ही जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ता है। 'आधा गाँव' में भी शीआ-सुन्नियों के बीच रक्त शुद्धता को लेकर मतभेद बना रहता है। 'अलग-अलग वैतरणी' में दलित और राजपूत के प्रेम का दुखद अंत जाति-प्रथा की कठोरता का स्पष्ट प्रमाण है। कब तक पुकारूँ में भी करनटों की सामाजिक स्थिति हीन है। इसके विपरीत असमिया आंचलिक उपन्यासों जैसे 'नोई बोई जाए' में जाति प्रथा से संबंधित चुट-पुट घटनाएँ ही मिलती है। 'रंगमिलीर हाँही', 'कईनार मूल्य', 'मिरि जियरी' में जात-पात का उल्लेख तक नहीं मिलता। अतः यह कहा जा सकता है कि जातिगत वैषम्य की भावना और कठोरता हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में, असमिया आंचलिक उपन्यासों की तुलना में अधिक है।

बाल विवाह

बाल विवाह एक सामाजिक अभिशाप है, जो बालक-बालिकाओं के निर्मल मन पर क्रूर प्रहार करता है। बाल-विवाह कच्ची, कोमल कलियों को रोद्रने के समान है, जो बच्चों के भविष्य को अधंकार की ओर ढकल देता है। कोमल मन इन आघातों को सहन नहीं कर पाता और कालातंर में बाल-विवाह अनमेल-विवाह का रूप धारण कर लेता है जिससे आगे चलकर संबंधों में खट्टास पैदा हो जाती है। बाल विवाह-विकृति ग्राम-जीवन के सामाजिक पक्ष को खोखला करती जा रही है।

'अलग-अलग वैतरणी' में बाल-विवाह की कुप्रथा का मर्मस्पर्शी चित्रण करने के लिए कथाकार ने हरिया और कल्पू (कल्पनाथ) को चुना है। टीमल सिंह का बेटा हरिया जब सातवीं कक्षा में था, तभी उसका व्याह हो गया। पढ़ाई में होशियार होने के बावज़ूद भी, आर्थिक दबाव के कारण उसे पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी। जिस साल उसने पढ़ाई छोड़ी उसी साल उसका गवँना हो गया और छह सालों के अंदर ही वह तीन-तीन बच्चों का पिता बन गया। जल्दी व्याह होने के कारण, उसका परिवार भी जल्दी बड़ा हो गया। परिवार बड़ा था, परंतु आर्थिक स्थिति में कोई सुधार न होने के कारण हरिया और

उसकी पत्नी में परस्पर झगड़ा होता। वह कहती - "मेरा तो करम दरिद्दर से नाता जुड़ गया।" अनखा-अनखा कर बिला वजह बोलती है - "तन की यह गुदड़ी सी कर लाज शरम ढँकू कि तुम सुअरों का झगड़ा निपटाऊँ।" बीचो बीच आगँन में पसरकर नंगे पैरों को फैलाकर फटी साड़ी खींच कर सीती रहती है और मुट्ठी भर भात के लिए लड़ाई करते लड़कों को किट किटाकर गंगा के दहाने में भेजती रहती है।"[63]

कल्पू भी बाल-विवाह का दुष्परिणाम भोगने को बाध्य है। उसके पिता ने तिलक के प्रलोभन में पड़कर, कच्ची आयु में उसका विवाह रचाया जिसके फलस्वरूप वह अपनी पत्नी को शारीरिक सुख नहीं दे पाया और धीरे-धीरे उसका काम विकास एक स्तर तक अवरूद्ध हो जाता है। लेखक के शब्दों में - "शादी के बाद छः - सात साल बीत गए। कल्पू दिन पर दिन दुबला होता गया। कमर सुखकर कमानी हो गई। पिचके हुए गालों ने चेहरे पर त्रिभुज का निर्माण कर दिया।"[64] ग्रामीण जीवन में विवाह को शिक्षा से अधिक महत्व दिया जाता है, परतुं यह ध्यान नहीं दिया जाता कि विवाह कब, किससे और किस आयु में सम्पन्न हों। परिणामस्वरूप विवाह एक सुखद अनुभूति के स्थान पर जीवन भर का बोझ बनकर रह जाती है।

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त नागार्जुन के 'बलचनमा', भैरवप्रसाद गुप्त के 'गंगा मैया', उदयशंकर भट्ट के 'लोक-परलोक', फणीश्वरनाथ रेणु के 'परती परिकथा' आदि में बाल विवाह के दुष्परिणामों का चित्रण किया गया है।

'कईनार मूल्य' में बाल-विवाह की कुप्रथा का शिकार गुमबा के संघर्षो का ह्रदयस्पर्शी वर्णन मिलता है। गुमबा का विवाह तीन साल की आयु में ही दाकत नामक युवक से कर दिया गया था। आदि समाज (असमिया समाज का ही एक अंग है) में लड़कियों के क्रय-विक्रय की प्रथा है। अतः इसी सामाजिक रीति-नीति का पालन करते हुए कारगुम ने भी गुमबा का बाल-विवाह किया था। इस संदर्भ में गुमबा कहती है- "आपने मुझे इस सामाजिक प्रथा के तहत ही,छोटे में ही बेच दिया था।"[65]

बाल-विवाह की शिकार, गुमबा को उसके ससुरालवासे जब चाहे अपने घर ले जा सकते है। लेकिन गुमबा इस सामाजिक कुरीति का विरोध करती है जिसके परिणामस्वरूप उसे शारीरिक यातनाएँ दी जाती है। उसके हाथ पैर बाँधकर उसे अपने पति के साथ सहवास के लिए बाध्य किया जाता है। इस संबंध में लेखक का कहना है कि - "जवान युवकों ने उसके हाथ-पाँव बाँधे और घसीटते हुए उसे

ढाकतर के बिस्तर पर सुला दिया। उसके बाद वे सब अपने-अपने घर चले गए।"[66] असहमति प्रकट करने पर उसे जानवरों की तरह बंदीगृह में रखा गया। परंतु गुमबा इस अमानवीयता, अत्याचार का प्रतिकार करती है। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि शिक्षा के प्रकाश ने उसके अर्न्तमन में इस कुप्रथा के प्रति जागरूकता पैदा की। इस प्रकार शिक्षित गुमबा बाल-विवाह की भेंट चढ़ने के बजाय, इस सामाजिक नियम का विरोध करती है जो एक नारी के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में, बाल-विवाह एक सामाजिक कुप्रथा के रूप में अभिव्यक्त हुई है। अंचल जीवन में बाल-विवाह की प्रथा रही है। बाल-विवाह, वैवाहिक जीवन की एक प्राचीन विसंगति के रूप में सामने आती है जो कालांतर में अनमेल विवाह का रूप ले लेती है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में बाल-विवाह का उल्लेख, असमिया के आंचलिक उपन्यासों की तुलना में अधिक मिलता है। 'कईनार मूल्य' में गुमबा बाल-विवाह की प्रथा के विरूद्ध जहाँ अभियान चलाती है, वहीं 'अलग-अलग वैतरणी' में कल्पू और हरिया इस प्रथा का शिकार तो बनते है, परंतु प्रतिकार नहीं कर पाते और समझौते के बल पर अपनी गृहस्थी का बोझ ढोने को मज़बूर है।

नारी-पुरूष संबंध

ग्रामीण नारी माँ, पुत्री,बहन, पत्नी, बहू आदि अनेक उत्तरदायित्वों को एक साथ निभाने वाली है। फिर भी ग्रामीण अंचलों में स्त्री को पुरूषों के बराबर स्थान प्राप्त नहीं है। वह आज भी पुरूषों के अधीन है और सर्वत्र शोषण का शकार बनती है। आज भी वह प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओं की श्रृंखलाओं में जकड़ी हुई है। उसके स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान नहीं है। नारी को बराबरी का स्थान देने के पक्ष में, पुरूष समाज आज भी तैयार नहीं है। चाहे वह सामाजिक अधिकार हो अथवा आर्थिक या सांस्कृतिक, हर बात में पुरूष की अनुमति को अहमियत दी जाती है। नारी को जड़ वस्तु समझकर उसका क्रय-विक्रय किया जाता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ग्रामांचल में नारी जाति को प्रायः शोषण, अमानवीयता, अपमान सहना पड़ता है। उसका मानसिक और शारीरिक दोनों रूप से शोषण होता है।

'मैला आंचल' उपन्यास में स्त्री पुरूषों के संबंधों का जो चित्र रेणु ने अंकित किया है, उसे देखकर ऐसा लगता है कि गाँव में इन संबंधों को लेकर काफ़ी खुलापन है। उपन्यास में अनैतिक एवं

कुत्सिव प्रवृत्तियों का चित्र व्यापक फलक पर हुआ है। एक से अधिक के साथ अनैतिक संबंध बनाना मानों कोई साधारण सी बात हो। फुलिया की मां सिघंवा की रखैल है - " रे 'सिंघवा की रखेली। सिघंवा के बगान का बंबै आम का स्वाद भूल गई। तरबन्ना में रात-रात-भर लुकाचोरी मैं ही खेलती थी रे ?"[67] वहीं रमजुदास की स्त्री का अपने खास भतीजा के साथ संबंध था और गुअर टोली के कलरू के साथ रात-भर भैस पर रासलीला करती थी।"[68] सहदेव मिसिर का फुलिया के साथ अनैतिक संबंध था,[69] तो जोतखीजी की पत्नी अपनी नौकर से ही फँसी हुई थी।"[70]

कोठारिन लक्ष्मी को देखकर जहाँ एक ओर सेवादास लार टपकाता है और दूसरी ओर लारसिंह भी उससे दो कदम आगे ही रहना है। रामदास उसको दासी बनाकर रखना चाहता है - " कैसी गुरूमाई ? तुम मठ की दासिन हो। महंथ के मरने के बाद नए महंथ की दासी बनकर तुम्हें रहता होगा। तू मेरी दासिन है।"[71] इसी तरह नोखे की स्त्री रामलगनसिंह के बेटे से फँसी हुई है ओर उचित दास की बेटी कोयरीटोले के सरन महतो से।"[72]

रेणु ने अनैतिक संबंधों की पुष्टि करते हुए कहते है कि - "तहसीलदार हरगौरीसिहं अपनी खास मौसेरी बहन से फँसा हुआ है। बालदेव जी कोठारिन से लपपटा गए है। कालीचरन ने चरखा स्कूल की मास्टरनी जी को अपने घर में रख लिया है।"[73]

खलासी फुलिया को अपनी पत्नी बनाकर स्वयं खोक्सीबाग की एक पुतरिया से मुहब्बत करता है, वहीं दूसरी ओर फुलिया भी विवाह के पश्चात् पैटमान जी के साथ रहने लगती है।"[74] इस संबंध में डॉ० प्रेमकुमार का मत है कि - "घर के बाहर और घर के भीतर के घनिष्ठ आत्मीय संबंधों में बिगाड़ आने का एक कुफल यह हुआ कि ग्रामाचंल में अनैतिक संबंधों की बाढ़ आ गयी है। अनैतिक संबंध एक तरह की संबंधहीनता को ही व्यक्त करते हैं।"[75]

रेणु ने मिथिला अंचल की नारी की स्थिति की वास्तविकता को उद्घाटित किया है। मंगलादेवी के माध्यम से लेखक ने नारी जीवन की विडम्बना और पुरूषों की स्वार्थलोलुपता का वर्णन किया है। मंगलादेवी स्वंय अपने जीवन के कटु अनुभवों का वर्णन करते हुए कहती है - "आदमी के अंदर के पशु को उसने बहुत बार करीब से देखा है। विधवा-आश्रम, अबला-आश्रम और बड़े बाबुओं के घर आया की जिंदगी उसने बिताई है। अबला नारी हर जगह अबला ही है। रूप और जवानी ? .... नहीं यह भी गलत। औरत होना चाहिए, रूप और उम्र की कोई कैद नहीं। एक असहाय औरत देवता के संरक्षण में

भी सुख-चैन से नहीं सो सकती।"[76]

फुलिया एक ऐसी विधवा बेटी है जिसकी शरीर बेचकर आई कमाई पर उसके माता-पिता अपने घर-गृहस्थी की गाड़ी चला रहे है। खलासी उससे विवाह करना चाहता है परंतु उसके माँ-बाप इस बात को टालते जाते है। फुलिया की स्थिति को गांव के अन्य लोग भी समझते हैं और रामजूदास की पत्नी तो फुलिया के माँ-बाप को बेटी की कमाई खाने पर बुरा भला कहती है।[77]

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास में भी नारी-पुरूष के बीच अनैतिक संबंधों का वर्णन मिलता है। करैता गाँव में अनैतिक संबंधों का ताँता लगा है। जैपालसिंह के बड़े बेटे बुझारथ का डोमन चमार की बेटी सगुनी के साथ अनैतिक संबंध है।[78] इसके साथ ही, वह भोली-भाली पुष्पा को भी सीपिया नाले में फाँसने की कोशिश करता है।[79] दूसरी ओर गाँव का एक अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति सुरजू सिंह भी सुगनी के साथ सरेआम पकड़ा जाता है - "सुना डोमन की छोरी कवनो रजपूत को कोठरी में घुसाये है।"[80] जिसके फलस्वरूप उसे चमारों का घोर विरोध सहना पड़ता है। धनेसरी को गाँव के उच्च वर्गों की स्त्रयों की पेट-फूली की दर्जनों कहानियाँ याद है जो अनैतिक संबंधों की पोल खोलती है - "कम से कम एक दर्जन दास्तानें तो हैं ही, ऐसी, जिन्हें सोच-सोचकर धनेसरी की आँखे भर आती है। जाने कितनी बेवक़ूफ़ होती हैं ये छोरियाँ भी। ज़रा सी किसी ने चापलूसी कर दी, दो-चार मीठी बातें सुना दीं बस पिघल गयीं ....। ऊ तो पता चलता है बाद में न।"[81]

जग्गन मिसिर और उसकी विधवा भाभी के बीच अनैतिक संबंध है - "मिसिर को यह बात बिल्कुल समझ में नहीं आती कि रहना तो मर्द औरत की तरह, और दुनिया को दिखाना यह कि विधवा का सारा नेम-धरम निभाते जा रहे हैं।"[82] गाँव में चारों तरफ़ फैले अनैतिक संबंधों के वातावरण को देखकर विपिन का कहना है कि - "समझ में नहीं आता आखिर गाँवों में इतनी गंदगी कहाँ से आ गयी ? ऐसी दमघोट वातावरण क्या पहले भी था, या अभी हो गया है। जिधर देखिए, बस अनैतिक संबंधों की ही चर्चा है। आखिर लोगों को क्या हो गया है ?"[83] इस प्रकार ग्रामीण समाज में स्त्री पुरूष के यौन-संबंधों ने वहाँ की सामाजिकता को प्रभावित किया है।

'आधा गाँव' उपन्यास में नारी-पुरूष के बीच अनैतिक संबंधों की बाढ़-सी दिखाई पड़ती है। गुज्जन मियाँ ने अपनी सुंदर, सुशील पत्नी हुस्सन को छोड़कर जमुर्रूद नामक एक वैश्या को रखा और उससे संबंध बनाए - 'रण्डी डाल लेने में कोई बुराई नहीं, लेकिन हुस्सन जैसी खूबसूरत बीबी को छोड़ना

अलबत्ता गुनाह है।'[84] लेखक ने स्पष्ट किया है कि - "दूसरा ब्याह कर लेना या किसी ऐरी - ग़ैरी औरत को घर में डाल लेना बुरा नहीं समझा जाता था, शायद ही मियाँ लोगों का कोई खानदान हो, जिसमें कलमी लड़के और लड़कियाँ न हों। जिनके घर में खाने को भी नहीं होता वे भी किसी - न - किसी तरह क़लमी आमों और क़लमी परिवार का शौक़ पूरा कर ही लेते हैं।"[85]

मौलवी बेदार अपनी से आधी उमर की बछनिया की जवानी पर निछावर हो जाते हैं तथा उससे मुता न कर निकाह का पैगाम भेजते है और वह भी मेहर के साथ।[86] लेकिन बछनिया अपने प्रेमी सफ़िरवा के साथ निकलती है क्योंकि वह उसके बच्चे की माँ बननेवाली थी।[87] मिगदाद और सैफुनिया के विवाह से पूर्व ही संबंध थे और सैफुनिया - "ठीक बारात के दिन वह गायब हो गयी। मिगदाद ने उसे पुआल की कोठरी में छुपा लिया।"[88] मेहरूनिया नाइन के भी अनेक व्यक्तियों से संबंध थे - "एक तो सुलैमान ही से था। फुस्सू भी उसके गिर्द चकरा चुके थे। अली हादी और वज़ीर भी उसे देखकर ठण्डी साँसे भरा करते थे।"[89]

गाँव के अधिकांश सम्पन्न और ऊँची जाति के पुरूषों द्वारा नीची जाति की स्त्रियों का शारीरिक शोषण करना आमबात है। " मर्द हैं तो ताक - झाँक भी करेंगे, रखनियाँ भी रक्खेंगे। आख़िर गोरे मियाँ ने याक़ूत को रक्खा और ज़हीर मियाँ ने पुखराज को। फुन्नत करामत अली की बीवी को निकाल लाये, लेकिन अब तक किसी सय्यद ने किसी रखनी की लड़की को पयाम नहीं दिया था।"[90] इन विवरणों से स्पष्ट है कि ग्रामांचल में इन संबंधो को लेकर काफ़ी स्वछंदता है।

ग्रामांचल में नारी, परिवार से लेकर समाज तक मनुष्य द्वारा उपेक्षिता अथवा निम्न स्तर का जीवन जीने को बाध्य है। आज भी वह प्राचीन रुढ़ि और परम्पराओं की श्रृंखलाओं में जकड़ी हुई है। मुसलमान समाज में विधवा नारी की स्थिति दयनीय है वह परिवार के उत्सवों, शादी - ब्याह में शामिल नहीं हो सकती। "हुसैन अली मियाँ की बहन उम्मुल हबीबा तो कोई बीस साल से सफ़ेद कपड़े पहन रही थी। शादी के तीसरे दिन वह बेवा हो गयी थी। उसकी और आसिया की शादी में तीन-दिन का हेर-फेर था। अब आसिया माशाअल्लाह से छः बच्चों की माँ भी थी। और उम्मुल हबीबा शादी - ब्याह के मौक़ों पर अछूत हो जाती थी। कँदूरी के फ़र्श पर उसकी परछाई नहीं पड़ सकती थी। दूल्हन के कपड़ों को वह छू नहीं सकती थी। यहाँ तक कि दूसरों की शादी के गीत सुनते-सुनते उसके बाल क़ब्ल-अज़-वक़्त सफ़ेद हो गये.....।"[91]

ग्रामीण समाज में लड़की का पैदा होना, किसी विपत्ति से कम नहीं है। 'आधा गाँव' में फुस्सू मियां का परिवार ऐसा ही है, जहाँ पर एक के बाद एक लड़कियाँ पैदा होती जा रही है। पुत्री के स्थान पर पुत्र की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की प्रार्थनाएँ और मन्नते माँगी जाती हैं। ये दिन फुस्सू बड़ी बेचैनी में गुज़ारते। परंतु जब फिर लड़की हो जाती और फुस्सू का मुहँ लटक जाता और रब्बन बी हाथ उठा - उठाकर सकीना को कोसने लगतीं। लड़की - ये - लड़की पैदा त किये जा रही हो -बाकी ई घर मेंरो कड़ ना धरा है।"[92] सकीना एक ऐसी नारी है जिसे क्रमशः सात लड़कियों को जन्म देते रहने के कारण अपनी सास की उपेक्षा भरी बातें सुननी पड़ती है।

'सागर, लहरें और मनुष्य' उपन्यास में बंबई शहर के एक तटीय गाँव बरसोबा में रहने वाले मछुओं के जीवन का विशद चित्रण मिलता है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि कोली समाज में नैतिक बंधन बहुत ढीले होते है। वंशी अपने पति के रहते हुए भी अपने नौकर जागला से संबंध रखती है, वह उससे कहती है - "तो हमरा पास रै। एक बिट्ठल और दूसरा तू समझा ?"[93] यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि कोलियों के शारीरिक संबंध, आर्थिक दृष्टि को केन्द्र में रखकर स्थापित किए जाते हैं। वंशी जागला के साथ इसलिए संबंध रखती है कि वह किसी अन्य स्त्री के साथ न हो ले और उसकी आर्थिक स्थिति को हानि न पहुँचे।

माणिक की पहली सास अपनी लड़की दुर्गा की तीमादारी में आने के अवसर का लाभ उठाकर माणिक से अनैतिक संबंध स्थापित करती है - "अचानक एक रात भाई के आवाज़ लगाने पर दुर्गा की जो आँखे खुली तो देखा कि बिल्कुल अँधेरा है और माँ दरवाजा खोलकर बाहर जा रही है। दुर्गा को लगा जैसे सारी छत उसके ऊपर आ गिरी है। थोड़ी देर बाद माणिक उठा। उसने दरवाज़ा बंद कर दिया और सो गया।"[94]इस समाज में अनैतिक कार्य तो आर्थिक विषमताओं से उत्पन्न परिस्थितियों के कुपरिणाम है जिसका ज्वलतं उदाहरण है - इट्ठा। इट्ठा जैसी न जाने कितनी कोली स्त्रियाँ अपना शरीर बेचकर पेट भरती है। इट्ठा केवल अपना पेट भरने के लिए पूला के पास माहीम में रहती है और उसके अत्याचार सहती है - " ओई जिसका पास इट्ठा रैता ता। ओ मारता ता, दारु पीकर। मग मारना से क्या ओताय ? बात दो देयेंगा न ? पेट दिखाकर उसने कहा, " ए तो बरेंगा न।"[95] कोली समाज में स्त्रियाँ पुरुषों के बुदूपन और शराब में दिन - रात डूबे रहने का फायदा उठाकर अन्य पुरुषों से प्रेम तथा वासनात्मक संबध स्थापित करने से परहेज़ नहीं करती।

जहाँ एक ओर इस समाज में नारी का आधिपत्य है, वहीः दुसरी ओर दुर्गा जैसी स्त्रियाँ भी हैं जो निरंतर अपने पति माणिक के अत्याचारों, यातनाओं, अमानवीयता का शिकार बनती है। माणिक शराब के नशे में धूत्त होकर, दुर्गा को गालियाँ देता, मारपीट करता। शराब के नशे में माणिक ने दुर्गा के पेट पर कसकर लात जमाई जिसके कारण दुर्गा के अजन्में बच्चे की मृत्यु हो जाती है। इतना ही नहीं, वह दुर्गा और अपने मित्र कांतिकाल के बीच संबंधों को लेकर शक करता है जिसे एक पतिव्रता नारी सहन नहीं कर पाती और वह पागल - सी हो जाती है तथा अंत में मृत्यु को गले लगाती है।[96]

नटों के जीवन के संशिष्ट यथार्थ को लेखक ने 'कब तक पुकरुँ' उपन्यास में अभिव्यक्त किया है साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि इनमें स्त्री - पुरुष संबंधों को लेकर काफ़ी स्वच्छंदता पाई जाती है। करनट समाज में यौन व्यापार खुलकर चलता है। नारी और पुरुष के संबंध सामाजिकता और नैतिक सीमा से हटकर होते हैं। प्यारी अपने पति सुखराम के होते हुए भी, रुस्तमखाँ की रखैल बनना स्वीकार करती है। सुखराम उससे कहता है - 'हरजाई ! अपने मरद के रहते दुसरे के घर पर रखैल बनकर बैठी है।"[97] परंतु इन परिस्थियों के पीछे आर्थिक विवश्ता ही अधिक् है न कि शारीरिक तृप्ति।

सुख़राम की माँ अनैतिक संबंधों की पुष्टि करती हुई कहती है - "जब दरोगा करीमखाँ ने तुझे गिरफतार क़र लिया था, तब मैंने अपने जोबन का सौदा करके तुझे छुड़ाया था। ज़ब अकाल पड़ा था, तब मेरे और तेरे बच्चे के लिए गाँव में जाकर परायों के संग रातें काटकर कमाकर लाती थी, ताकि तुझे बचा सकूँ।............ तू इसका बेटा नहीं है, तू नट है, क्योंकि मैं बता नहीं सकती कि तू किसका बेटा है, जैसे कोई नटनी नहीं बता सकती।"[98]

करनट समाज में नारी की स्थिति दयनीय है। इसके मूल में पुरुष जाति का अमानवीय व्यवहार ही है, जो औरत को केवल उपभोग की वस्तु समझता है। बाह्मण, ठाकुर, बनिया, महाजन तथा पुलिसवाले नटों की स्त्रियों के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करके अपनी वासना को तृप्त करते हैं। औरतें अपना प्यार बेचती है। शरीर का सौदा करने के बाद भी इनकी यातनाओं का अंत नहीं होता। करनट जाति के पुरुष, अपनी स्त्रियों की लाचारी और दुर्व्यवस्था देखते हुए भी चुप रहने को बाध्य होते है, क्योंकि कभी - कभी पेट की अग्नि शांत करने के लिए अन्य साधनों के अभाव में अपनी स्त्रियों को यौन व्यापार के लिए मज़बूर करते हैं।

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त, श्रीमती कलावती प्रकाश कृत 'हिन्दी के आंचलिक

उपन्यासों का लोकतात्विक अध्ययन' पुस्तक के आधार पर नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची', विवेकीराय के 'बबूल', राजेन्द्र अवस्थी के 'सूरज किरन की छाँव', हिमांशु जोशी के 'कगार की आग', देवेन्द्र सत्थार्थी के 'ब्रह्मपुत्र', फणीश्वरनाथ रेणु के 'परती - परिकथा' आदि आंचलिक उपन्यासों में नारी - पुरुष के बीच विभिन्न प्रकार के संबंधों की चर्चा मिलती है।

असमिया आंचलिक उपन्यासों में हमें नारी - पुरुष के बीच अनेक प्रकार के संबंध देखने को मिलते है, परंतु अनैतिक संबंधों की चर्चा न के बराबर है। 'नोई - बोई जाए' में नारी - पुरुष संबंधों में प्रेम और परस्पर सहयोग की झलक मिलती है। असमिया समाज मुख्यतः कृषि प्रधान है। अतः नारी को इस समाज में विशेष स्थान और सम्मान दिया जाता है। जहाँ एक तरफ़ वह परिवार की देखभाल करती है, वंश की वृद्धि करती है, वही दुसरी तरफ़ खेत खलिहानों का कार्य भी बड़ी कुशलता से करती है। यही कारण है कि प्राचीन असमिया सामाजिक व्यवस्था में दो - तीन औरतों से विवाह किया जाता था। ऐसा माना जाता था कि घर में जितनी ज़्यादा औरतें होगी, उतनी ही आर्थिक मज़बूती आएगी। इस संबंध में भगीरथ फुकन का कहना है कि - " हमारे कृषक समाज में औरतों का दर्जा बहुत ऊँचा है। औरतें बच्चों को जन्म देती है जिससे परिवार बढ़ता है। परिवार बड़ा होने से समाज में भी मान बढ़ता है। खेती - बाड़ी ज़्यादा होती है। पहले समय में, दो - तीन औरतों के साथ विवाह किया जाता था। जितनी ज़्यादा औरते होगीं, उतना ही खेती - बाड़ी के कार्यों में सुविधा होगी।"[99]

'कपिली परिया साधु' में रूपाइ और सोनपाही विवाह से पूर्व ही संबंध स्थापित कर लेते है और वह गर्भवती बन जाती है - " मैं तीन महीने गर्भ से हूँ।"[100] दोनों का प्रेम पवित्र है परंतु जातिगत बंधन के चलते विवाह संबंध नहीं बन पाता। 'रंगमिलीर हाँही' उपन्यास में कारबी समाज में नारी का विशेष स्थान है। पुरूष नारी के प्रति सम्मान का भाव रखते हैं। पुरूषों की तरह, घर के समस्त कार्य - कलाप जैसे बच्चों की देखभाल, पशुपालन, जंगल से लकड़ियाँ चुनना, पानी लाना इत्यादि के साथ खेती - बाड़ी का काम भी बड़ी कुशलता से करती है। धार्मिक अनुष्ठानों में भी सक्रिय रूप से भाग लेती है। 'सजून पूजा' का अधिकांश उत्तरदायित्व सारइक तेरांग की बेटी और पत्नी संभालती है। सजून पूजा के अवसर पर अमफू वन - साग ढूँढकर लाती है तथा सभी गांववालों को समान भाव से भोजन परोसती है।- "अमफू - कादम ने दुसरे कामों का निपटारा किया और पूरे समाज के सामने एकभाग से चावल परोसने लगीं।"[101]

इसके विपरीत लेखक ने 'कईनार मूल्य' उपन्यास में स्पष्ट किया है कि, किस प्रकार नारी

पुरूष के अमानवीय व्यवहार द्वारा प्रताड़ित होती है। आदि समाज में लड़की को बेचने तथा उसका मूल्य ग्रहण करने की प्रथा है। कारण एक नारी ही है जो घर के अलावा खेती - बाड़ी में भी पूरा सहयोग देती है। गुमबा को भी इस सामाजिक प्रथा के तहत बेचा गया था। लेकिन वह इस कुप्रथा का विरोध करती है जिसके परिणामस्वरूप उसे भेड़ - बकरियों की तरह खींचकर स्कूल से ससुराल लाया जाता है। गुमबा इस अमानवीय व्यवहार का विरोध करती है और पुरूष जाति पर आक्षेप करती हुई कहती है - " पुरूष जाति के लोग औरतों को सम्पत्ति ही समझते हैं।"[102] औरत को सम्पत्ति समझकर उसे खरीदने बेचने की प्रथा का विरोध करते हुए गुमबा कहती है - " इस तरह लड़की को खरीदना तथा बेचने की प्रथा को शीघ्र ही समाप्त कर देना चाहिए।"[103] लड़की का मूल्य ग्रहण करने की इस प्रथा के कारण ही इस समाज में बेटी पैदा होने पर खुशियाँ मनाई जाती है।

'मिरि जियरी' उपन्यास में नारी - पुरूष का जो संबंध चित्रित हुआ है, वह प्रेमी - प्रेमिका का है। जंकी और पानेई दोनों, एक दूसरे से अगाढ़ प्रेम करते है। इस प्रेम की गहराई इतनी है कि पानेई, जंकी के साथ भागकर गंधर्व विवाह कर लेती है और एक महीने तक दोनों जंगलों में ही रहते हैं। परंतु दुर्भाग्यवश पानेई के पिता तामेद उसे पकड़ कर वापस अपने साथ ले जाते हैं। तामेद चाहता है कि वह जंकी को भूलकर कुमूद को अपना लें, लेकिन पानेई नहीं मानती। अतः यह योजना बनायी जाती है कि पानेई के हाथ - पैर बांधकर, उसे विवाह के बिन ही कुमूद के घर भेज दिया जाए।"[104] इन बातों को सुनकर पानेई पुनः भाग निकलती है। तीन-दिन तक भूखी - प्यासी रहकर भी अपने प्रेमी की खोज में एक हिन्दु घर में शरण लेती है। लेकिन उस घर का युवक उस पर कुदृष्टि डालता है, परंतु उसके सतीत्व को नष्ट नहीं कर पाता।"[105] वह पुनः वहाँ से भाग निकलती है और गाछी मिरि के हाथों पकड़ी जाती है, जहाँ पर रेबांग नामक युवक उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता है। मगर पानेई वहाँ पर भी अपना सतीत्व की रक्षा करने में सफल होती है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि नारी को असहाय पाकर पुरूष वर्ग सर्वत्र ही उसे उपभोग की वस्तु के रूप में देखता है।

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त होमेन बरगोहाई के 'हालधीया चराए बाउ धान खाय', मामोनी रयसम गोस्वामी के 'दँताल हाटीर ऊइए खुआ हाऊदा', शीलभद्र के 'मधुपूर' उपन्यासों मे भी नारी - पुरूष के संबंधों की चर्चा मिलती है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों

पुरूष के अमानवीय व्यवहार द्वारा प्रताड़ित होती है। आदि समाज में लड़की को बेचने तथा उसका मूल्य ग्रहण करने की प्रथा है। कारण एक नारी ही है जो घर के अलावा खेती - बाड़ी में भी पूरा सहयोग देती है। गुमबा को भी इस सामाजिक प्रथा के तहत बेचा गया था। लेकिन वह इस कुप्रथा का विरोध करती है जिसके परिणामस्वरूप उसे भेड़ - बकरियों की तरह खींचकर स्कूल से ससुराल लाया जाता है। गुमबा इस अमानवीय व्यवहार का विरोध करती है और पुरूष जाति पर आक्षेप करती हुई कहती है - " पुरूष जाति के लोग औरतों को सम्पत्ति ही समझते हैं।"[102] औरत को सम्पत्ति समझकर उसे खरीदने बेचने की प्रथा का विरोध करते हुए गुमबा कहती है - " इस तरह लड़की को खरीदना तथा बेचने की प्रथा को शीघ्र ही समाप्त कर देना चाहिए।"[103] लड़की का मूल्य ग्रहण करने की इस प्रथा के कारण ही इस समाज में बेटी पैदा होने पर खुशियाँ मनाई जाती है।

'मिरि जियरी' उपन्यास में नारी - पुरूष का जो संबंध चित्रित हुआ है, वह प्रेमी - प्रेमिका का है। जंकी और पानेई दोनों, एक दूसरे से अगाढ़ प्रेम करते है। इस प्रेम की गहराई इतनी है कि पानेई, जंकी के साथ भागकर गंधर्व विवाह कर लेती है और एक महीने तक दोनों जंगलों में ही रहते हैं। परंतु दुर्भाग्यवश पानेई के पिता तामेद उसे पकड़ कर वापस अपने साथ ले जाते हैं। तामेद चाहता है कि वह जंकी को भूलकर कुमूद को अपना लें, लेकिन पानेई नहीं मानती। अतः यह योजना बनायी जाती है कि पानेई के हाथ - पैर बांधकर, उसे विवाह के बिन ही कुमूद के घर भेज दिया जाए।"[104] इन बातों को सुनकर पानेई पुनः भाग निकलती है। तीन-दिन तक भूखी - प्यासी रहकर भी अपने प्रेमी की खोज में एक हिन्दु घर में शरण लेती है। लेकिन उस घर का युवक उस पर कुदृष्टि डालता है, परंतु उसके सतीत्व को नष्ट नहीं कर पाता।"[105] वह पुनः वहाँ से भाग निकलती है और गाछी मिरि के हाथों पकड़ी जाती है, जहाँ पर रेबांग नामक युवक उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता है। मगर पानेई वहाँ पर भी अपना सतीत्व की रक्षा करने में सफल होती है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि नारी को असहाय पाकर पुरूष वर्ग सर्वत्र ही उसे उपभोग की वस्तु के रूप में देखता है।

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त होमेन बरगोहाई के 'हालधीया चराए बाउ धान खाय', मामोनी रयसम गोस्वामी के 'दँताल हाटीर ऊइए खुआ हाऊदा', शीलभद्र के 'मधुपूर' उपन्यासों मे भी नारी - पुरूष के संबंधों की चर्चा मिलती है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों

में अभिव्यक्त नारी - पुरूष संबंधों में पर्याप्त वैषम्य दिखाई पड़ता है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में अनैतिक संबंधों की बाढ़ - सी दिखाई पड़ती है और नारी को सर्वत्र भोग की वस्तु मान कर उसका यौन शोषण किया याता है, सामाजिक जीवन में नारी की स्थिति घर के भीतर और बाहर दयनीय एंव शोचनीय है। समाज में नारी माँ, बहन, बेटी, बहु आदि की भूमिका निभाती है। परंतु विडम्बना यह है कि वह चाहे किसी भी रूपु में हो, समाज द्वारा उसका शोषण किया जाता है। चाहे वह 'मैला आंचल' की फुलिया हो, 'अलग-अलग वैतरणी' की सुगनी, 'कब तक पुकारूँ' की प्यारी या फिर 'सागर, लहरें और मनुष्य' की रत्ना, सभी पुरूष वर्ग के अत्याचारों और शोषण से पीड़ित है। परिवार में पुत्री के जन्म से, प्रसन्नता के स्थान पर विषाद का वातावरण बन जाता है। आधा गाँव में सकीना के बार-बार लड़की पैदा किए जाने पर, उसे भला-बुरा कहा जाता है। पुत्री के जन्म पर उसके परिवार में निराशा के बादल छा जाते है और इसका दोषी सकीना को समझा जाता है। पत्नी की पारिवारिक स्थिति भी पति से निम्न समझी जाती है और उसे सदैव अपनी आकांक्षाओं, इच्छाओं का गला घोंट कर पति के अधीन ही रहना पड़ता है। फिर भी बदले में उसे अपमान, अपेक्षा, प्रताड़ना के सिवाय कुछ नहीं मिलता।

इसके विपरीत असमिया आंचलिक उपन्यासों में नारी - पुरूष संबंधों में प्रेम, मिठास, अपनापन की चर्चा अधिक मिलती है और शोषण का उल्लेख नाममात्र ही है। पारिवारिक अर्थव्यवस्था में नारी को ऊँचा दर्जा दिया जाता है। कारण, वह खेती - बाड़ी के साथ परिवार का भी पालन - पोषण करती है। पुत्री के जन्म होने पर प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है क्योंकि उसका मूल्य ग्रहण किए जाने की प्रथा है। 'कईनार मूल्य' में पुत्री का जन्म लेना किसी उत्सव से कम नहीं है। पूरे परिवार में इस बात का जश्न मनाया जाता है। नारी-पुरूष संबंधों में प्रेमी-प्रेमिका का संबंध तो है, परंतु अनैतिक संबंधों का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। 'मिरि जियरी', 'कपिली परिया साधु' में स्त्री-पुरूष का संबंध प्रेमी-प्रेमिका के रूप में वर्णित है।

नैतिक मूल्यों में ह्रास

आज का समाज निरंतर तीव्र गति से बदलता जा रहा है। उसी प्रकार गाँव का यथार्थ स्वरूप भी दिन- ब- दिन परिवर्तित होता जा रहा है। शिक्षित नई पीढ़ी भौतिक परिवर्तन के साथ- साथ पुराने रीति रिवाज़ों, धर्म- ईश्वर नैतिकता की पुरानी मान्यताओं मे भी परिवर्तन लाना चाहती हैं। इसके विपरीत पुरानी पीढ़ी के लोग अपने आचारों एवं विश्वासों से विचलित होना नहीं चाहते और अपनी नैतिक

मान्यताओं को सुरक्षित रखना चाहते हैं। परंतु आज के परिवर्तित समाज में नैतिकता में आई गिरावर देखकर वे निस्सहाय होकर आह भरने के अलावा कुछ नहीं कर सकते। आज की वर्तमान पीढ़ी अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु नैतिक मापदंडो को भुला बैठी है।

आज के मूल्य विघटन के लिए विज्ञान से अधिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था जिम्मेदार है, जिसने मानवीय मूल्यों एवं संबंधों को सिक्कों में आंकना आरंभ कर, उदात्त मानवीय मूल्यों को बहुत कुछ रिक्त कर दिया है। बकौल डॉ० बच्चनसिंह का इस संबंद मे कहना है कि - "धर्म ने अपना पुराना अधिकार खो दिया, सामाजिक नैतिकता का सिक्का खोटा सिद्ध हुआ राजनीति के चक्रव्यूह में व्यक्ति की हत्या हुई।"[106] सच तो यह है कि वर्तमान पीढ़ी एक ओर तो परंपरागत मूस्यों को वह लालसा भरी दृष्टि से देख रहा है। वास्तव में नैतिकता में आई गिरावट के पीछे ग्राम जीवन में आने वाली मानसिक बदलाव का प्रमुख हाथ रहा है।

वर्तमान समाज में समाजिक मूल्यों और मान्यताओं में उलटफेर, संबंधों और स्वार्थों की टकराहट और जीवन में बढ़ती हुई बौद्धिकता आदि के फलस्वरुप जो नग्रा परिवेश निर्मित हुआ है उसने नैतिक-अनैतिक की परिभाषा ही बदल कर रख दी। 'मैला आंचल' में इस बात के संकेत मिलते है कि अनैतिक आचरण वाला व्यक्ति यदि बड़े भोज का आयोजन करता है, उतना ही उसका नाम होता है और उस व्यक्ति के सारे अवगुणों पर पर्दा पड़ जाता है। जब पचास वर्षीय धर्मभ्रष्ट व व्यभिचारी महन्थ सेवादास ने मठ में लछमी को दासिन बना कर रखा तो लोगों की उस पर से श्रद्धा हट गई। जनमत को अपनी ओर पुनः आकर्षित करने के लिए सेवादास पूरे गाँव के लोगों को भंडारा देने के बात कहता है। फिर क्या था ढोंगी, पांखडी तथा बगुला भगत सेवादास में भी अनेक गुण दिखाई देने लगें- "पूड़ी-जिलेबी और दही-चीनी के भंडारे की घोषणा के बाद जनमत बदल रहा था .... कैसा भी हो, आखिर साधु है। किसने आज तक इतना बड़ा भोज किया है।"[107] साधु-संत जो पहले कभी श्रद्धा का पात्र हुआ करते थे वे आज अर्थ लाभ और भोग-लिप्सा को अत्यधिक महत्व देते हैं जिसके चलते अनैतिक आचरण को बढ़ावा मिलता है।

आधुनिकता की हवा निरंतर तीव्र गति से गांवों में भी वह रही है जिसके कारण ग्राम्य-परिवेश तेज़ी से परिवर्तित हो रहा है। जहाँ एक ओर अनैतिक संबंधों बढ़ावा मिल रहा है वही दूसरी ओर ग्रामीण परिवार में आपसी संबंध टूट रहे हैं। 'मैला आंचल' में जोतखी का पुत्र रामनारायण विदापत नाच में भाग

लेता है, तो वे उन्हें कुपुत्र मानने लगते हैं। पति-पत्नी के वीच भी लड़ाई होती रहती है। महत्थ रामदास और रमपियरिया के बीच आये दिन झगड़े होते रहते हैं।

'कब तक पुकारूँ' में नटों का उपेक्षित जीवन, मानव ह्रदय को झकझोर कर रख देता है। परंतु यह भी सत्य है कि नटों के जीवन में नैतिक मान्यताओं का कोई भी महत्व नहीं है। जहाँ दो रोटी खाने को मिले, जहाँ पैसा दिखे, वहाँ पर उनके लिए उचित-अनुचित का कोई भेद नहीं रह जाता। करनटों में वैवाहिक जीवन सुखी न होने पर पति-पत्नी एक दूसरे को छोड़ सकते है। करनट बिरादरी में इसको अनैतिक नहीं माना जाता बल्कि यह तो उनके लिए साधारण सी बात है। जब प्यारी सुखराम को छोड़कर रूस्तमखाँ की रखैल बन जाती है, तो करनटों के पुरोहित ने सुखराम का कजरी से इच्छानुसार विवाह करवा दिया। सूसन व कजरी में इस विषय पर चर्चा होती हैः-

तुम्हारा आदमी तुमको छोड़ सकता है कजरी ने सूचन से गम्भीरता से पूछा।

.... क्यों नहीं सरकार, चाहे तो छोड़ दें।

'और तुम ?

सरकार, मैं नटनी हूँ। छोड़ सकती हूँ।'

'तो क्या छोड़ने का सब में कायदा नहीं है ?'

'नहीं सरकार, छोटी जातों में तो औरत फिर नया मरद कर लेती है, बड़ी जातों में नहीं होता।'

'पर हमारे यहाँ तो होता है।'[108]

उपरोक्त विवेचन से इस बात की पुष्टि होती है कि नैतिक-अनैतिक जैसी कोई चीज़ भी होती है, नट जाति का कोई सदस्य नहीं जानता। वंश और जाति-परंपरा के अनुसार रोजी-रोटी के लिए चोरी करना, भीख माँगना, नटिनी द्वारा शरीर का सौदा करना अनैतिक नहीं माना जाता।

प्रतिशोध, द्वेष की भावना, समाज की नैतिक मान्यताओं को खोखला करती जा रही है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का विरोधी हो गया है और प्रतिशोध की भावना ने उसे पशु श्रेणी में परिवर्तित कर दिया है। 'कब तक पुकारूँ' का बांके इसका प्रबल उदाहरण है। वह धूपो चमारिन से अपने अपमान का बदला लेने के लिए उसके सतीत्व को भंग कर देता है और अपनी करनी पर गर्व महसूस करता है। लेखक ने उसकी इस घिनौनी मनोवृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि - " बांके की छाती फूल उठी। आज उसकी वह कठिन घड़ी पर हो गई थी। उसे पैशाचिक आनंद था। धूपो का सतीत्व खण्डित करना

आज उसकी वह कठिन घड़ी पर हो गई थी। उसे पैशाचिक आनंद था। धूपो का सतीत्व खण्डित करना उसे सबसे बड़ा काम दिखाई दे रहा था। अब क्या करेगी ससुरी। जब मिलेगी तो आँख कैसे मिलाएगी। सारे गाँव में खबर तो फैल ही जाएगी। मज़ा रहेगा। खूब चर्चा चलेगी।"[109]

'आधा गांव' में भी इस बात के संकेत मिलते है कि कभी-कभी ईष्या, प्रतिस्पर्द्धा, के कारण किस प्रकार पढ़े-लिखे लोग भी नैतिकता को ताक पर रखकर दंगा फसाद के कारण बनते है। गंगौली गांव में, मोहर्रम के अवसर पर उत्तर पट्टी और दक्षिणी पट्टी के सय्यद खानदान के लोग ताज़ियों का शानदार जुलूस निकालते थे। सबसे आगे दक्खिन पट्टी वालों का सबसे बड़ा ताजिया रहता था जिसकी शोहरत से उत्तर पट्टी वाले हकीम साहब बहुत चिन्तित और परेशान रहते थे। उनका अरमान था कि किसी तरह दक्खिन पट्टी वालों का घमंड तोड़ा जाए। अतः दस मोहर्रम वाले ताज़ियों के शानदार जुलूस को जलील करने के लिए बल्ली साईं का एक चवन्नी कागज़ी ताज़िया रास्ते में रखवाया गया जिससे कि दक्खिन पट्टी वालों का बड़ा ताज़िया उसको लाँघ कर आगे न जा सके। इसी बात को लेकर उत्तर और दक्खिन पट्टी वालों में भीषण लड़ाई छिड़ गई जिसमें - "अग्गू मियाँ यह भूल गए कि वह सय्यद अली असगर जैदी एडवोकेट हैं। अब्बू मियां यह भूल गये कि फौजदारी करना शान के खिलाफ़ है। वजीर मियाँ ने फौज़दारी के कानूनों को उठाकर ताक में रख दिया। दोनों पटिट् यों के लड़के भी ढेल- बाँस करने लगे।"[110]इसी प्रकार हम्माद मियां प्रतिशोध के कारण उचित- अनुचित को भुलाकर परसुराम के खिलाफ झूठा मुकदमा चलाकर उसे जेल भिजवाकर अपनी पुरानी ज़मींदाराना शान को कुछ चमका लेते है। उनके लिए अपनी शान से बढ़कर कुछ नहीं चाहे इसके लिए उन्हें अनैतिक आचरण ही क्यों न करना पड़े।

प्रत्येक समाज में नैतिकता- अनैतिकता की परिभाषा भिन्न- भिन्न होती है। सभी अपनी सुविधानुसार नैतिक- अनैतिक की चर्चा करते हुए नज़र आते है। 'आधा गाँव' में जहाँ अनैतिक संबंध रखना बुरा नहीं माना जाता, दुसरा व्याह कर लेना या रण्डी डाल लेने में कोई बुराई नहीं समझी जाती वहीं सईदा का अपने परिवार की परवरिश करना, गांव की औरतों को नहीं भाता और वे उसके परिवार के लोगों पर थू- थू करने लगती हैं और बेटी के पापों की कमाई खाने की तोहमत लगाती हैं।[111] यह कैसा समाज है जो औरत के यौन- शोषण को नैतिकता के दायरे में रखता हैं। वहीं दूसरी तरफ़ एक औरत द्वारा इज्जत से अपने परिवार के भरन- पोषण पर सामाजिक मान्यताओं के टूटने की दुहाई देता

है।

ग्राम्य-जीवन में नैतिक-मूल्यों की पकड़ ढीली होती जा रही हैं। पुरानी-मान्यताएँ, बदलते परिवेश में कठिन परीक्षा के दौर से गुजर रही है। *'अलग-अलग वैतरणी'* में करैता के मेले में आवारागर्दी तथा इन्द्रजाल के नाम पर नंगाई का प्रदर्शन भी होता है। पहले जहाँ मेले जीवन की आनंद रस-धारा के सनातन स्त्रोत माने जाते थे, वहीं आज यह आवासगर्दी का अखाड़ा बनते जा रहे है।[112] इसी प्रकार नैतिकता को ताक पर रखकर ठाकुर जैपाल सिंह फूला के हत्यारे देवा को, अपराध मुक्त करवाने की सोचते है। वह थानेदार को हज़ार रूपए रिश्वत के तौर पर देने के लिए तैयार होते है। "ठाकुर ने पूरा विश्वास दिलाया कि कल थानेदार के आने पर वे सारा मामला रफ़ा-दफ़ा कर देंगे। गाँव की इज्जत बचाने की खातिर वे कुछ भी उठा न रक्खेंगे।"[113]

शिक्षा के नाम पर भी अनैतिक आचरण को बढ़ावा दिया जाता है जिसके संकेत हमें 'अलग-अलग वैतरणी' में मिलते है। करैता गाँव के जड़ प्रधानाध्यापक की दृष्टि व्यायाम, बागवानी, शिक्षा से परे कहीं और रहती है। वह रात में पढ़ाने के बहाने लालटेन के साथ किरासन तेल का पैसा वसूलता है। मुंशीजी खा-पीकर बगल वाली कोठरी में अपनी चारपाई पर अंडस-मंडस करते हैं। उनका रमचेलवा खैनी मलकर उनके सामने पेशा करता है। लेकिन मामला खैनी तक ही नहीं, वह उस अनैतिक व्यभिचार तक पहुँचना है कि शर्म से युवक अध्यापक की गर्दन झुक जाती है।[114] जीवन मूल्यों के परिवर्तन के कारण भाई-भाई के संबंधों में भी संकट पैदा हुए है। यहीं नहीं,पति-पत्नी के संबंधों में आपसी तनीव पैदा हुए है।कल्पू-पटनहिया, बुझारथ-कनिया, जगेसर-सुभागी आदि पति-पत्नियों के दाम्पत्य जीवन में यह विच्छेद की स्थिति दिखाई पड़ती है। जीवन मूल्यों के संक्रमण के कारण ही गाँवों में नैतिक-मूल्यों की पकड़ ढीली होती जा रही है तथा अनैतिक-संबंधों की बाढ़ आ गई।

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त नागार्जुन के 'बलचनमा', भैरवप्रसाद गुप्त के 'गंगा मैया', उदयशंकर भटट के 'लोक-परलोक', फणीश्वरनाथ रेणु के 'परती परिकथा' आदि में नैतिक मूल्यों में ह्रास का चित्रण किया गया है।

आज का मनुष्य अपनी स्वार्थ पूर्ति एवं सत्ता को कायम रखने के लिए अनैतिक आचरण को बढ़ावा देने से भी परहेज नहीं करता। 'रंगमिलीर हाँही' में हाबेसिक के मन में गांव के मुखिया सारइक तेरांग के प्रति सदैव ही प्रतिशोध की भावना पनपती रहती है। अपने प्रतिशोध की ज्वाला को हवा देने

के लिए वह नैतिक-अनैतिक के बीच की रेखा को पार करने से भी नहीं चूकता। वह स्वयं को लगड़ी (गांव) का राजा समझता है और कारबी समाज को अपने अधीन रखना चाहता है। अतः वह सारइक तेरांग द्वारा स्कूल खूलवाने एवं कारबी समाज की उन्नति के प्रश्न पर उसका घोर विरोध करता है। वह सारइक को मुखिया पद से हटा देता है और उसके स्थान पर उसके भतीजे सिहंनट को मुखिया बना देता है। हाबेसिक अपनी सत्ता के आधिपत्य को खोना नहीं चाहता, फलस्वरूप वह समाज की उन्नति में बाधा उत्पन्न करने का अथक प्रयास करता है। लेखक ने उसकी मनोवृत्ति को निम्न शब्दों में अभिव्यक्त किया है- "इस पृथ्वी पर ऐसा कोई कार्य नहीं है जो हाबेसिक नही कर सकता। सारइक तेरंग की हदें बढ़ती जा रही है। गांव की ज़मीन मैं चाहे जिसे भी बेचूँ, वह मुझें रोकने वाला कौन होता है, ये मेरा अधिकार हैं। इसे चुनौती देने का परिणाम शीघ्र ही सारइक को को भुगतना पड़ेगा।"[115]

इसके आगे लेखक ने स्पष्ट किया है कि - "हाबेसिक ने अपने कार्य- कलापों द्वारा अपनी क्षमता का दुरुपयोग किया है। उसकी स्वेच्छाधारी मनोवत्ति धीरे- धीरे लोगों के सामने आने लगी है। ईर्ष्या, द्वेष की प्रवत्ति से वशीभूत होकर वह और भी स्वेच्छाधारी बन गया है। वह क्षमता लोभी, घोर तानाशाही प्रवृत्ति का होने के साथ ही, कारबी जनमानस के लिए आंतक का दूसरा पर्याय बन गया है।"[116]

इसी प्रकार हाबेसिक ने अपनी क्षमता का प्रभाव दर्शाते हुए सारइक तेरांग के भतीजे का सिंहनट को उसके खिलाफ़ भड़काया। उसने सारइक तेरांग को मुखिया पद से हटाकर सिंहनट को यह पद दिया। परतुं गांव वाले इस बात का विरोध किया। अतः सिंहनट के मन में अपने चाचा के प्रति प्रतिशोध की अग्नि भड़क उठती है। इस आग को हवा देने का कार्य हाबेसिक करता है। सिंहनट हांबेसिक के हाथों की कठपुतली बन बैठता है और नैतिक मानवीय मूल्यों को भूला देता है। सत्ता का लालच उसे अनैतिक कुकत्यों की ओर झुका देता है। वह आधि रात के समय, अपने चाचा के घर को आग लगा देता है और भागने के प्रयास में सारइक तेरांग द्वारा पकड़ लिया जाता है। सारइक तेरांग स्थिति की गंभीरता को समझता है और इस कुकत्य के पीछे के असली वजह को भाप जाता है। फलस्वरूप सारइक तेरांग, सिंहनट को समझाते हुए कहता है कि वह रंगमिली गांव की ही संतान है और गांव का अहित सोचकर वह अपना ही अनिष्ट करेगा।[117]

वर्तमान समय में, संबंधों के बीच पारस्परिक प्रेम और अपनेपन का अभाव पाया जाता है। एक-दूसरे के प्रति नैतिक जिम्मेदारी किसी बोझ से कम नहीं लगती। 'नोई बोई जाए' में भी इस बात के संकेत

मिलते है कि भगीरथ फुकन का संयुक्त परिवार, परिवर्तित समाज के साथ-साथ विघटित हो रहा है। जहाँ पहले एक साथ रहना प्रेम और अपनेपन की निशानी थी, वहीं आज इसका स्थान ईर्ष्या और द्वेष ने ले लिया है। भाई-भाई लड़ रहे है। बेटा, बाप की शक्ति को चुनौती देता है। भगीरथ फुकन के पांचों बेटे एक ही छत के नीचे, एक साथ रहते हुए अपनी अपनी नैतिक जिम्मेदारियों का पालन करते है।परंतु समय के साथ बदलते परिवेश में, छोटे बेटे नयन और बीच वाले बेटे की पत्नी रूपही के तानों भरी बातों ने घर की शांति और एकता को भंग कर दिया। दोनों अपनी जिम्मेदारियों से पहला झाड़ना चाहते है तथा अनैतिक आचरण को बढ़ावा देते है। नयन जहाँ शराब पीकर गांव में हुड़दंग मचाता फिरता है और पिता से बँटवारे की बात तक कह देता है वहीं रूपही भी कटु बचन बोलने से परहेज़ नहीं करती।[118]

'मिरि जियरी' में भी परंपरा, नैतिकता और बिरादरी के नाम पर दो निदोष प्रेमी युगल जंकी और पानेई को मृत्युदंड दिया जाता है। दोनों के प्रेम को स्वार्थी समाज अपवित्र मानता है जबकि दोनों ने अपने प्रेम को विवाह बंधन में बाँध लिया था। परतुं नैतिकता को ताक पर रखकर मिरि समाज के ठेकेदारों ने उन्हें ऐसी मौत दी, जिससे सभी काँप उठते है। उन्हें जानवारों से भी बदहत्तर मौत की सज़ा दी जाती है। जिसके लिए यह समाज सदैव दोषी कहलाएगा।[119]

'कईनार मूल्य' नारी जाति पर होने वाले अनैतिक आचरण का स्पष्ट दस्तावेज़ है। जिस आदि समाज में लड़की का पैदा होना हर्ष का विषय माना जाता है, उसी समाज में गुमबा जैसी युवती पर नैतिक-मूल्यों को दर-किनार करते हुए अमानवीयता का व्यवहार किया जाता है। उसे जानवारों की भांति स्कूल परिसर से घसिटते हुए ससुराल ले जाया जाता है। आदि समाज के ठेकेदार इस अमानवीय व्यवहार को उचित ठहराने हुए यह तर्क देते है कि एक बार लड़की बेचने के पश्चात् वह ससुरालवालों की धरोहर है। अतः उसके साथ जैसा चाहे वैसा व्यवहार करें। इस संबंध में तुमुद का कहना है कि - "वो चाहे जिए या मरे, इस विषय पर बातचीत करने का कोई मतलब नहीं बनता। कारण उसे हमने खरीदा है। हमारा जो जी में आएगा हम वो ही करेंगें।"[120] आदि समाज में नारी को सम्पति मानकर उसका शारीरिक-मानसिक शोषण किया जाता है। बेटी पैदा होने पर गृहस्थ को लगता है कि उसकी संपति वृद्धि का साधन आ गया है। उसे अन्य वस्तुओं की तरह खरीदा तथा बेचा जाता है। नैतिकता में आई इस गिरावट के पीछे मुख्य रूप से वहाँ का निदिष्ट समाज ही दोषी है।

इन प्रमुख उपन्यासों के अतिरिक्त, मामोणी रयसम गोस्वामी कृत 'टँताल हाटीर ऊइये खुआ

हाउदा', होमेन बरगोहाई के 'हालधीया चराइ बाऊ धान खाय', शीलभद्र के 'मधुपूर', लक्ष्मीनंदन बोरा के 'गंगा शिलनीर पाँखी' आदि में नैतिक मूल्यों में ह्रास का चित्रण किया गया है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते है कि ग्रामीण समाज निरंतर परिवर्तिन की आंधी में नैतिक-अनैतिक मान्यताएँ बदलती जा रही है। प्रत्येक समाज के लिए उसकी अपनी-अपनी मान्यताएँ होती है जिसे चाहे तो वह नैतिक माने या अनैतिक। हर समाज के लिए नैतिक-अनैतिक की परिभाषाएँ भिन्न-भिन्न है। संबंधों में नयापन के आते ही नैतिकता में भी परिवर्तन अवश्य आ जाता है। 'आधा गाँव' में जहाँ अनैतिक संबंधों को बुरा नहीं माना जाता, परंतु सईदा का लड़की होकर नौकरी करना पुरानी मान्यताओं का खण्डन माना जाता है। वहीं 'कईनार मूल्य' में लड़की के मूल्य ग्रहण करने की प्रथा को सामाजिक मान्यता प्राप्त है, परंतु गुमबा के साथ किए जाने वाले अनैतिक कुकत्यों का पक्ष धर कोई नहीं है। 'कब तक पुकारूँ' में प्रतिशोध की भावना के चलते बांके नैतिक-अनैतिक बातों को भूलाकर घूपो चमारिन का सतीत्व नष्ट कर देता है। वहीं दूसरी तरफ़ रंगमिलीर हाँही में हाबेसिक भी प्रतिशोध की ज्वाला शांत करने के लिए सारइक तेरांग का घर जला देता है। भले ही सिंहनट ने घर जलाया, परतुं इसके पीछे हाबेसिक की कुंठित मनोवृत्ति ही थीं, इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि आज का परिवर्तित समाज नैतिकता को पीछे छोड़ मानवीय मूल्यों की बलि दे चुका है।

शहरी जीवन

आज यह बात पुरानी प्रतीत होती है कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है, नगरों की बढ़ती हुई जनसंख्या इस बात का प्रमाण है कि नगरों में एक प्रकार की मिश्रित संस्कृति का उदय होता जा रहा है। भारतीय जीवन के विविध रूपों को नगरों में अधिक देखा जा सकता है। इससे अनेक मिश्रित और विरोधी समस्याएँ उत्पन्न हुई है। आर्थिक विषमताओं के कारण प्राचीन मान्यताओं के साथ पारिवारिक संबंधों में तनाव आ गया है। यह बात ग्रामीण जीवन के साथ शहरी जीवन में भी लागू होती है। आज के परिवेश में परिवार में आत्मीयता प्रेम, सोहार्द्र का स्थान स्वार्थपरता और व्यक्तिवाद ने ले लिया है। परिवार में धन की महत्ता बढ़ गयी और मनुष्य का मूल्य घट गया है। डॉ० कुँवरपालसिंह के अनुसार - "शहर की आर्थिक समस्याओं से जुझता हुआ मध्यमवर्गीय आदमी परिवार को कब तक जोड़े रह सकता है ? अतः परिवार टूटने लगे तथा आपसी संबंधों और सहज मानव मूल्यों का ह्रास होने लगा। इसके साथ ही दूसरी ओर समाज में नव धनकुबेरों और नव उद्योगपतियों, व्यापारी और पूंजीपतियों का एक

वर्ग तेज़ी से उभर कर सामने आने लगा जिनके उद्योगों तथा धन कमाने की भीषण प्रतियोगिता ने भी एक अन्य बिन्दु पर जिस गहरे व्यक्तिवाद को जन्म दिया, विवश्तावश नहीं वरन् अंधी दौड़ की उपज था जिसने समाज में एक अमानवीय मानसिकता को भी पोषित किया।"[121]

शहरी परिवेश में, पैसे की होड़ ने मानव समाज की परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन ला दिया है। आज संयुक्त परिवारों की संख्या में ह्रास होता जा रहा है और लघु परिवारों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। आगे हम हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में, शहरी जीवन में सामाजिक स्थितियों के बदलते स्वरूपों का विश्लेषण करेंगें।

परिवार

'मैला आंचल' उपन्यास मुख्यतः ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है। परंतु यत्र - तत्र शहरी जीवन का आभास भी मिलता है। डॉ० ममता श्रीवास्तव द्वारा डॉ० प्रशांत को लिखे गए पत्रों में वे शहरी जीवन की सामाजिक जिंदगी एवं पारिवारिक संबंधों के बदलते स्वरूपों का वर्णन करती हुए लिखती है - "बुशशर्ट का युग है। पाँच साल पहले बाँकीपुर की सड़कों पर पार्कों और मैदानों में दानापुर कैंट के गोरे फौजियों ने जिंदगी के जिन कुत्सित और वीभत्स पहलुओं का प्रदर्शन किया, हमारे समाज के अचेतन मन पर उसकी ऐसी गहरी छाप पड़ी कि आज हर आदमी के अंदर का भुखा टामी अधीर हो उठा है। युद्ध के विषैले गैसों ने सारे समाज के मानस को विकृत कर दिया है। काले बाज़ार के अंधेरे में एक नई दुनिया की सृष्टि हो गई है, जहाँ सूरज नहीं उगता, चाँद नहीं चमकता और न सितारे ही जगमगाते है ?........... इस दुनिया में माँ-बेटा, पिता - पुत्र, भाई - बहन और स्वामी - स्त्री जैसा कोई संबंध नहीं।"[122]उपरोक्त विवरण से शहर के विषैले जीवन जीवन का आभास मिलता है तथा ऐसे परिवेश में मानवीय मूल्यों का दमन, स्वार्थ परता, संवेदनशून्यता आदि को बढ़ावा मिलता है, और पारिवारिक संबंधों में खिचांव पैदा होता है।

इसके अलावा शहरी परिवेश किस तरह मानव के बाहरी व्यक्तित्व में बदलाव लाता है, इसका वर्णन करने के लिए रेणु ने फुलिया का उदाहरण देते हुए कहा है - "फुलिया बालों में महकौआ तेल लगाती है। अंगिया के नीचेवाली छोटी चोली में रब्बड़ लगा रहता है शायद।........ फुलिया की देह से अब घास की गंध नहीं निकलती है। सौंफ, दालचीनी खाने से मुहँ गमकता है।........ शहर की बात निराली है। शहर की हवा लगते ही आदमी बदल जाता है।[123]

'सागर, लहरें और मनुष्य' उपन्यास में रत्ना और माणिक का प्रेम शहरी जीवन की चकाचौंध में कहीं खो जाता है। पैसे कमाने की लालसा, पारिवारिक संबंधों में तनाव पैदा कर देती है। मुनाफ़ा और स्पर्धा की अंधी दौड़ ने समस्त मानवीय मूल्यों को गहरे संकट में डाल दिया है। रत्ना अपने पति माणिक से अलगाव महसूम करती है ओर अपनी सखी सारिका से कहती है - " उसे पैसे के सिवा कुछ नहीं सूझता। आया, खाना खाया और लगा खुरांटे लेने। न बात न चीत। यहीं तो सब कुछ नहीं है।"[124]

शहरी जीवन की व्यस्तता के बीच पारिवारिक संबंध पीछे छूट रहे हैं। शहर के जिस चाल में रत्ना रहती थी उसके प्रत्येक परिवार में लड़ाई-झगड़े एवं कलह आदि दिखाई देते है। लेखक के शब्दों में - " चाल में प्रायः कुछ-न-कुछ गुल खिलते रहते। किसी ने किसी स्त्री को छेड़ा तो किसी ने किसी आदमी को गाली दी। कहीं बच्चे आपस में लड़ पड़े तो उनके माँ-बाप कमर कसकर लड़ने आ गए और हाथापाई हो गई। कभी कूड़ाँ फेंकने पर लड़ाई होती तो कभी कपड़े सुखाने पर। फिर मेल हो जाता।"[125]

शहरी परिवेश में संयुक्त परिवारों का विघटन तीव्र गति से हो रहा है। आर्थिक समस्याओं के कारण शहरों में सामूहिक जीवन की परिकल्पना समाप्त हो गई है। फलस्वरूप निर्मम व्यक्तिवाद का उदय हुआ है जिसमें सभी रिश्ते-नाते, संगे-संबंधी, पड़ोसी, सहयोगी अजनबी से लगते हैं। 'नोई बोई जाए' में विजन शहरी जीवन की व्यस्तता में अपने गाँव, माता-पिता, भाई-बंधुओं को भूल चुका है। उसने अपने आप को शहर के रंग में इस प्रकार रंग लिया है कि, उसके लिए मैं और मेरा संसार के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं रह गया है। उसका अपने जन्मदाताओं के साथ भी धीरे-धीरे संबंध टूटने लगा है। उसके पिता भगीरथ फुकन का इस संबंध में कहना है कि - " विजन के साथ हमारा संबंध लगभग टूट ही चुका है। जिस गाँव की धूल - कीचड़ में वह लोट - पोट कर पला बड़ा था, जिस घर की आशा - विश्वास का प्रतीक था, जिस माता पिता ने उसके लिए इतने कष्ट सहे, अब उसे इन सब बातों की याद नहीं आती। यदि याद आती भी है तो शायद उसके पास समय की कमी है, या फिर हो सकता है कि वह अपने मन के संकुचित दायरे से बाहर नहीं निकल पा रहा। उसे नगर रूपी अजगर ने अपने वश में कर लिया है।"[126]

शहरी जीवन में व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हो जाता है। पारिवारिक संबंध उसके लिए अनावश्यक प्रतीत होते है। भगीरथ फुकन अपने बेटे विजन की आत्मकेन्द्रियता, संकुचित मनोभाव की ओर इंगित करते हुए कहते है कि - " तुम लोगों को अपने सिवाय न तो कुछ दिखाई देता है, न हीं तुम किसी अन्य

को पहचानते हो। तुम्हारे खून में पश्चिमी सभ्यता का विष धुल गया है, मन में कांटे उग चुके है।" शहरों में आर्थिक विषमता के कारण सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आने लगे है और संयुक्त परिवारों का विघटन भी शुरू हो चुका है। पारिवारिक संबंधों में गाँठ पड़ गई है और विचारों में मतभेद के चलते संबंधों में दरारें बढ़ती जा रही है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में चित्रित शहरी जीवन में पारिवारिक संबंधों में गाँठ दिखाई पड़ती है और विचारों में मतभेद के चलते संबंधों में दरारें बढ़ती जा रही है। 'सागर, लहरें और मनुष्य' में रत्ना और उसके पति माणिक के बीच आर्थिक दबाव के चलते संबंधों में दरारें बढ़ती ही जाती है। शहर का भीषण परिवेश दोनों के रिश्ते को निगल जाता है। वहीं असमिया आंचलिक उपन्यास नोई बोई जाए में भी शहरी संस्कृति का कुप्रभाव भगीरथ फुकन और उसके बेटे विजन के बीच विच्छेद की कहानी कहता है। अधिकरतर संयुक्त परिवार आपसी कलह के कारण अपना परम्परागत स्वरूप खौ बैठे है और लघु परिवारों की महत्ता बढ़ती जा रही है।

शिक्षा

शिक्षा का मानव जीवन में अत्यंत महत्त्व है। वह उसके मानसिक विकास के साथ-साथ जीवन व जगत के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए सहायक बनती है। आधुनिक समाज में किसी भी राष्ट्र की उन्नति का एकमात्र आधार शिक्षा ही है।

सार्वजनिक शिक्षा आधुनिक युग की देन है। ग्रामीण जीवन में शिक्षा का प्रचार-प्रसार उन ऊँचाईयों को नहीं छू पाया है जिससे किसी राष्ट्र का उत्थान हो सकें। इसके विपरीत शहरी परिवेश में शिक्षा की उपयोगिता से लोग भली भांति परिचित है तथा शिक्षा को अनिवार्य मानते हैं। एक शिक्षित समाज ही आधुनिकता की कसौटी पर खरा उतरता है।

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास में विपिन ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा कस्बे के हाईस्कूल में की, पंरतु उच्च शिक्षा के लिए उसे शहर जाकर अपनी पढ़ाई पूरी करनी पड़ती है। कारण गाँव में उच्च शिक्षा संस्थानों का अभाव पाया जाता है। अपनी शिक्षा समाप्त करके पुनः जब वह गाँव आता है तो, शिक्षा के प्रति छिछलेपन और दुर्गति को देखकर वह व्यथित मनः स्थिति में, करैता छोड़कर गाज़ीपुर डिग्री कॉलेज में प्रवक्ता बन जाता है।[128] शिक्षित लोगों को अंचलों में योग्य नौकरी मिलने की सुविधा न के बराबर होती है अतः वे शहरों की ओर प्रस्थान करते है जहाँ उच्च शिक्षा संस्थानों के साथ-साथ रोज़गार के भी

अवसर उपलब्ध होते हैं।

अंचलों में उच्च शिक्षा-केन्द्रों और तकनीकी शिक्षा -केन्द्रों की कमी होती है। इसलिए सईदा को गंगौली छोड़कर अलीगढ़ जाना पड़ता है। ग्रामीण परिवेश में एक ओर तो शिक्षा को अनावश्यक माना जाता है, वहीं दूसरी ओर नारी-शिक्षा की अवहेलना की जाती है अतः सईदा को भी निंदा का पात्र बनना पड़ता है। परतुं इन सब बातों को अहमियत नहीं देती ओर अपनी पढ़ाई पूरी करती है। अब्बास और उसका दोस्त फारूक़ भी अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में उच्च शिक्षा ग्रहण करते हैं।[129]

'मैला आंचल' में डाक्टर प्रशांत शहर के अनुकूल वातावरण में ही उच्च शिक्षा प्राप्त करते है। वे हिन्दु विश्वविद्यालय से आई.एस.सी पास करने के पश्चात् पटना मेडिकल कॅालेज में दाखिला लेते है और अपनी पढ़ाई पूरी करते है। इसके अलावा प्रशांत के जीवन को नई रोशनी प्रदान करने वाले " उपाध्याय जी का ज्येष्ठ पुत्र बिहार विद्यापीठ का स्नातक था, और मँझला देहरादून के एक प्रसिद्ध अंग्रेजी स्कूल का विद्यार्थी। पुत्री शांतिनिकेतन में शिक्षा पा रही थी।"[130] शहरी जीवन में शिक्षा की स्थिति उन्नत है, अतः इन्हें शिक्षा ग्रहण करने हेतु शहर भेजा जाता है।

नारी-शिक्षा, नारी जगत के मानसिक विकास का आवश्यक अंग है। 'सागर, लहरें और मनुष्य' में रत्ना की दोस्त सारिका शहरी परिवेश में पढ़-लिखकर नौकरी करती है। वह रत्ना को भी बी. ए तक की पढ़ाई पूरी करने की सलाह देती है। उसका मानना है कि - " आज की नारी के लिए इतना जानना ज़रूरी है जिससे ज़रूरत पड़ने पर वह पराधीन न रहे और दुख न भोगे।"[131]

ग्रामीण जनों में शिक्षा के प्रति स्वस्थ्य भाव नहीं है। यही कारण है कि जो शिक्षा के महत्त्व को समझते है वे शहरों की ओर अग्रसर होते हैं। 'रंगमिलीर हाँही' में सारइक तेरांग अपने बेटे हेमाय को उच्च शिक्षा हेतु, कामपूर नगर में पढ़ने के लिए भेजता है। - इस संबंध में कथावाचक का कहना है कि - " नगाँव ज़िले के दक्षिण अंचल का एक प्रधान शिक्षा केन्द्र।.. कामपूर का प्राथमिक शिक्षा केन्द्र ही छोटे-छोटे शिशुओ को नयी शिक्षा के लिए जाग्रत कर रहा था । स्कूल की आदर्शवादिता ने नए पढ़ने-लिखने वाले लड़के-लड़कियों के प्राणों में एक नयी सृष्टि के प्रति प्रेरणा का भाव जागाया।"[132] समसंगसिंग इंगति बी.ए. पास करनेवाला एकमात्र कारबी व्यक्ति है, जो स्कूल एस.आई के पद पर कार्यरत है। वह भी शहरी परिवेश में शिक्षा प्राप्त करता है। कारण गांव में स्कूल का अभाव था और उच्च शिक्षा शहर में ही संभव थी।

शिक्षा की उपयोगिता को समझते हुए, भगीरथ फुकन अपने बच्चों को नगर में पढ़ाता है। वह अपने बेटे सोन, छोटे बेटे विजन को उच्च शिक्षा के लिए नगर में भेजता है। इसके साथ ही उसका बड़ा पोता रूपम भी नगर में बी .ए तक पड़ता है। विजन के ससुर उसे डाक्ट्री पढ़ने के लिए विलायत भेजते हैं। इसके अतिरिक्त गाँव के अधिकतर बच्चे मैट्रिक पास करने के पश्चात् उच्च शिक्षा हेतु शहरों की ओर अग्रसर होते है - " वर्षभर में कुल मिलाकर दस लड़के मैट्रिक की परिक्षा पास करते है उनमें से पाँच लड़के घर पर बेकार बैठे रहते है, और पाँच नगर में पढ़ने के लिए चले जाते है।"[133]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में शहर के लोगों में शिक्षा के प्रति आस्था, तथा उसकी उपयोगिता के फलस्वरूप ही शिक्षक एवं शिक्षा संस्थानों की भरमार है। शहरों में नारी शिक्षा के प्रति भी विशेष बल दिया जाता है। शहरों में उच्च शिक्षण की सुविधाएँ भी अधिक है और ग्रामीण जन भी इस तथ्य को समझते है। यही कारण है कि 'अलग-अलग वैतरणी' का विपिन आधा गांव की सईदा, और रंगमिलीर हाँही का हेमाय, 'नोई बोई जाए' का विजन शिक्षा ग्रहण करने के लिए नगर के अनुकूल वातावरण में आते है।

जातिगत स्वरूप

अंचल का ग्रामीण परिवेश हर प्रकार से पिछड़ा हुआ तथा अव्यवस्थित है जिसके फलस्वरूप कई समस्याएँ उत्पन्न होती है, जिनमें प्रमुख जातिगत प्रथा है। गाँव में सर्वप्रथम लोगों की जाति पूछी जाती है तथा इसके आधार पर ही व्यक्ति के सामाजिक क्रिया-कलाप निर्भर करते हैं। इसके विपरीत शहरी परिवेश में जात-पात से संबंधित कोई धारणा व्यक्तियों के मन में नहीं होती कारण शहरी परिवेश में एक मिश्रित समाज पाया जाता है। विभिन्न ग्रामों, कस्बों, प्रदेशों के लोग आकर यहाँ रच बस जाते हैं। शहरी जीवन की भागादौड़, पैसे कमाने की होड़ में लोगों के पास इतना समय ही नहीं होता कि वे अन्य किसी तथ्य की ओर ध्यान दें सकें।

'मैला आंचल' के मेरीगंज गांव में प्रत्येक व्यक्ति को उसके नाम एवं जाति के साथ जाना जाता है। गाँव में जाति के बिना दाना-पानी नहीं चल सकता। इसके विपरीत शहरी परिवेश में पलकर बड़े हुए डॉ० प्रशातं जात-पात को नहीं मानते और कहते है कि - " शहर में कोई किसी से जात नहीं पूछता। शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना।"[134] उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि शहरी जीवन, जात-पात की कुप्रथा से रहित है। गांवों में संकीर्णता है, लेकिन शहर के परिवेश में जातिगत वैषम्य का आभास

नहीं होता।

'नोई बोई जाए' में भगीरथ फुकन का छोटा बेटा विजन जो शहरी परिवेश में जीवन यापन करता है, जात-पात की प्रथा का निषेध करते हुए अपनी जाति से अलग, दूसरी जाति की लड़की से विवाह करता है। परंतु गांववाले उसे बिरादरी से बाहर विवाह करने के परिणामस्वरूप प्रायश्चित करने को कहते हैं। फलस्वरूप वह गांव आना ही छोड़ देता है। इस संबंध में भगीरथ फुकन कहता है कि - " दूसरी जात की लड़की से विवाह करने के कारण गांव के लोगों ने एक-दूसरे के कान भरना शुरू कर दिया। .... विजन को ये सब अच्छा नहीं लगा। पहले जब उसे चिट्ठी देकर घर बुलाता था तो वह समय न होने, छुट्टी न मिलने का बहाना बनाता था। बाद में उसने चिट्ठी का जवाब देना ही बंद कर दिया। एकप्रकार से संबंधों में दरार पड़ चुकी है।"[135]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया आंचलिक उपन्यासों में यह तथ्य उज़ागर होता है कि शहरी जीवन में जातिगत बंधन दीले होते हैं और मनुष्य अपने कर्मों से जाना जाता है न कि जात-पात से। 'मैला आंचल' में शहरी परिवेश में डॉ प्रशांत की जात-पात के संबंध में कोई नहीं पूछता। वहीं 'नोई बोई जाए' में भी भगीरथ फुकन का बेटा विजन जात-पात की परवाह किए बिना, अपनी बिरादरी के बाहर विवाह करता है। अतः यह स्पष्ट है कि शहरी जीवन जात-पात की कुव्यवस्था को नहीं मानता।

नैतिक मूल्यों में ह्रास

आज का आधुनिक जीवन जटिलताओं एवं विसंगतियों से भरा हुआ है। व्यक्तिवादी दृष्टिकोण और आर्थिक जटिलताओं के कारण मानवीय संबंधों में निरंतर बदलाव आ रहा है। संबंधों के बिगड़ने से नैतिक मूल्यों को झटका लगा है। यह ग्रामीण जीवन के साथ शहरी जीवन में भी लागू होती है। शहर के व्यस्त जीवन में केवल पूँजी कमाना ही लोगों का उद्देश्य रह गया है जिसके चलते मानव के नैतिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है।

'सागर, लहरें और मनुष्य' में माणिक भी शहरी जीवन के प्रभाव में आकर अपने नैतिक मूल्यों को भूल जाता है। आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए, किसी भी हद को पार करने के लिए तैयार है। वह अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए अपनी पत्नी रत्ना को अपने दोस्तों के सम्मुख प्रस्तुत करने से भी परहेज़ नहीं करता।"[136] परंतु रत्ना किसी प्रकार अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई घर पँहुचती है और

माणिक की पिटाई करती हुई कहती है - " औरत बैचने वाले के घर से तो भीख मांगना अच्छा।"..................... अपनी औरत को बदमाश के साथ भेजने से तो डूब मरना अच्छा। मेरे कू भेजा। तूने ! तूने !"[137]

इसके अलावा माणिक अधिक से अधिक पैसे कमाने के चक्कर में, रत्ना को होटल चलाने के लिए विवश करता है। उसे इस बात से कोई सरोकार नहीं कि रत्ना को मन मारकर लालची निगाहों के बीच काम करना पड़ता है - " रूपया आ रहा है। वह रूपए के सामने और किसी चीज़ को महत्व नहीं देता था। वह सोचता जा रहा था, अगर रत्ना होटल में बैठे तो थोड़े दिन में वह खुब रूपया कमा लेगा।"[138] नैतिकता का यह पतन नारी जाति की गरिमा के लिए घातक है।

'नोई बोई जाए' में लेखक ने स्पष्ट किया है कि मानवीय संबंधों में खिचांव आने के फलस्वरूप नैतिक मान्यताएँ ध्वस्त होती जा रही है। शहरी परिवेश में, डाक्टर विजन इस तरह रम चुका है कि वह गाँव में आना ही छोड़ देता है। वह अपने माता - पिता, भाई - बंधुओं के प्रेम को भूल चुका है। परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में जहाँ माता - पिता को पूजनीय मानकर उनकी सेवा की जाती थी, आधुनिक शहरी परिवेश में उनकी अवहेलना की जाती है तथा उन्हें बोझ समझा जाता है। भगीरथ फुकन नैतिकता में आई इस गिरावट को लक्ष्य करते हुए, अपने बेटे विजन से कहते है कि - " पहले समय में जीवन के आखिरी पड़ाव पर पहुँच चुके माता पिता की सेवा - सत्कार करने का सुवसर यदि बेटे - बहु को मिलता था तो वे अपने आप को धन्य समझते थे और वे शांति का अनुभव करते थे।............ हमने अपनी माँ की सभी ज़रूरतों को पूरा किया तथा मृत्यु की अवस्था तक उनकी सेवा में कोई कमी नहीं आने दी। आखिरी समय में, उनके मुहँ में पानी की दो बूंदे डाली थी, जिसे पीकर ही माँ ने अपनी आँखे सदा के लिए मूँद ली। परंतु आज के वर्तमान समाज में माता-पिता किसी बोझ से कम नहीं है।"[139]

यहाँ पर यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अंचल का जीवन, ग्रामीण संस्कृति और परम्परा को प्रतिफलित करता है। हाँ, इतना अवश्य है कि यत्र-तत्र शहरी जीवन से संबंधित कुछ घटनाओं का भी वर्णन मिल जाता है। असमिया आंचलिक उपन्यास 'नोई बोई जाए' में शहरी जीवन का वर्णन अन्य असमिया आंचलिक उपन्यासों की तुलना में अधिक है। अतः शहरी जीवन का प्रसंग आते ही 'नोई बोई जाए' उपन्यास से संबंधित घटनाओं का ही अधिक विवरण मिलता है। चूंकि अन्य असमिया उपन्यासों में शहरी जीवन न के बराबर है, अतः केवल नोई बोई जाए उपन्यास में नैतिक मूल्यों के ह्रास का वर्णन

मिलता है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अध्ययन के पश्चात् इस बात की पुष्टि हो जाती है कि शहर का जीवन निरंतर गतिशील है। प्रत्येक मनुष्य, दूसरे मनुष्य से आगे निकलने की होड़ में अपने नैतिक आदर्शों को सुरक्षित रखने में अक्षम है जिससे मानवीय संबंधों में [illegible] गई है। नैतिकता को ताक पर रखकर आगे बढ़ने से भी कोई परहेज़ नहीं करता। 'सागर, लहरें और मनुष्य' में माणिक अर्थ लाभ के मोह में पड़कर अपनी पत्नी रत्ना के सम्मान को ताक पर रखने से भी परहेज नहीं करता। उसके लिए नैतिक-अनैतिक बातें कोई मान्य नहीं रखती। इसी प्रकार 'नोई बोई जाए' में इस बात के संकेत मिलते हैं कि परिवर्तित समाज में नैतिक मूल्यों में गिरावट आ गई है। भगीरथ फुकन का बेटा विजन शहरी परिवेश की चकाचौंध में माता-पिता के प्रति अपनी नैतिक जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ने की कोशिश करता हुआ दिखाई देता है। यही है शहरी जीवन का वास्तविक रूप, जो संबंधों में विच्छेद को निरंतर बढ़ावा दे रहा है।

नारी-पुरूष संबंध

नारी और पुरूष दोनों एक - दूसरे के पूरक है। एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है। दोनों की उपस्थिति से ही संसार चक्र आगे बढ़ता है। प्रकृति ने दोनों को अभावग्रस्त उत्पन्न किया है। दोनों के मिलने पर ही जीवन पूर्ण होता है। जीवन का दूसरा नाम है सृष्टि। सृष्टि अपने में पूर्ण है। उस पूर्णता से जो दो अंग यानी नर और नारी उत्पन्न होते हैं, वे फिर अभावग्रस्त हो जाते हैं। इनकी पूर्ति दोनों के सम्मिलिन से ही होती है। यही क्रम है। लेकिन इन सबके बावजूद भी आज की नारी प्राचीन रूढ़ि और परम्पराओं की श्रृखंलाओं में जकड़ी हुई है। उसके स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान नहीं है। नई चेतना ने नई सोच अवश्य दी है परंतु फिर भी वह पुरूषों पर आश्रित है। उसे समान अधिकार प्राप्त नहीं है।

ग्रामीण समाज की तरह, शहरी समाज में भी नारी पुरूषों के बीच अनैतिक संबंध देखे जा सकते है। 'सागर, लहरें और मनुष्य' की रत्ना शहरी वातावरण की चकाचौंध में अपना सतीत्त्व खौ बैठती है। अपने पति से अलग होकर वह सारिका के घर आश्रय लेने के लिए जाती है। वह उसे एक किराए का मकान दिलवाती है और धीरूवाला नामक एक वकील से मिलवाती है, जो लड़कियों के जीवन के साथ खिलवाड़ तो करता है परंतु विवाह नहीं करता। रत्ना जिन सुख - सुविधाओं की प्राप्ति के लिए बरसोवा

से निकली थी, उसकी सिद्दि उसे धीरूवाला के रूप में मिलती जान पड़ी। वह रत्ना को कई दिन बड़े - बड़े होटलों में दावत के लिए ले गया, शराब भी पिलाया। धीरे - धीरे रत्ना ने भी आत्मसमर्पण कर दिया, परंतु शादी के नाम पर वह एकदम मुकर गया।[140] रत्ना धीरूवाला का अवैध संतान गर्भ में धारण किए हुए बरसोवा लौटने का निश्चय करती है पर लौट नहीं पाती।

रत्ना बंबई के जिस चाल में रहती थी, वहाँ शंकर नाम का एक गुण्डा रहता था, अपनी पत्नी के होते हुए भी उसका किसी दुसरी स्त्री से संबंध था। वह हर रात नशे में धुत्त होकर आता और अपनी पत्नी को मारता - पिटता। कभी -कभी उसे घर के बाहर निकाल देता। दूसरी औरत की बातों में आकर शंकर ने पत्नी को इतनी बुरी तरह पीटा की वह सिर के बल फर्श पर गिर पड़ी और खून की धार बहनें लगी। वह कराहते हुए बोली - " मैं क्या करूँ बहन ? कैसे उन्हें खुश करूँ ? कोई उपाय हो तो बताओ। कहते हैं तू मर जा। कैसे मर जाऊँ बिना मौत। हाय। इस किस्मत में यही बदा था।"[141] नारी जीवन का यही सच है, पुरूष चाहे जितने भी अत्याचार करें, परंतु वह उसका विरोध करने के बजाय अपनी सेवा भाव से उसे जितना चाहती है। नारी की स्थिति आज भी दयनीय है, शहर की आधुनिकता भी इसे बदलने में असमर्थ है।

शहरी जीवन में नारी - पुरूष का संबंध केवल पति - पत्नी तक सीमित नहीं है, बल्कि दोनों में परस्पर मित्रता भी पाई जाती है। 'मैला - आंचल' उपन्यास में डॉ० ममता श्रीवास्तव, डॉ० प्रशांत की सहपाठिनी है। वह बहुत ही उदार, खुले मन की तथा सेवाभाव से भरी युवती है। वह डॉ० प्रशांत को निरंतर प्रेरणा देती रहती है। ममता प्रशांत से बहुत स्नेह करती है, लेकिन इस स्नेह में प्रणय जैसी कोई बात नहीं है। यह भाई - बहन जैसा शुद्ध -सच्ची मित्रता का संबंध है। जब डॉ० प्रशांत अपने परम्परागत उज्ज्वल कैरियर को त्यागकर मेरीगंज गाँव में मलेरिया पर रिसर्च के लिए जाने का निर्णय करता है तो ममता उसे 'प्रशांत तुम कितने महान हो, कितने महान' कहकर उसके लक्ष्य के सिद्धि की कामना करती है। वह विषम परिस्थितियों में भी डॉ० प्रशांत की शुभचिंतक बनी रहती है। डॉ० प्रशांत को जब एक झूठे जुर्म में गिरफ्तार कर लिया जाता है, तो ममता उसे छुड़ाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा देती है। जब प्रशांत निराशा की मन स्थिति में अपने रिसर्च के असफल होने की घोषणा करने की बात कहता है तो ममता का आस्था भरा स्वर गुंजता है, - " कोई रिसर्च कभी असफल नहीं होता है डाक्टर। तुमने कम- से- कम मिट्टी को तो पहचाना है।.......... मिट्टी और मनुष्य से मुहब्बत। छोटी बात नहीं।"[142]

नारी पुरूष की सहचरी है, उसके सुख-दुख की भागीदार। ग्रामीण परिवेश में नारी पुरूष को अपना आराध्य मानकर उसकी आज्ञानुसार कार्य करती है, उसके कार्यों में बाधा उत्पन्न नहीं करती। इसके विपरीत, शहर के आधुनिक परिवेश ने मानो इस परम्परागत व्यवस्था में फेर-बदल कर दिया है। 'नोई बोई जाए' में विजन शहर का एक बहुत बड़ा डाक्टर है, फिर भी वह अपनी पत्नी के निद्धेशानुसार कार्य करता है। उसके कहने पर विजन अपने गाँव भी जाना छोड़ देता है। भगीरथ फुकन का इस संबंध में मत है कि आजकल के अधिकतर लड़के विवाह के पश्चात् अपने माता-पिता से अधिक अपनी पत्नी की सुनते हैं। वह कहता है कि - "क्या वह पुरूष होकर भी अपनी पत्नी को अपने हिसाब से नहीं चला सकता? जहाँ पत्नी चले वही चल देते है। आजकाल के पढ़े-लिखे शिक्षित लड़के विवाह के पश्चात् माता-पिता से अधिक अपनी पत्नी की बातों पर अमल करते हैं। यदि उन्हें जोरू का गुलाम कहा जाए तो बुरा मानने के बजाय हँस देते हैं।"[143]

इसके अलावा रूपम भी, शहरी परिवेश ने अपनी पत्नी दीपा के हाथों की कठपुतली बना दिया है। घर की समस्त बागडोर दीपा के हाथों में है। रूपम अपने जेब खर्च का पैसा भी पत्नी से मांगकर लेता है। इस संबंध में लेखक का कहना है कि - "घर की चाबी दीपा के हाथों में रहती है। रूपम महीने की कमाई लाकर दीपा के हाथों में रख देता है। दीपा हिसाब-किताब की काँपी खोलकर बैठ जाती है, किस दुकानदार को कितना देता है, दूध, धोबी, लड़के-लड़कियों की फ़ीस, ट्यूशन मास्टर की तनख्वाह सब कुछ दीपा ही हिसाब करके देती है।"[144]

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अध्ययन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि शहरी जीवन में स्त्री-पुरूष का संबंध कहीं मित्रता का है, तो कहीं पत्नी का तो कहीं अनैतिक संबंध भी देखने को मिलते हैं। हिन्दी के 'मैला आंचल' में डॉ० प्रशांत और डॉ० ममता के बीच मित्रता का संबंध है। डॉ० ममता एक मित्र के रूप में सदैव डॉ० प्रशांत का हौसला बढ़ाती रहती है। दूसरी तरफ़ 'सागर, लहरें और मनुष्य' की रत्ना, शहरी चकाचौंध से इस तरह आकर्षित होती है कि अपना सतीत्व ही खौ बैठती है। चार दिन की चाँदनी को जीवन भर का सुख मान बैठती है और अनैतिक संबंधों में बंधने को विवश हो जाती है। इसके विपरीत असमिया आंचलिक उपन्यासों में अनैतिक संबंध का उल्लेख नहीं मिलता। परंतु नए विकास के साथ नगर सम्पर्क ओर नगरीकरण की स्थितियाँ जैसे-जैसे बढ़ रही है, वैसे-वैसे सामाजिक ढाँचा भी परिवर्तित होता जा रहा है। जिसका ज्वलंत उदाहरण 'नोई बोई जाए' में मिलता

है। 'नोई बोई जाए' में यह वर्णित है कि शहरी समाज में पुरूष नारी की इच्छानुसार कार्य करता है। भगीरथ फुकन का पोता रूपम और बेटा विजन अपनी पत्नियों की हाथों की कठपुतली है जिधर चाहे उधर नचाती है।

निष्कर्ष

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का अध्ययन करने के पश्चात् बहुत कुछ साम्य दिखाई देता है। अंचलों का जीवन आज भी पिछड़ा हुआ तथा मूल भूत सुख-सुविधाओं से रहित है। प्रत्येक अंचल अपनी-अपनी विशिष्ट जीवन पद्धति के कारण एक पृथक पहचान लिए हुए है, किंतु उस पहचान का अपना वैशिष्ट्य है। आंचलिक जीवन की सामाजिक परिस्थितियाँ, संगति-विसंगतियाँ, पारस्परिक संबंध, मानवीय मूल्य, वर्ग-संघर्ष आदि इन दोनों भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक आयाम के विस्तृत क्षेत्र को दर्शता है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक जीवन में, यहाँ के निवासियों के पारस्परिक संबंधों का यथार्थ चित्रण मिलता है। दोनों भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों की भूमि लगभग एक सी है और दोनों भाषाओं के उपन्यासकारों ने आंचलिक जीवन के वास्तविक एवं संश्लिष्ट यथार्थ को चित्रित किया है। इसलिए ये यथार्थवादी लेखक है, जो आंचलिक जीवन को सत्य दर्पण में देखते है और उसका यथावत् चित्रण करते हैं। दोनों भाषाओं के उपन्यासकारों ने अपनी अनुभवशीलता और परिस्थितियों के प्रत्यक्ष साक्षात्कार से गाँव के आंतरिक संबंधों और जीवन मूल्यों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

अंचल का सामाजिक जीवन, चाहे वह ग्रामीण हो या शहरी हर तरफ़ संबंधों में तनाव के साथ, विच्छेद की स्थिति विद्यमान है। व्यक्ति, परिवार और समाज में इन तनावों के कारण विघटन हो रहा है, जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार टूट रहे है और लघु परिवारों का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। परंतु इसके मूल में आर्थिक विषमता एवं पीढ़ियों में अंतर ही मुख्य रूप से दृष्टिगोचर होती है। गावों में जहाँ परिवार एवं संबंधों की महत्ता अधिक है, वहीं शहरों में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण इसकी अवहेलना करता है। आधुनिकता-बोध ने आंचलिक जीवन में व्यक्ति, समाज और परिवार के आपसी संबंधों में परिवर्तन ला दिया है। आज पुराने संबंध टूट रहे है और नवीन परिस्थितियों के अनुरूप नए संबंध जन्म ले रहे हैं।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में जातिगत भेदभाव पाया जाता है।

आंचलिक परिवेश की सामाजिक चेतना में बाल विवाह और नारी की स्थिति विचारणीय है। ग्रामीण समाज शिक्षा से अधिक महत्व विवाह को देते हैं। शिक्षा के प्रति उनकी रूचि न के बराबर है, परंतु स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा का प्रचार-प्रसार धीमी गति से प्रारंभ हुआ है। इसके विपरीत शहरी परिवेश में शिक्षा को उपयोगिता को लोग समझते हैं और शिक्षा को जीवन का अभिन्न अंग मानते हैं। ग्रांमाचलों में नारी का भाग्य बहुत कुछ उसके माता-पिता, पति एवं परिवार के हाथों में है। नारी की स्थिति दयनीय है और उसे सिर्फ़ भोग का साधन माना जाता है। वह आज भी पुरूषों के अधीन है। फिर भी नवीन सामाजिक चेतना से जाग्रत नारी का संघर्षशील मनोभाव उसके अपने वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष में देख सकते हैं। आधुनिक जीवन की जटिलताओं के बीच,वर्तमान संदर्भ में नैतिकता की परिभाषा भी बदल गई है, प्रत्येक समाज अपनी सुविधानुसार इसके स्वरूप का निर्धारण करता है। संबंधों में नयापन और विच्छेद के आते ही नैतिकता में भी परिवर्तन अवश्य आ जाता है। आधुनिक परिवेश में नैतिक मूल्यों में गिरावट आने लगी है। पुरानी पीढ़ी के लोग जिन्हें अनैतिक मानते थे, वर्तमान युग में वे पूर्णतः नैतिक बन गए है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक जीवन में साम्य पर्याप्त मात्रा में मिलता है, किंतु थोड़ा बहुत अतंर भी दिखाई देता है।

हिन्दी आंचलिक उपन्यासों में जहाँ यौन संबंधों की बाढ़-सी दिखाई देती है, वही असमिया आंचलिक उपन्यासों में अनैतिक संबंधों की चर्चा नहीं मिलती। इसके अलावा नारी की स्थिति भी, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों से अधिक उन्नत, सजग और हर परिस्थिति में संघर्षशील है। जात-पात की कट्टरता इतनी नहीं है जितनी हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में दिखाई पड़ती है।

संदर्भ सूची

1. आधुनिक परिदृश्य, आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, विद्या सिन्हा, पृ- 30

2. वहीं, पृ- 35

3. स्वांतत्त्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, ज्ञानचंद गुप्त, पृ - 23

4. स्वांतत्त्योत्तर हिन्दी कथा -साहित्य और ग्राम चेतना, विवेकी राय, पृ- 48

5. मैला आंचल , फणीश्वरनाथ रेणु , पृ- 17

6. अलग-अलग वैतरणी , शिवप्रसाद सिंह , पृ - 67

7. वहीं, पृ - 466

8. वहीं, पृ - 461

9. वहीं, पृ - 243

10. वहीं, पृ- 287

11. आधा गाँव , राही मासूम रज़ा , पृ - 18-19

12. वहीं, पृ - 115

13. सागर, लहरें और मनुष्य , उदयशंकर भटट, पृ - 17

14. वहीं, पृ - 09

15. नोई बोई जाए , लीला गोगोई , पृ - 91

"परियाल डांगर होलेउ आटाईबोर मिलिजुलि आसिल। कारोबार-कोरबात असंतोष थाकिलेउ बाहिरत मानुहे नेजानिसिल।"

16. वहीं, पृ - 175

"जाकरूआ के परियाल। मानुह बहुत। डेका-ढुमा, जियरी-बोआरी,लोरा-छोआली, आटाईबोर मिली टुकुरिमान होब। एकेटा चरूते खाय। 'बोआरीयेक हते भागे भागे काम करें, पूतेकहँते निजर काम निजेइ करे। बूढ़ा-बूढ़ीर अमते घरत कोनो काम हब नुआरे। बोआरीये हँते माकर घरलैई जाबलै होलेउ साहुकर जोगेदि बूढ़ारपरा अनुमति लोय।"

17. वहीं, पृ - 206

"मितिर कुटुम्ब काक-कत मातिब लागिब आए लेख दिले। पेहा-महा, पेही-माही, मोमाई-भागिन, बाई-

भिनि, भनी-बइनाई, एपादेऊ-निचादेऊ, जेठाई-जेशाहु, पुथाउ-आथाउ, ताओई-आमोई, जी जत आसे सकलोके कौऊपातेरे बाँधी आग-गुरि कटा तामुलेरे मातिबलेई मानुह दिहा-दीही गल।"

18. नोई बोई जाए, लीला गोगोई , पृ - 259

"बहुत दिन आतरा-आतरी कोई थाकि नाती-नातिनी बोरर चिन-बान हेराई गोईसे। ईतु सितुर भतिजाकहतँक सिनि नेपाय।"

19. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाइ, पृ - 10

" आनहाते गुमबार दामस्वरूपे कारगुंमे पाले पाचोता मैथोन, सातजनी गाय, काँही एघारहखन आरू काँहर बाटि। लगते पाले नकद टका तिनि हाज़ार। तारे डेढ़ हाज़ारमान कारगुमर भायेक-ककायेक आरू तार वंशर आन-आन लोकर माजत भगाई दिया होल।"

20. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, पृ - 20

"आये बोपाई दिले तोलेई जामतो।"

NORTH EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY
104645
DATE

21. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 127

"एरा बोपाई हेमाय कारने मोर ईमान चिंता होइसे।"

22. वहीं, पृ - 127

"एरा बोपाई; छोआली बूढ़ीयेई होल। दरानो पाऊँ कोत।"

23. मैला आंचल , फणीश्वरनाथ रेणु , पृ - 16

24. स्वातंव्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्रामाण जीवन, विवेकी राय, पृ - 293

25. अलग-अलग वैतरणी,शिवप्रसाद सिंह, पृ - 324

26. वहीं, पृ - 375

27. आधा गाँव,राही मासूम रज़ा, पृ - 211

28. सागर, लहरे और मनुष्य,उदयशंकर भट्ट,पृ - 13

29. वहीं, पृ - 188

30. नोई बोई जाए,लीला गोगोई ,पृ - 133

"देऊताके कय आमार जि हल हल। पढ़ा-सुना करा मानुहे सुखेरे खाय।"

31. वहीं, पृ - 133

"आमार लगरे गोविन्देई दूश्रेणीमान आँग्रेजी पढ़ी बागिचार मोहरी सोमाल। हऊँते देखात गुलामी।

तेऊँ धने-विते सुखेरे खाईशे।"

32. नोई बोई जाए ,लीला गोगोई ,पृ - 134

"सोनतोक पढ़ाई-सुनाई भाल मानुह करिब लागिब।"

33. कईनार मूल्य ,लुम्मेर दाई, पृ - 60

"एदिनमान स्कूले जोआ मानुहबोरे केलेई बारू समाजर एईबोर नीति-नियम भाल नापाय ऐनेकुआ नीति-नियमबोर एरिब लोग बूलि स्कूलत पढ़ाय नेकि ?

34. वहीं, पृ - 11

"स्कूल-तिस्कूल बाद दें। पढ़ि-सुनी डांगर मानुह होबोलेईतो नाज़ाय।"

35. वहीं, पृ -61

"सेई कारनेई कोईसु एदिनमान स्कूलेई गलई सब नष्ट होई जाय। मई भूल करिलु आमार यावाक स्कूलेई पठियाब नालागिसिल। आने निजर लोरा-छोआवालीक स्कूलेई पठिउआ देखि हे मेयो पठियाईसिलों।"

36. कपिली परिया साधु,नवकांत बरूआ,पृ - 31

"असमिया गांवर नियम अनुसरि गांवर आटाईतकेई जराजीर्न घरतोयेई सिहँतर पाठशाला आसिल। बहुत दिन वेबहार नोहोआत एकेबारे जहि-खहि गांईसिल। सि निजर हाबिर परा सोनारू खूटाँ आनि, बारीर बाँह आनि काति घरर काम अकलेई बहुत आगबढ़ालेई।"

37. रंगमिलीर हाँही ,रंगबंग तेरांग, पृ - 35

"मई हाबेसिक थकालेईके मोर लंगरित स्कूल पातिबलेई निदिऊँ।"

38. वहीं, पृ - 36

"आमि क-ख पढ़िहे डाँगर होईसोनेकि मोर लंगरित स्कूल- तिस्कूल पातिबलेई निदिऊँ।"

39. वहीं, पृ - 76

"देशर लराई स्कूलत पढ़िसे। हेमाइको पढ़ाव लागिब। कामपुरर धनेश्वर मास्टर घरत ताक थोई अहार कथा भाबिसो। तात थाकिये सि पढ़क।"

40. वहीं, पृ- 99

"बेर्णलाँसर आसे-पासे थका गाँउकेईखनक वूजाई स्कूल पातिव नोआरि तेरांग भागदि परिसिल।

अंचलतोर समालोचनार पात्र होय परिसिल तेरांग।"

41. मैला आंचल , फणीश्वरनाथ रेणु , पृ - 15

42. वहीं, पृ - 17

43. वहीं, पृ - 27

44. वहीं, पृ - 27

45. वहीं, पृ - 26

46. वहीं, पृ - 49

47. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 157

48. वहीं, पृ - 430

49. वहीं, पृ - 436

50. वहीं, पृ - 407

51. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा ,पृ - 65

52. वहीं, पृ - 48

53. वहीं, पृ - 220

54. वहीं, पृ - 101

55. वहीं, पृ - 43

56. कब तक पुकारूँ,रांगेय राघव, पृ - 169

57. वहीं, पृ - 169

58. नोई बोई जाए ,लीला गोगोई ,पृ - 156

"निरंजन गोसाई अहारपरा गाँवत जात-कूलर हिसाप अधिक हल। आगते आहोम,कचारी, चूतिया, कोच मानुहे दिया-अना करिसिल। गोसांये इजातिर मानुहे सिजातिर छोआली बिया कराले दाय धरि पराचित करारेपरा मानुहर मन कोस खाई गल।"

59. वहीं, पृ - 155

"गोसाई घरलेई अहा मानुहे बहा डुखरिखनो तियाई थोई जाब लागे। कारोबाक जलपान दिले बातितो धुई-पखालि पानी पोतात थोई जाय।"

60. कपिली परिया साधु, नवकांत बरूआ, पृ – 49

"सेई बीड़ी खोआ लोरातो कला दाँत ..... सि पिंड दिव ..... सि भतिजाक...... सि पारिब। रूपाई एको नहय। उति अहा लोरा ...... उति अहा लोरा।"

61. कपिली परिया साधु ,नवकांत बरूआ, पृ – 56

"जाति कूलर ठिक नोहोआ मानूह एटालेई कोने छोवाली दिव आई।"

62. वहीं, पृ – 52

"गांवत कालीय दमन नाटक मेलिले उचरे-पांजरे गोसाई किघर वर भये-भये थाके।राईजे ढोल-खोल लई तामोल-पानेरे जि घरत गोसाईर भाउ लवलोई लरा विचारिव दिवई लागिव।"

63. अलग-अलग वैतरणी,शिवप्रसाद सिंह, पृ – 107

64. वहीं, पृ – 150

65. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, पृ – 23

"मोक सरूकालते बेचिसिल गतानुगतिक सामाजिक प्रथ्ार अनुगत होई है।"

66. वहीं, पृ – 53

"डेकाकेईताई ताईक तानि नि दाकतर विचनात हाते-भरिये बांधी सुआई थोले। तार पिचत सिहँत घराघरि गोल।"

67. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ – 59

68. वहीं, पृ – 59

69. वहीं, पृ – 109

70. वहीं, पृ – 112

71. वहीं, पृ – 114

72. वहीं, पृ – 169

73. वहीं, पृ – 169

74. वहीं, पृ – 167

75. समकालीन हिन्दी उपन्यास कथ्य-विश्लेषण, प्रेम कुमार, पृ – 80

76. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ – 155

77. वहीं, पृ - 59

78. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 65

79. वहीं, पृ - 270

80. वहीं, पृ - 403

81. वहीं, पृ - 168

82. वहीं, पृ - 226

83. वहीं, पृ - 321

84. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, पृ - 17

85. वहीं, पृ - 17-18

86. वहीं, पृ - 125

87. वहीं, पृ - 125

88. वहीं, पृ - 188

89. वहीं, पृ - 190

90. वहीं, पृ - 114

91. वहीं, पृ - 124

92. वहीं, पृ - 115

93. सागर, लहरें और मनुष्य ,उदयशंकर भटट, पृ - 28

94. वहीं, पृ - 121

95. वहीं, पृ - 52

96. वहीं, पृ - 129

97. कब तक पुकारुँ, रांगेय राघव, पृ - 97

98. वहीं, पृ - 20

99. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 94

"आमार खेतियक समाजत तिरोतार दाम बेसि। तिरोताई संतान जन्म दिए, परियाल डांगर होय। परियाल डांगर होले समाजत मान बाढ़े, खेति-बाति बेसिकौ होय।आगर दिनत दूजनी-तिनिजनी

तिरोता बिया कराईसिल। तिरोता बेसि मानेई शेवनी-दाअनीर सुविधा, सेयेहे छोवाली खुजि बिया कराय।"

100. कपिली परिया साधु, नवकांत बरूआ, पृ - 59

"मोर गात तीनि माह।"

101. रंगमिलीर हांही, रंगबंग तेरांग, पृ - 33

"अमफु - कादमहते अनन्य कामबोर ओजराई राजहुआ भात वितरनत कामत व्यस्त होय परिल।"

102. कईनार मूल्य ,लुम्मेर दाई, पृ - 16

"मता मानुह बिलाके तिरूता मानुहक सम्पति बूलियेई भाबे।"

103. वहीं, पृ - 16

"एई छोवाली बेचा - किना प्रंथातो अति सोनकाले उठाई दिब लागे।"

104. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, पृ - 50

"सेषत बूढ़ा तामेद आरू निरमाये कमूद आरू तार बाप्रेकर परामर्शमते पानेइक ज़ोर करि हाथ - भरि बांधि कमूदर घरलोइे बिया नोहोआकइये दियार आलच करिले।"

105. वहीं, पृ - 55

106. समिधा-बसंत, फरवरी, 1965

107. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 26

108. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ - 370

109. वहीं, पृ -223

110. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, पृ - 80

111. वहीं, पृ - 243

112. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ -6

113. वहीं, पृ -61

114. वहीं, पृ - 325

115. रंग मिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 121-22

हाबेसिकोई करिब नोआरा काम एइ पृथिवीत कि आसे सारइक तेरांग। तार गात तेल होइसे।मोर

लंगरित माति मई जाकेई निदिऊँ लागे, सि मात मातिबर कोन मोर अधिकारत सि हात दियार फल सोनकालेई पाले।

116. वहीं, पृ - 124

हाबेसिकर कार्य-क्षमता,अपप्रयोगत, स्वेच्छाचारिताहै प्रकाश पावलोई धरिले।परश्रीकातर स्वाभावे तार स्वेच्छाचारि मनोभावक इन्धन जोगाले। सि हई परिल क्षमता लोभी घोर स्वेच्छाचारि छोलांगदोर एक सन्त्रासर धूमकेतु।

117. वहीं, पृ -164-67

118. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ -222-223

119. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, पृ - 67-68

120. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, पृ - 105

ताई मरकेई बा नमरकेई तात मात मातिबलगीया नाई -तामेदेई कोले। कियनों आमि किनि थोइछो। आमार जि मन जाय ताके करिव पारूँ

121. हिन्दी उपन्यासः सामाजिक चेतना, कुँवरपाल सिंह , पृ - 153

122. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु , पृ - 152-153

123. वहीं, पृ - 168

124. सागर, लहरें और मनुष्य , उदयशंकर भट्ट, पृ - 149

125. वहीं, पृ - 152

126. नोई बोई जाए , लीला गोगोई , पृ - 286

"विजनर लगत आमार संबंध प्रायः सिगिसेई। जिखन गांवर बोका - पानी गशकि सि डांगर होईसिल, जिखन घरर आशा - भरसार थल आसिल, जि पितृ - मातृये अशेस कष्ट करिसिल, तालेई तार मनत नपरे। मनत परिलेउ तार होयतोबा आजरि नाई, होयतोबा मनर भेटा भागि आग बाढ़ि आहिब नोआरे। ताक नगरीया अजगरे धरादि धरि आसे।"

127. वहीं, पृ - 290

"तहँते निजर बाहिरे आनक नेदेखा होइस, नजना होइस। तहँतर तेज़त पश्चिमीया बिह मिहलि होईसे, मनत काँईट गजिसे।"

128. अलग-अलग वैतरणी,शिवप्रसाद सिंह, पृ - 480

129. आधा गांव,राही मासूम रज़ा, पृ - 65

130. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेण, पृ - 50

131. सागर, लहरें और मनुष्य, उदयशंकर भट्ट, पृ - 146

132. रंगमिलीर हांही,रंगबंग तेरांग, पृ - 98-99

"नगाँऊ जिलार दक्षिण अँचलत एति प्रधान शिक्षा केन्द्र।........ कामपुर निम्न मज़लीया स्कूलखने कन - कन शिशुहँतक नतून शिक्षारे उदभुद करि तूलिसिल स्कूलखनर आदर्शई ऊठि अहा किशोर - किशोरिहतँर प्राणत एक नतुन पृथ्वीर प्रेरना जगाई तूलिसिल।"

133. नोई बोई जाए, लीला गोगोई , पृ - 242

"बसरि दहोतामान लराई मैट्रिक पास करें। पांचुतामाने निबनूआ होई घरते बहि थाके, पांचोता नगरलोई उलाई जाए।"

134. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु , पृ - 49

135. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 282

"गाँवर मानुहे अजाति छोवाली बूलि - बू - बू - बा - बा करिसिल।.... भाल नापाले।".......सिनहाई होल। पोनते घररपरा चिठी दि मातिले, समय नाई छुटि नाई बूलि बागी दिसिल पिसले चिठी दिले उतरके निदिया होल। एकप्रकारे संबंध चिगिल।"

136. सागर, लहरें और मनुष्य ,उदयशंकर भट्ट, पृ - 158

137. वहीं, पृ - 158

138. वहीं, पृ - 162

139. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 291

"आगर दिनत बूढ़ा - बूढ़ी मानुहक लारि - सारि प्रतिपाल करि मारिबलोई पाले पुतोक - बोआरीके शांति पाईसिल। पितृ - ऋण शोध करिब पारिले बूलि भाबिसिल। .... आमि आइक आलपईसान धरि, सेवा - शुश्रूषा करि मरनर आगमूतलेईके साईसिलो। मरिबर समयत पानी एतोपा दिसिलो। आये ताके खाई चकू मूदिले। आजिर समाजत बूढ़ा - बूढ़ी एकोता बोझा होय परिसे।"

140. सागर, लहरें और मनुष्य, उदयशंकर भट्ट, पृ - 220

141. वहीं, पृ - 152-53

142. मैला आंचल, फणीस्वरनाथ रेणु, पृ - 307

143. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 283

"सिनो पुरूष होई तिरूताजनीक चलाब नोआरेने ? तिरूतार पठियेदि बाट - बूलिव लागेने ? आजिकालि पढ़ा - सुना जना, शिक्षित लराबोरे बियार पिसत माक - बापेकतकेई तिरूताजनीर कथाहे अधिक सुने। तिरूता - सेरूआ बूलिलेऊ बेया नेपाय, भाल पाई हाँहे।"

144. वहीं, पृ - 260

"घरर चावि काठि दीपार हातत। दरमहा आनि दीपार हातत दियें। दीपाई बही मेलि कोन दुकानीक किमान दिव लागे; गाखीर, धोबा, लरा - छोआलीर फिज़, घरूआ शिक्षकर दरमहा सकुलो हिसाप करि निजे दिये।"

तृतीय अध्याय

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में राजनैतिक-आर्थिक चेतना

तृतीय अध्याय

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में राजनैतिक-आर्थिक चेतना

वर्तमान संदर्भ में, ग्रामीण जनता इस तथ्य को भली-भांति समझ चुकी है कि जीवन और समाज का स्वरूप निर्मित और निर्धारित करने में राजनीति की भूमिका अहम रही है। यह उनकी आर्थिक और सामाजिक उन्नति के लिए भी अनिवार्य है। "राजनीतिक चेतना एक ओर व्यक्ति और समाज को उसके स्वत्व हितों की पहचान कराती है तो दूसरी ओर उसे उसकी स्थानीय विशिष्टता के साथ बृहत्तर और गतिशील राष्ट्रीय यथार्थ से भी जोड़ती है। आंचलिक उपन्यासकारों ने विशिष्ट स्थानीय पिछड़ेपन में ऐसी ही राजनीतिक स्थितियों को ढूँढा है जो यथार्थ के दबाव को धारण करते हुए मानवीय आशयों को प्रस्तावित कर सकें।"[1] आंचलिक उपन्यास स्वांतत्र्योत्तर काल की देन है, किंतु बहुत समय पूर्व से ही आंचलिकता का आभास कई अन्य उपन्यासों में उपलब्ध होता रहा है। स्वतंत्रता पूर्व राजनीतिक चेतना की सफल अभिव्यक्ति हिन्दी उपन्यास साहित्य में हुई है, किन्तु स्वतंत्रता पूर्व के आलोच्य उपन्यासों में भी राजनीतिक चेतना सफल रूप में अभिव्यक्त हुई है।

स्वतंत्रता से पूर्व गाँवों में थोड़ी-बहुत राजनीतिक चेतना पहुँच चुकी थी जो स्वतंत्रता के बाद विकसित हुई। स्वतंत्रता के बाद तो राजनीति ने कृषकों के मन में अपना घर कर लिया। वहाँ पर पंचायती राज, मताधिकार, संविधान के धर्म-निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक स्वरूप आदि विभिन्न राजनीतिक कार्यों से आई है। आज कृषक भी अपने अधिकारों को जानते हैं तथा उनके प्रति जागरूक है। इस संदर्भ में श्री ए.आर.देसाई का मत ठीक ही प्रतीत होता है - " वास्तव में ग्रामीण कृषकों के मध्य उत्पन्न राजनीतिक जागरूकता और उनके दिनोंदिन बढ़ते हुए राजनीतिक क्रियाकलाप आज के मानवीय राजनीतिक जीवन के महत्वपूर्ण पहलु हैं।"[2] गाँवों में राजनीति का प्रभाव शहरों की भांति व्यापक नहीं है, फिर भी गांव तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं से प्रभावित होता ही है।

स्वाधीनता आंदोलन

स्वतंत्रता के पूर्व का समय भारतीय जनमानस के लिए संघर्ष का समय था। इस समय असहयोग आंदोलन, सामाजिक बहिष्कार आंदोलन, विभिन्न सत्याग्रह, भारत छोड़ों आंदोलन आदि अनेक ऐसे राष्ट्रीय-मुक्ति संघर्ष के कार्यक्रम चल रहे थे, जिसमें ग्रामीणों ने अपनी यथाशक्ति सहायता देकर उसे

गति दी। पराधीन भारत की मुक्ति के लिए भारतीय जनसमाज ने अथक प्रयास किए और इन्हीं के प्रयासों, बलिदानों के फलस्वरूप देश को स्वाधीनता प्राप्त हुई। इस संबंध में डॉ० ज्ञानचंद गुप्त का कहना है कि - "स्वतंत्रता प्राप्ति किसी भी देश के राष्ट्रीय-इतिहास में बहुत बड़ी घटना के साथ उसकी मानसिकता को झकझोर देने वाली आँधी होती है। इस आँधी से अनेक परिवर्तन होते हैं और सारा परिवेश कम्पायमान हो उठता है।"[3] हमारी स्वतंत्रता प्राप्ति भी हमारे राष्ट्रीय-जीवन में नयी संभवनाओं के आयाम लेकर आयी, जिसका चित्रण भी हिन्दी के उपन्यासकारों ने किया है।

'मैला आंचल' में स्वाधीनता आंदोलन की गूँज बड़े ही जोश और उत्साह के साथ सुनाई पड़ती है। ग्रामीण जन स्वाधीनता के महत्त्व को समझते है। बालदेव और बावनदास गांधीवादी नेता है, जो सभाओं एवं जुलूसों के आयोजन से सारे ग्रामीण जन-जीवन को राजनीतिक गतिशीलता प्रदान करते हैं। आज़ादी का दिन पूरे मेरीगंज में बड़े आनंद - उल्लास से मनाया जाता है। कृषक समाज में माँदर और डिग्गा धनधन धनधन उठते है। कहीं कीर्तन हो रहा है तो कहीं शंखनाद, चानचोल बज रहे है। गीत गाए जा रहे है -

" कथि जे चढ़िये आयेल
भारथमाता
कथि जे चढ़त सुराज
चलु सखी देखन कों।'
कथि जे चढ़ल ओयल
वीर जमाहिर
कथि पर गाँधी महराज। चलु सखी ...."[4]

देश की आज़ादी को प्राप्त करने के लिए, अनेक लोगों ने अपने प्राणों की आहुति दी और ब्रिटिश शासन से लोहा लिया। 'मैला आंचल' उपन्यास का प्रारंभ ही ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था की भयंकर दमन नीति के साथ होता है। इस दमन-नीति का देश के सुदूर गांवों तक में इतना आंतक था कि मिलेटरी के आने की अफवाह मात्र से गांववाले स्वतंत्रता-सेनानी बालदेव को रस्सी से बांध देते है। ब्रिटिश सरकार की दमन-व्यवस्था का एक अन्य रूप है - सेना या पुलिस द्वारा प्रताड़ित करना, जेल भेजना या अन्य प्रकार से दंडित करना। जैसे-स्वतंत्रता सेनानी बालदेव,जब गाँववालों को अपनी पीठ उघाड़ कर

दिखाते हैं, तो न सिर्फ़ सामान्य जन वरन् देश के स्वतंत्रता-सेनानियों पर भी कैसी - कैसी यातनाएँ ब्रिटिश शासन के अंतर्गत पुलिस द्वारा दी जाती थीं, उसके संकेत मिलते हैं। बालदेव अपनी यातनाएँ यों प्रकट करता है - " .... लेकिन पियारों भाईयों, हमने भारत माता का ना महतमा जी का नाम लेना बंद नहीं किया। तब मनेटरी ने हमको नाखन में सूई गड़ाया, तिस पर भी 'इसबिस' नहीं किए। आखिर हारकर जेलखाने में डाल दिया। .... भात में कीड़ा मिला देता था, घासपात का तरकारी देता था।"[5] इसके साथ ही, भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी को फांसी पर चढ़ाया जाना तथा 1942 के भारत - छोड़ों आंदोलन के समय किए गए अत्याचारों का भी संदेश मिलता है।

'मैला आंचल' में बावनदास का चित्रण एक ऐसे देशभक्त के रूप में हुआ है जो गांधीवादी विचारधारा का सच्चा अनुयायी है। वह गांधीवाद के सत्याग्रह, अहिंसा, मानव सेवा, प्रेम, हृदय परिवर्तन आदि सिंद्धातों में विश्वास रखता है।

बिहार के ग्रामीण समाज में भी गांधी और जवाहरलाल नेहरू का राष्ट्रीय नेताओं के रूप में सम्मान है और भगतसिंह का क्रांतिकारी के रूप में, लेकिन ब्रिहार के अपने नेताओं के रूप में, राजेन्द्र प्रसाद और जयप्रकाश नारायण गाँववासियों के जनमानस में बसे हैं, इसकी झलक होली के लोकगीतों में भी मिलती है।

" महतमा गाँधी की जै।
जमाहिरलाल नेहरू की जै।
रजिन्नर बाबू की जै।
जयपरगास जिंदाबाद।"[6]

इस प्रकार भारतीय राजनीति के सभी पहलू कांग्रेसी आंदोलन, समाजवादी आंदोलन, क्रांतिकारी आंदोलन, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की हिन्दू राज्य की पताका लहराने की कोशिश, देश-विभाजन, साम्प्रदायिक ढंगों आदि तो उपन्यास में चित्रित हुए ही है, साथ ही ब्रिटिश शासन व्यवस्था के औपनिवेशिक स्वरूप को भी लेखक ने उद्घाटित किया है, जो स्वतंत्रता पूर्व व स्वातंत्र्योतर काल में बिना किसी परिवर्तन के चलता रहता है।

'आधा गाँव' में भी राही मासूम रज़ा ने स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित कई प्रकरणों का चित्रण किया है। 1942 के भारत छोड़ों आंदोलन के भी अनेक प्रकरण हैं जिनमें कासिमाबाद कस्बे

के थाने पर धावा बोल देने का भी विस्तृत चित्रण है। फुन्नन मियां का छोटा लड़का इसी हमले में पुलिस की गोली का शिकार होता हुआ, शहीद हो जाता है।[7] इसके अलावा जनमानस को स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाने हेतु गांधी जी और नेहरू जी द्वारा गली-गली घुमकर देश-प्रेम का संदेश दिए जाने का विवरण उपन्यास में अंकित है।- " गांधी हो या नेहरू। गलियों में मारे-मारे फिरते है।"[8]

रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ' में उच्चवर्गीय पात्र ठाकुर विक्रम सिंह देश की स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिए जाने के संकेत मिलते हैं। ठाकुर विक्रमसिंह कांग्रेसी है और देश को स्वतंत्र कराने हेतु दो बार जेल भी गए है - " वे दो बार कांग्रेस के आहिसां आंदोलनों में जेल भी हो आए थे।"[9] उपन्यास में कांग्रेसियों द्वारा चलाए जा रहे देशव्यापी अभियानों के भी संकेत मिलते हैं। अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे अत्याचार का विरोध गांव के तत्कालीन कांग्रेसियों ने किया था। गांव के मास्टर प्रायः हर जगह ही मन में कांग्रेस के सहायक थे। वे भी दबी जुबान में पुलिस की निंदा कर रहे थे। इसके साथ ही कांग्रेस कहीं कहीं शराबबन्दी करवा रही थी।[10]

'अलग- अलग वैतरणी' में भी स्वाधीनता संग्राम के स्वर और गांधीजी की चर्चा मिलती है। स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के कारण सुखराम को तीन साल तक जेल यातना सहनी पड़ी। इस संबंध में गाँव के लोग कहते है कि - " सुखदेउआ। अरे वाह रे वाह। सुनते है भइया ऊ कोई बहुत बड़ा नेता हो गया। तीन साल जेहल काटकर आ रहा है। सुना उसी जेल में महात्मा जी, पंडित जी और बड़े-बड़े सुराजी नेता लोग भी बंद थे।"[11] सुखराम की देशभक्ति का बखान करते हुए गोगोई महाराज अपने भाषण द्वारा गाँव वालों को विदेशी राज की परतंत्रता और देश को स्वाधीन करने का पाठ पढ़ाते हुए कहते है - " देश के कारन बड़े-बड़े नेता लोग जेहल काट रहे है, सुखदेव राम जी ने छछात अपने नेनों से 'गान्ही महात्मा' को देखा है। अब जोत जगा दीजिए आप लोग भी इस गाँव में कि परदेशी राज भसम हो जाय।"[12]

इन प्रमुख उपन्यासों के अलावा नागार्जुन कृत 'बलचनमा', देवेन्द्र सत्यार्थी के 'बह्मपुत्र', राजेन्द्र अवस्थी के 'जंगल के फूल', रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर' आदि उपन्यासों में भी स्वाधीनता आंदोलन के स्वर प्रखर मात्रा में सुनाई देते हैं।

भारत देश का कोई भी राज्य स्वाधीनता आंदोलन के प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। असमिया आंचलिक उपन्यासों में भी हमें स्वतंत्रता आंदोलन के स्वर सुनाई पड़ते है। राष्ट्रीय पराधीनता के दिनों

में राष्ट्र प्रेम की भावना केवल पढ़े-लिखे नागरिक जनों तक ही सीमित नहीं थी वरन् अंचलवासियों में भी विद्यमान थी। 'भारत माता' का अर्थ अच्छी तरह न समझने पर भी उसे मुक्त करने की आकुलता व्याकुलता इनमें दिखाई देती थी।

'कपिली परिया साधु' में रूपाइ देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर पूर्ण वकील के वॉलिंटियर दल में शामिल हो जाता है। वह गांधी टोपी पहनता है। शराब की दुकान के आगे पिकेटिंग करते वक्त, एक शराबी जमादार उसे झाड़ु से मारता है। परंतु रूपाइ अपने गुस्से पर काबू रखते हुए उस पर हाथ नहीं उठाता। उसे गाँधीजी का स्मरण हो उठता है, जिनका आदेश है कि मार खाओ, लेकिन मारो नहीं।[13]

रूपाइ गाँधीजी के अहिंसावादी सिद्धांतों से प्रभावित होता है और अंग्रेजी प्रशासन के अत्याचारों के खिलाफ़ निकाले गए जुलूस में शामिल होता है। ब्रिटिश सरकार जुलूस में शामिल सभी लोगों को गिरफतार करके जेल में डाल देती है। रूपाइ भी देश के नाम पर जेल यातना सहता है।[14] रूपाइ को जेल में कई स्वतंत्रता सेनानी मिले जिन्होंने उसे स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ एवं महत्व समझाया। उनमें से एक थे तिलक गौसाई, जो रूपाइ को 'सत्याग्रही' का वास्तविक अर्थ समझाते हुए कहते है कि - " सत्य के प्रति जिसके मन में आग्रह हो वही सत्याग्रही होता है।"[15] इसके अलावा, जेल में रूपाइ को सुंधाशु बाबु भी मिलते है, जिन्होंने गांधीजी द्वारा चलाए जा रहे स्वदेशी आंदोलन से प्रेरित होकर, सन् 1921 में अपनी दुकान के सारे विलायती कपड़ों को जला डाला और खादी कपड़े बेचने लगे। इस तरह उन्होंने कांग्रेस का साथ दिया और स्वंय भी कांग्रेसी बन बैठे।[16] इन्हीं कारणों से रूपाइ को जेल की काल कोठरी " तीर्थ स्थल की भांति प्रतीत हुई।"[17]जेल से निकलकर रूपाइ ने यह अनुभव किया कि 'स्वाधीनता आंदोलन ने उसके गाँव को भी प्रभावित किया है। उसके गाँव के बहुत से लड़कों ने पुलिस की मार खाई, जेल यातनाएँ झेली।"[18]इस प्रकार पराधीन भारत में अंग्रेजी सरकार और पुलिस के शोषण व अत्याचार की कहानी के साथ-साथ भारत माता की कहानी भी चलती थी।

उपन्यास में यत्र-तत्र गांधीजी के सिद्धातों के साथ-साथ उनके जीवन संघर्ष का भी विवरण मिलता है। साथ में, खुदीराम बोस जैसे बहादुर क्रांतिकारी की चर्चा भी मिलती है जिन्होंने देश की स्वाधीनता के लिए अंग्रेजों से लोहा लिया और वीरगति प्राप्त की। इसके अलावा सन् 1857 के सिपाही विद्रोह, हिन्दु-मुसलिम के बीच एकता की गाथा तथा तांतिया टोपे, नानासाहब आदि का उल्लेख भी किया गया है।[19]

'नोई बोई जाए' में भगीरथ फुकन का छोटा बेटा 'सोन' गांधीजी के आदर्शवादी सिद्धातों से प्रभावित होकर, कॉलेज छोड़ देता है और लोक सेवा के पथ पर अग्रसर होता है। वह गाँव-गाँव जाकर कांग्रेस के 'वॉलिंटियर' एकत्रित करने में अपना पूरा सहयोग देता है।[20] भगीरथ फुकन के बड़े बेटे कनकेश्वर ने भी देश की स्वाधीनता आंदोलन में हिस्सा लिया। देश-प्रेम के मोह में पड़कर उसने अपने परिवार, रिश्ते-नाते और सगे-संबंधियों को भी भुला दिया और पूर्ण रूप से आपने आपको देश की सेवा में लगा दिया।[21] इसके साथ ही उपन्यास में ब्रिटिश शासन की अमानवीयता का भी उल्लेख मिलता हैं - " अंग्रेजी सिपाहियों ने लोगों के साथ मार-पीट की। ज़मीनों की नीलामी की। लोगों के घरों की कुर्की कराकर, उनके कास्य के बर्तन, कपड़े-लत्‌टे, गहने तक छीन कर ले गए।"[22] अंग्रेसी शासन की इस अमानवीयता का विरोध करने पर विद्रोहियों को फाँसी और कालापानी की सजा दी गई।

स्वतंत्रता-प्राप्ति किसी भी देश के लिए एक बहुत बड़ी घटना होती है। अतः इस दिन को लोगों ने बड़ी धुम-धाम और हर्षोल्लास के साथ मनाया।'नोई बोई जाए' में इस विशेष दिन का वर्णन करते हुए भगीरथ फुकन कहता है कि - "जिस दिन देश स्वाधीन हुआ था, उस दिन नगर में बड़ी सभा का आयोजन किया गया था, मैं भी वहाँ पर गया था। सभापति के साथ नगर के प्रमुख व्यक्ति भी मंच पर विराजमान थे। पढ़े-लिखे, वकील, धनवान .... तथा अंग्रेजों की चापलूसी करने वाले लोग भी इसमें शामिल थे। लेकिन अंग्रेजों के अत्याचार सहने वाले स्वंतत्रता सेनानी मंच पर मौजूद नहीं थे। सभाय सईकिया, जिसको अंग्रेजों ने शारीरिक तौर पर अपाहिज कर दिया था, उसके चेहरे पर भी आनंद एवं उल्लास की छटा देखने को मिलती है।"[23]

इसी प्रकार 'रंगमिलीर हाँही' में भी यत्र-तत्र अंग्रेजी शासन के विरूद्ध चलाए जा रहे असहयोग एवं स्वदेशी आंदोलन की चर्चा मिलती है। इस बात के भी संकेत मिलते है कि - " गाँधीजी ने आम जानता के साथ मिलकर, ब्रिटिश जैसे सशक्त एवं शक्तिशाली सरकार की नींव को हिलाकर रख दिया था।"[24]

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त वीरेन्द्र कुमार भट्‌टाचार्य के 'मृत्युजंय', मामोणी रयचम गोस्वामी के 'दँताल हातीर उइये खोआ हाऊदा' आदि आंचलिक उपन्यासों में भी स्वंतत्रता आंदोलन की गूँज सुनाई देती है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता

है कि स्वंतत्रता प्राप्ति किसी भी देश के नागरिकों के सुनहरे आस्तित्व के सुनहरे सपने सजाने के लिए अत्यंत आवश्यक है। स्वंतत्रता प्राप्ति हेतु भारतवासियों को अंग्रेजी साम्राज्य से लोहा लेना पड़ा अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी, इसके बावजुद भी जनमानस ने आज़ादी की मशाल को जलाए रखा। 'मैला आंचल' का बालदेव, कालीचरण हो या 'कपिली परिया साधु' का रूपाइ सभी ने बढ़-चढ़कर स्वंतत्रता संग्राम में भाग लिया। बालदेव ने तो देश के नाम पर अपने प्राणों की ही आहुति दे डाली। ग्रामीण जनों ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के मार्गों का अनुसरण करते हुए अहिंसा की भावना पर बल दिया, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर, खादी का प्रचार-प्रसार किया और अहिसांवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए अँग्रेजी प्रशासन का विरोध किया। अतः स्वंतत्रता का दिन बड़े ही उल्लास के साथ मनाया जाता है। यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि हिन्दी के अधिकांश आंचलिक उपन्यासों जैसे 'मैला आंचल', 'अलग-अलग वैतरणी', 'कब तक पुकारूँ', 'आधा गाँव' आदि में स्वंतत्रता आंदोलन की चर्चा मिलती है, परतुं असमिया के गिने-चुने आंचलिक उपन्यासों जैसे 'कपिली परिया साधु', 'नोई बोई जाए', 'रंगमिलीर हाँही' में इसकी चर्चा मिलती है।

लोकतंत्रीय समाज व्यवस्था -

भारत एक लोकतंत्रात्मक राज्य है, जिसमें जनता के लिए, जनता के द्वारा चुने प्रतिनिधि का निर्वाचन होता है, जो देश का स्वामी न होकर सेवक होता है। स्वतंत्र भारत के अंचल राजनीतिक दृष्टि से जागरूक हैं। यह जागरूकता वस्तुतः आधुनिक राष्ट्रीय एवं अतंराष्ट्रीय राजनीतिक चेतना की देन है। स्वतंत्रता के बाद भारत में राजनैतिक जागरूकता का प्रसार हुआ। समाज के निम्न स्तर के व्यक्तियों में अधिकार-बोध की भावना जाग्रत हुई। स्वांतन्त्र्योत्तर काल में, समाजवादी सिद्धांतों के आधार पर भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना का पुनर्निर्माण करने के लिए भारत सरकार ने विविध प्रकार की जाति, लिंग, धर्म एवं रंगभेद संबंधी विषमताओं का उन्मूलन किया जिसके फलस्वरूप ग्रामीण जनता के सामाजिक रूप से पिछड़े हुए वर्ग को सर्वाधिक लाभ पहुँचा।

स्वतंत्रता के बाद के गाँवों की राजनैतिक तस्वीर में कुछ फेरे-बदल अवश्य दिखाई पड़ता है। स्वतंत्रा के बाद ज़मींदारी प्रथा समाप्त होने के बाद से गाँव में एक नया समूह जन्म लेने लगा, जिसमें शोषित वर्ग के प्रति घृणा का भाव था और जो अपने अधिकारों के प्रति सचेत थे। 'मैला आँचल' का कालीचरन इसलिए अर्थवान और मूल्यवान प्रमाणित होता है क्योंकि वह किसान की मूलभूत भूमि

समस्या से अपनी विचारधारा को ज़ोड़ते हुए सदियों से सोये किसानों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करता है। सभाएँ आयोजित करता है। सारा मेरीगंज "किसान राज कायम हो! मज़दूर राज कायम हो!"[25] आदि के नारे से गूँज उठता है, जिसके परिणामस्वरूप किसान उठ खड़े होते है। इसी प्रकार संथाल लोग भी अधिकारों के प्रति सचेत होते हैं और तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद के चालीस बीघे वाले खेत में से बीहान लूट ले जाते हैं। अब उनके मन में विद्रोह की भावना के साथ-साथ मस्तिष्क में शोषण का प्रतिकार करने की उत्तेजना भी दिखाई पड़ती है।

राजनीतिक चेतना से अंचलों के लोगों के बीच अधिकार बोध जगाया जाता है। कालीचरन कहता है - " मैं आप लोगों के दिलों में आग लगाना चाहता हूँ। सोए हुए को जगाना चाहता हूँ। आप अपने हकों को पहचाने। आप भी आदमी हैं, आप को आदमी का सभी हक मिलना चाहिए।"[26]

ज़मींदारी-उन्मूलन के परिणामस्वरूप ज़मीदारों-जागीदारों के परम्परागत ढाँचे को गहरा धक्का पहुँचा। उनका समस्त जीवन विघटित हो गया। आँखे झुकाकर चलने वाले किसान ज़मीदारों के समक्ष तनकर खड़े हो गए, जिससे सांमतीय जीवन में आंतरिक ट्रूटन आ गयी है। 'मैला आंचल' में भी कालीचरण गरीबों और मज़दूरों की आँखे खोल देता है जिसके परिणामस्वरूप तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद के सामने विकट समस्या उपस्थित होती है। हरगौरी सिंह का कथन है कि - "काका! इस बार इज्जत बचा लीजिए। क्या आप यही चाहते है कि नाई, धोबी और चमार के सामने हम हाथ ज़ोड़कर गिड़गिड़ावें ?"[27] सामंती जीवन में आई टूटन का यह सुंदर उदाहरण है। कालीचरण भी तहसीलदार विश्वनाथ से स्पष्ट कर देता है कि अगर आप गरीबों के खिलाफ़ कदम बढ़ाइगा तो हम भी मज़बूर होकर आपके खिलाफ़ हो जाएगें, तहसीलदार के लिए यह स्थिति बिल्कुल नयी थी अतः वह उलझन में पड़ जाते हैं।

भारतीय सरकार ने अंचल के निवासियों को स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ प्रदान करने के लिए अनेक कदम उठाए हैं। 'मैला आंचल' का डॉ० प्रशांत भी मेरीगंज ग्राम में मलेरिया सेंटर खुलवाना चाहता है तथा इलाके में व्याप्त मलेरिया और काला-आज़ार के फैलने के कारणों के संबंध में खोज करके उनके उन्मूलन का प्रयास करना चाहता है। अतः उसके आग्रह के फलस्वरूप ही केन्द्रीय सरकार से परामर्श लेकर प्रेस नोट में एक दिन यह सूचना प्रकाशित की जाती है - "पूर्णिया ज़िले के मेरीगंज नामक गाँव में मलेरिया स्टेशन खोला गया है। .... दि स्टेशन विल अंडरटेक मलेरिया ऐंड काला-आज़ार

इन्वेस्टिगेशन इन ऑल ऐस्पेकट्स प्रिवेंटिव, कयूरेटिव ऐंड इकोनॉमिक।"[28] इसके साथ ही, ग्रामीण जनों की सुविधा के लिए सरकार ने चरखा सेंटर खोला है। मंगला देवी कांग्रेस पार्टी द्वारा गाँवों में चलाए जाने वाले चरखा केन्द्रों की मास्टरनी के रूप में कार्य करती है।

हमारे देश का संविधान व्यक्तिगत, जातिगत विषमता के स्थान पर समानता स्थापित करने वाला है। अतः भारत सरकार ने राष्ट्रीय चुनाव-व्यवस्था में शताब्दियों से पिछड़े हुए हरिजनों को विशेष सुविधाएँ प्रदान की है। राही कृत 'आधा गाँव' आंचलिक उपन्यास में हरिजनोद्धाार के संबंध में मुसलमानियाँ परस्पर चर्चा करती हुई कहती है-

" खुदा गारत करे ई मट्टीमिले कांगरेसियों को जिन्होंने चमारों ओर भंगियों का रूतबा बढ़ा दिया है।"

" ऊ सब अब अछूत ना है। हरिजन हो गए है। उन्होंने मुर्दा खाना भी छोड़ दिया है और कोई महीनाभर पहले चमारों का एक गोल परूसरमवा की लीडरी में पंडिताने के कुएँ पर चढ़ गया और पानी भर लाया।"[29]

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् गाँव की राजनीति में भी बदलाव आया। परसुराम चमार एम. एल. ए बन जाता है तथा सम्पूर्ण क्षेत्र के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है। सारे राजनीति के सुत्र परसुराम के घर से हिलने लगे।[30] इस तरह से हम देखते है कि गाँव की राजनीति ने आज़ादी के बाद नया मोड़ ले लिया।

लोकतंत्रीय समाज व्यवस्था के अंतर्गत भारतीय ग्रामीण जनों में वयस्क मताधिकार का प्रावधान शुरू किया गया। 'आधा गाँव' में कई स्थलों पर वोट संबंधी चर्चाएँ मिलती है। वोट के महत्त्व को अंचल के लोग समझने लगे है। अब्बास द्वारा मिगदाद से यह पूछे जाने पर कि क्या मुस्लिम लीग को वोट दोगें ? तो मिगदाद कहता है -

हाँ।"

"और जो अब्बा ने डाँटा

"ओट हमारा है कि अब्बा का।"[31]

अब्बास और मिगदाद की बातचीत से यह स्पष्ट है कि, मिगदद यह जानता है कि वोट देना एक निजी अधिकार है। अधिकांश ग्रामीण जन वोट दिए जाने की शक्ति से परिचित है। यही कारण है

कि जब परसुराम की पत्नी और हम्माद मियां की पत्नी कुबरा में टकरार होती है तो वह स्पष्ट तौर पर परसुराम की पत्नी से कहती है कि - " हमरे लोगन के वोट पर परसरमुवा एमिल्ले हो गवा है ते तैं इतराये लागी।"[32]

जनसाधारण में पनपती नवीन राजनैतिक चेतना ने लोगों को शोषण विरोधी चेतना की ओर अग्रसर किया है। 'आधा गाँव' में सफिरवा इसी चेतनी की ओर संकेत करते हुए कहता है - " खून पानी एक करें हम मजूर लोग और मौज़ उड़ायें मिल मालिक।"[33]

भारत सरकार ने गाँव की उन्नति हेतु कई योजनाओं को लागू किया है जिससे अँचलवासियों का जीवन बेहत्तर बन सके। 'आधा गाँव' का एम.एल. ए परसुराम हम्माद मियाँ से गाँव की सड़क बनने एवं स्कूल खुलने के संबंध में बताते हुए कहता है कि - "............... दो तरफ़ से पुख्ता सड़के बन गयी है कि अब आधे घंटे में आप लोंग शहर पहुँच जाते हैं। गाँव में हर गली पक्की हो गयी है। दो स्कूल चल रहे है........ और कोई सरकार इससे ज्यादा कर सकती है ?[34]

इसके साथ ही, भारत सरकार ने स्वतंत्रता के पश्चाद्र ज़मीदारी उन्मूलन विधेयक का निर्माण करके कृषकों पर होने वाले शोषण को दूर करने का प्रयास किया है। 'आधा गाँव' में जमीदारी टूटने पर निम्न वर्ग के लोगों ने राहत की साँस ली तथा ज़मीदार भी अब आम जनता की श्रेणी में आ गए,जो अपने रोजी-रोटी कमाने के लिए ज़मीदारी भूलकर मेहनत करने के लिए तैयार खड़े है। गंगौली के तमाम भूतपूर्व ज़मीदारों और पढ़े-लिखे सम्पन्न लोगों के रहते परसुराम चमार का एम.एल.ए बनना इसी नयी मानसिकता की देन है।

'अलग-अलग वैतरणी' में पूर्वी उत्तरप्रदेश के एक गाँव करैता के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर ग्राम-जीवन में आए बदलाव को यथार्थवादी दृष्टि से अंकित किया गया है। स्वाधीनता के बाद राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान गाँवों में किसान सभाओं के माध्यम से उभर रहे रोष की ओर गया और उन्होंने गाँवों में इन सांमतों को समाप्त करने की योजना बनायी, जो ज़मींदारी-उन्मूलन की योजना है। ज़मींदारी-उन्मूलन ने कृषक जीवन में परिवर्तन ला दिया। ज़मींदारी टूटने पर, करैता गाँव में बाबू जैपालसिंह और उनके परिवार की चली आ रही सांमतवादी पद्धतियाँ अपनी गहरी जड़े खौ बेठे। ज़मींदारी टूटते ही लोगों ने छावनी की ओर मुँह करना भी छोड़ दिया। इस संबंध में दयाल महाराज का कहना है कि - " क्या बाकी रही उनकी यहाँ। ज़मींदारी टूटी कि लोगों ने छावनी की ओर मुहँ करना भी छोड़ दिया।" तब करैता

गाँव के सभी रास्ते छावनी को ही जाते थे। आप गाँव की किसी भी गली में निकलिए, घूम-फिरकर छावनी ही पहुँचेंगे। वे गलियाँ, जो छावनी के रास्ते को काटती थीं, लोगों को भुलभुलैया में डालती और भरमाती थी, बंद कर दी गयीं। और बंद हुई तो ऐसी कि फिर वे कूड़ा फेंकने के ही काम आयीं, कभी उनमें फिर किसी आदमजात ने पैर नहीं रखा।"[35]

ज़मींदारी टूटी तो, आम जनता के लिए उन्नति के नए मार्ग खुल गए। नवीन राजनीतिक चेतना का एक और परिणाम सांमतीय विघटन है जिसका उदाहरण ठाकुर जैपालसिंह है। नवीन राजनीतिक चेतना के कारण ही करैता गाँव से ठाकुर जैपालसिंह भाग जाता है। " .... ऐसी दुनिया में जहाँ दूसरी हवा चलने लगी हो। जहाँ दूसरी बिरादरी बन गई हो, जहाँ दूसरे रिश्ते जन्म ले रहे हों बाबू जैपालसिंह ने कदम न रखने की मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर ली थी। उन्होंने अपनी जिंदेगी के ज्यादा दिन लोगों के झुके माथे और झुकी आँखों में देखकर बिताये थे। उन्हें नीच ज़ातवालों को तने सीधे देखने का ताव न था।"[36]नवीन वातावरण से वे मेल न खा सकें।

ज़मींदारी उन्मूलन ने करैता गाँव को नयी रोशनी और न्रयी मानसिकता प्रदान की है। राजनीतिक चेतना से अंचलों के लोगों के बीच अधिकार बोध की भावना जाग्रत हुई है। गाँव के किसानों, मज़दूरों और सदियों से शोषित-पीड़ित हरिजनों के अंदर एक नयी अधिकार भावना और प्रगतिशील चेतना जन्मी है। अधिकार बोध से उद्‌बुद्ध घनेसरी का कहना है - " टुकड़े - टुकड़े हो जाऊँगी बाका केहूँ की जूती नहीं चाटूँगी। छुट्टा रहूँगी, मन लायक मज़दूरी मिले तो काम करूँगी, नाहीं सुअर -बकरी - चराऊँगी।"[37] वह झिनकू को भी अपने अधिकारों के प्रति सचेत करती हुई कहती है कि - " ये आदमिन के आगे कभी झुकना नहीं चाहिए। झुके नाहीं भइया कि ई कूद के पीठ पर चढ़ जायेंगे और ऐसी सवारी कस देंगे कि छुटना मुहाल हो जायेगा।"[38]झिनकू मालिक के हाथों मार खाकर भी तनकर कहता है, " मारकर जान ले लो। लेकिन हम एक बार नहीं, सौ बार कह रहे है - हम बिना रोजीना बन्नी के काम नहीं करेंगे।"[39] सीरी सिंह जब सुरूप भगत की लड़की से छेड़छाड़ करता है तब दुलरिया जाग्रत स्वर में कहती है - " इज्जत तो सबकी एक ही है बाबू चाहे चमार की हो, चाहे ठाकुर की। हम आपका काम करते है, मजूरी लेते है। हमें गरज है कि करते है। आपको गरज है कि कराते हो। इसका मतलब ई थोड़े हो गया कि हम आपके गुलाम हो गये।"[40]इन विवरणों से स्पष्ट है कि संघर्ष उत्पन्न होने का कारण एक नहीं अनेक है। पहले माथे झुकाकर चलने वाले अब ज़मीदारों के सामने सिर उठाना सीख गए है।

भारत की सच्ची आत्मा पंचायत में ही बसती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत परम्परागत जर्जर भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण करने के लिए भारत सरकार ने ग्राम पंचायत की पुनः स्थापना की । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्राम पंचायतों का संगठन सम्पूर्ण ग्रामीण जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर होने लगा। करैता गाँव में भी स्कूल की मरम्मत कराने हेतु पंचायत के सदस्यों की बैठक बुलाई जाती है - " एक पखवारे के भीतर ही ग्राम पंचायत की मीटिंग बुलाई गयी। गिरते स्कूल की इमारत को ठीक कराने, सुधरवाने का प्रस्ताव आया। .... लोग स्कूल की इमारत की बुरी हालत, उसे ठीक कराने की ज़रूरत पर अपने विचार व्यक्त कर रहे थे।"[41]

वयस्क मताधिकार के संबंध में ठाकुर जैपालसिहं अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है कि - " प्रजातंत्र है। हर आदमी को वोट देने का हक है। वैसे ही हर आदमी को अपना रास्ता आपोआप देखने का भी हक है।"[42]

रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ' में शोषित और समाज की उपेक्षित जाति 'करनटों' की व्यथा को अभिव्यक्त किया गया है। सम्पूर्ण दलित वर्ग के प्रतिनिधि बनाकर करनट सुखराम के माध्यम से आभिजात्य वर्ग के प्रति कई स्थलों पर तीव्र आक्रोश और विद्रोह की भावना को प्रकट किया गया है। खेंचरा चमार की पत्नी धूपी पर जब उच्च वर्ग के एक गुंडे द्वारा बलात्कार की कोशिश की जाती है, और वह बेसहारा जब रोने लगती है, तब सुखराम उसे सांत्वना देते हुए जो कुछ कहता है वह शोषित वर्ग में नई अधिकार - बोध की भावना को जाग्रत करते है - " तुम रोओ नहीं भाभी। उनको जुल्म करने दो, तुम रोओ नहीं। सहो, और नहीं सहा जाता तो लड़ो ....।"[43] अतः यह स्पष्ट है कि दलित वर्ग में भी अब नयी मानसिकता और प्रगतिशील चेतना का विस्तार हो रहा है।

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त लोकतंत्रीय समाज व्यवस्था के अतिरिक डॉ० विमल शंकर नागर कृत " हिन्दी के आंचलिक उपन्यासः सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ " के आधार पर 'बलचनमा', 'पानी के प्राचीर', 'माटी की महक', 'जल टूटता हुआ', 'परतीः परिकथा' आदि आंचलिक उपन्यासों में लोकतंत्रीय समाज व्यवस्था की झलक मिलती है।

भारत जैसे लोकतंत्रात्मक देश में सभी मनुष्यों, जाति, धर्म के लोगों को अपना निजत्व बनाए रखने की छूट है। यह बात भारत देश के प्रत्येक राज्य पर लागू होती है। 'रंगमिलीर हाँही' में ग्रामीण संरचना का पुनर्निर्माण करने के उद्देश्य से कारबी जनसमुदाय ने 'कारबी दरबार' की स्थापना के प्रयास

किए। कारबी समुदाय इस तथ्य को समझ चुके है कि वे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी रूपों से पिछड़े हुए है।कारबी दरबार का गठन, कारबी समाज के लिए उन्नति के नए मार्ग खोलने में सहायक सिद्ध होगा। कारबी जाति में अधिकार बोध की भावना; सामाजिक जागरूकता, अपने स्वत्व, अधिकार और परिवेश के प्रति चेतना भाव से ही जाग्रत हुई है। कारबी दरबार के गठन पर विचार करने हेतु रंगमिलीर गांव में एक सभा का आयोजन किया जाता है। इस संबंध में गाँव में एक व्यक्ति लारेंस कहता है कि - " आलोचना का प्रधान विषय था दरबार गठन और सीमा निर्धारण करते हुए एक अलग ज़िले का गठन करना। इस सभा में बहुत से लोग शामिल हुए। कारबी समुदाय ने जिस आंतरिक भावना से इसका समर्थन किया, वैसा मैंने पहले कभी नहीं देखा।"[44]

इस सभा में नगर के बड़े - बड़े लोग उपस्थित थे जिन्होंने कारबी समुदाय की दुर्दशा के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। इस सभा में इस तथ्य को उज़ागर किया गया कि कारबी समाज की दयनीय स्थिति के पीछे अफ़ीम का नशा ही मूल कारण है। अतः इसका प्रचलन शीघ्र ही बंद कर देना चाहिए। इस बात का समर्थन करते हुए उपस्थित सभी लोगों ने इस सभा का नाम कारबी आ-दरबार रखा।"[45]

कारबी समुदाय में यह नयी चेतना, नयी राजनैतिक परिस्थितियों की देन है। अंग्रेजों के भारत छोड़कर चले जाने पर भारतवर्ष पर केवल भारतवासियों का ही अधिकार शेष रह गया। ऐसी स्थिति में कारबी समाज के लिए अलग ज़िले की मांग करना अत्यंत ही सरल है क्योंकि देश की बागडोर स्वंय अपने लोगों के हाथ में रहेगी। अलग ज़िले के गठन से कारबी समुदाय अपने सुख-दुखों को बेहत्तर ढंग से पहचान सकेंगे।[46]

भारत सरकार ने स्वतंत्रता के पश्यात् बाल-विवाह को गैर -कानुनी घोषित करते हुए राजनीतिक दृष्टि से स्त्रियों को विशेष सुविधाएँ और अधिकार प्रदान किए है। 'कईनार मूल्य' में गुमबा बाल -विवाह का विरोध करती है जिसके परिणामस्वरूप उसके ससुरालवाले उसके साथ जानवरों से भी बुरा बर्ताव करते हैं। परंतु गुमबा हार नहीं मानती और अपना विरोध ज़ारी रखती है। वह अपना विरोध प्रद्धर्शित करती हुई कहती है कि - " मैं पशुत्व बर्बरता के विरूद्ध लड़ रही हूं। मेरा विरोध, हमारे समाज में नारी जाति के ऊपर होने वाले अमानुषिक अत्याचार, मानवीय नैतिकता को ताक पर रखकर अपने लड़कियों का खून चूसने वाले लोगों के खिलाफ़ तथा आदि समाज की बर्बर प्रथा के विरूद्ध है।"[47] गुमबा के

साहस, त्याग और शोषण के प्रति न झुकने की प्रवृति के फलस्वरूप ही बाल - विवाह जैसी कुप्रथा का बांग - केबांग (आंचलिक परिषद) द्वारा अवहेलना की जाती है।

भारत के विभिन्न प्रांतों में ग्राम-पंचायत की व्यवस्था रहती है। पंचायत व्यवस्था भारत की सबसे पुरानी व्यवस्था है। लेकिन आदि समाज में पंचायत के स्थान पर 'केबांग' द्वारा समाज के अधिकतर फैसलों निपटारा किया जाता है। जिन फैसलों का निपटारा केबांग में नहीं हो पाता, उनका निर्णय 'बांग - केबांग' द्वारा लिया जाता है। "बांग-केबांग" एक आंचलिक परिषद है, परंतु यह पंचायती राज -व्यवस्था से बिल्कुल भिन्न है। कई गाँवों को मिलाकर बांग - केबांग की स्थापना की जाती है। बांग-केबांग के ऊपर भी सबसे ऊँची न्यायिक परिषद होती है जिसे ' बरगुम -बकांग -केबांग' कहते है। यह आदि समाज के लोगों का सर्वोच्च न्यायिक तथा राजनैतिक अनुष्ठान है जो सम्पूर्ण आदि समाज का प्रतिनिधित्व करती है।"[48]

'कईनार मूल्य' में कारगुम की बेटी गुमबा को भी बलपूर्वक मिंडाक के घर ले जाने का आर्दश 'केबांग' ने दिया था। गुमबा केबांग द्वारा दिए गए इस फैसले का विरोध करती है और उसके पिता 'बांग-केबांग' द्वारा अपनी बेटी को बाल-विवाह की कुप्रथा से मुक्ति दिलाना चाहते हैं। 'बांग-केबांग' का फैसला हमेंशा जीवनदान देना होता है, चाहे उसके लिए पुरानी मान्यताओं का खण्डन ही क्यों न करना पड़े। फलस्वरूप गुमवा को भी न्याय मिलता है और बाल - विवाह की कुप्रथा से छुटकारा मिलता है।
" एक जीव की बलि देना, केबांग का न्याय कदापि नहीं है। जीवन की रक्षा करना ही केबांग का नियम है।" .... केबांग का नियम है मानवीय हितों की रक्षा करना, न्याय प्रतिष्ठा करना। एक जीव की बलि देने के लिए, समाज नियम का पालन नहीं करता। किसी भी तरह से जीवन को बचाना ही समाज का नियम है।"[49]

भारत सरकार ने ग्रामीण समाज के पुनर्निमाण संबंधी सुधार नियोजन लागू किए है। ग्रामीण अंचलों की उन्नति के लिए सरकार द्वारा कई प्रकार की योजनाएँ चलाई जा रही है। 'नोई बोई जाए' में भी स्वतंत्रता के पश्चात् ग्रामीण इलाकों में सड़क निर्माण के कार्य में परिवर्तन देखा जा सकता है। सेदुंरीपाम को जाने वाली सड़क, जो पहले कीचड़ और बरसात के पानी से भर जाती थी और यातायात के लिए अनुपयुक्त थी, वहाँ पर सरकारी प्रयास द्वारा पक्की सड़क का निर्माण किया गया है।
" पहले भादो महीने में जो सड़क गुठनो तक कीचड़ से सनी रहती थी, वह अब पक्की हो गयी है।"[50]

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का अध्ययन करने के पश्चात् यह तथ्य उज़ागर होता है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारतीय ग्रामीण समाज का पुनर्निर्माण करने के लिए भारत सरकार ने अनेकों सुधार योजनाएँ, ग्राम पंचायत व्यस्क मताधिकार आदि विशेष सेवाएँ उपलब्ध करवाई है। स्वतंत्र भारत की प्रजातंत्र -शासन -प्रणाली से अंचल के लोगों का सीधा संबंध, पंचायत राज के द्वारा समूर्त बना है। पंचायत या प्रादेशिक सत्ता के चुनाव में जनता का सक्रिय सहयोग उनके राजनैतिक चेतना से प्रभावित है।

दोनों भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों में लोगों द्वारा नवीन भाव - बोध अपनाने के कारण अंचलों में नवीन सामाजिक स्थिति उपस्थित होने लगी है। वयस्क मताधिकार प्राप्त होने के कारण पद -दलित जन जातियों के बीच में भी अधिकार - बोध की भावना जाग्रत हुई है। इसके फलस्वरूप ज़मींदारी का अंत हो गया तथा सांमती जीवन में विघटन भी शुरू हुआ। समसामयिक भारतीय ग्रामीण जनता राष्ट्रीय कल्याणकारी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अग्रसर है तथा उसके मध्य इस प्रकार के तत्त्व उपस्थित है जो उसे राष्ट्रीय स्वतंत्रता का पूर्ण लाभ पहुँचाने के लिए कृटिबद्ध हैं। यहाँ पर उल्लेखनीय तथ्य यह है कि हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में ज़मींदारी उन्मूलन, अधिकार बोध की भावना, स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार द्वारा चलाए जा रहे कई प्रकार की योजनाएँ, वयस्क मताधिकार आदि का वर्णन, असमिया आंचलिक उपन्यासों की तुलना में बृहत रूप में मिलती है।

राजनैतिक मूल्यों में ह्रास

स्वतंत्रता - प्राप्ति के पश्चात् भारतीय ग्रामीण समाज का पुनर्निर्माण करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने अनेकों विधानों का निर्माण किया है। परंतु दुर्भाग्यवश सरकार की ओर से बनाई जानेवाली योजनाएँ भी वास्तव में सरकारी कर्मचारियों तथा भ्रष्टाचारी नेताओं के कारण उचित फल नहीं देती है। इस संबंध में डॉ० विमलशंकर नागर का कहना है कि - " स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त ग्रामीण जनता में जनतान्त्रिक पद्धति के आविर्भाव से जनता अपनी शक्ति को समझने लगी है तथा ग्रामीण जनता का सुशिक्षित वर्ग प्रशासन के भ्रष्टाचारी सेवकों का विरोध करने लगा है एवं सरकारी सेवक-गण भी अब उससे भयभीत रहने लगे हैं। हाँ, वैयक्तिक स्वार्थ एवं हित की सिद्धि के कारण ग्रामीण जनता का सुशिक्षित वर्ग भी अपेक्षाकृत अधिक निपुणता के साथ भ्रष्टाचारपूर्ण व्यवहार करता हुआ परिलक्षित होता है।"[51]

'मैला आँचल' के संदर्भ में राजनीति की भूमिका के विषय में श्री नेमिचंद जैन ने लिखा है - " वास्तव में समग्र मानवीय स्थिति के एक आत्यंतिक अंग के रूप में राजनीति का प्रक्षेपण आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में केवल एक ही कृति में है और वह है फणीश्वरनाथ रेणु का मैला आंचल। यहाँ राजनीतिक परिस्थितियाँ, परिवर्तन, आंदोलन, पार्टिया, सिद्धांत, सब किसी कीमियायी प्रक्रिया से जीवन से एकाकार हो गए हैं। .... मैला आंचल का लेखक राजनीति को वह स्थान देकर भी उसे पूरे जीवन पर हावी या उससे एकाकार नहीं हो जाने देता। राजनीति समग्र मानवीय स्थिति के एक अविभाज्य अंग के रूप में प्रस्तुत होती है।"[52]

जातिवाद का प्रभाव मेरीगंज गाँव के जन-जीवन पर काफ़ी सक्रिय है। इसका प्रमुख कारण राजनीति मानकर बालदेव कहता है - " सब चौपट हो गया ... यह बीमारी ऊपर से आई है। यह पटनियाँ रोग है। ...... अब तो धुमधाम से फैलेगा। ..... भूमिहार, राजपूत, कैथ, जाटव, हरिजन सब लड़ रहे है। .... अगले चुनाव में तिगुना मेले चुना जाएँगे। किसका आदमी ज्यादे चुना जाय इसी की लड़ाई है। यदि राजपूत पाटी के लोग ज्यादा आए तो सबसे बड़ा मंतरी भी राजपूत होगा।"[53]

राजनीतिक टकराहट और उनके बीच में जीवन-यापन करने वाले ग्रामीण जनों की बेबसी को रेणु ने 'मैला आंचल' में संतुलित ढंग से उभारा है। जोतखी काका राजनीतिक पार्टियों में आपसी विरोध की ओर इंगित करते हुए कहते है कि - " दो भैसें की लड़ाई में दूब के सिर आफत। कांगेस और सुशलिंग अपने में लड़ रहा है। दोनों अपना - अपना मेम्बर बनना चाहता है। चक्की के दो पाट में गरीब लोग ही पीसे जायेंगे? [54]राजनीति, भ्रष्टाचार एवं मैलापन का पर्याय बनती जा रही है। बावनदास नेताओं की पदलालसा के बारे में बालदेव से ठीक ही कहता है, " सब मेले - मन्तरी होना चाहते है बालदेव। देश का काम, गरीबों का काम, चाहे मजूरों का काम, जो भी करते है, एक ही लोभ से।"[55]

गाँव की जातिगत दलबंदी के धीरे- धीरे राजनीतिक दलबंदी में परिणत होने की प्रक्रिया स्पष्ट हो जाती है। बावनदास इस तथ्य को लेकर दुखी है कि कांग्रेस के सभापति का चुनाव जाति के आधार पर हो रहा है। वह सोचता है - " अब लोगों को चाहिए कि अपनी-अपनी टोपी पर लिखवा लें - भूमिहार, राजपूत, कायस्थ, यादव हरिजन। .... कौन कार्यकत्ता किस पार्टी का है, समझ3में नहीं आता।"[56]

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार ने ग्रामीण समाज के लिए न्याय-व्यवस्था का विधान रखा जिससे समाज विरोधी तत्त्वों तथा परस्पर झगड़ने वाले व्यक्तियों को समुचित न्याय प्राप्त हो। परंतु परम्परागत व्यवस्था में कोई भी परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता। कृषकों को ज़मींदारों के चुंगल से मुक्त कराने के लिए भारत सरकार ने ज़मींदारी उन्मूलन विधेयक का निर्माण किया। इस विधेयक की पूर्व जानकारी से ज़मींदारों ने कृषकों का कम से कम अधिकार शेष रह जाने की सक्रिय प्रयास किया और कृषकों के विरोध करने पर न्याय -व्यवस्था भी उन्हें शरण नहीं प्रदान कर सकी।

मेरीगंज गाँव में तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद के आदमी संथालों से ज़मीन छुड़ाने के लिए खेतों पर जाते हैं। संथालों एवं ज़मींदार टोली में वर्ग संघर्ष होता है, जिसमें दोनों पक्षों के कई लोग मारे जाते हैं और पुलिस का दमन संथालों को झेलना पड़ता है। तहसीलदार पुलिस के थानेदार को रिश्वत के पाँच हज़ार रूपए देकर पूरे मुकद्दमें को अपने पक्ष में करा लेते है - " वह तो तहसीलदार के भाई थे, तो पांच हज़ार पर बात टूट गई। नहीं तो .... नहीं तो अभी बड़े घर की हवा खाते रहते खेलावन जी।"[57]
न्याय व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार के फलस्वरूप न्यायालय संथालों को देता है -
जीवनभर का कारावास। - " सभी संथालों को दामुल हौज हो गया। धूमधाम से सेसन केंस चला। संथालों की ओर से भी पटना से बालिस्टर आया था। बालिस्टर का खर्चा संथालों ने गहना बेचकर दिया था। बालिस्टर पर भी बालिस्टर है। यदि इस मुकदमा में तहसीलदार साहब जैसे कानूनची आदमी नहीं लगते तो इस खूनी केस से शिवशक्करसिंह, रामकिरपालसिंह और खेलावनसिंह तो हरगिस नहीं छूटते।"[58]

एक अन्य स्थल पर 'रेणु' ने न्याय-व्यवस्था की जटिलताओं एवं न्यायालय से न्याय प्राप्त करने के लिए आने वाले ग्रामीण जनों एवं उनकी जेब से होने वाले आर्थिक व्यय की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं - " कचहरी में जिले-भर के किसान पेंट बाँधकर पड़े हुए है। दफ़ा **40** की दर्खास्तें नामंजुर हो गई है, 'लोअर कोट' से। अपील करनी है। ...... अपीलो? खोलो पैसा देखो तमाशा। क्या कहते हो? पैसा नहीं है। तो हो चुकी अपील। पास में नगदनारायण हो तो नगदी कराने आओ। .... कानून और कचहरी कंपौड में पलनेवाले कीट-पतंगें भी पैसा माँगते है।"[59]

'मैला आंचल' में राजनीतिक होड़ के फलस्वरूप राजनैतिक मूल्यों में निरंतर ह्रास होता जा रहा है। यही कारण है कि कांग्रेस दल के कार्यकत्ता सोशलिस्ट दल के प्रभाव को कम करने के लिए कालीचरण एवं वासुदेव को डकैती के मुकदमें में गिरफतार करा देते है।[60] मेरीगंज की न्याय व्यवस्था

के संबंध में मानवतावादी विचारों वाला प्रशांत सोचता है।........... पेट। यही इनकी बड़ी कमज़ोरी है। मौजूदा सामाजिक - न्याय- विधान ने इन्हें अपने सैकड़ों बाजुओं में जकड़कर ऐसा लाचार कर रखा है कि वे चूँ तक नहीं कर सकते।"[61]

वर्तमान समय में राजनीतिक मूल्यों में निरंतर गिरावंट आ रही है। ग्रामीण समाज भी इससे अछूता नहीं है। 'मैला आंचल' के बावनदास के माध्यम से रेणु ने सत्ताधारी दल की अवसरवादी राजनीति तथा उनकी असफलता का कार्यकत्ताओं पर प्रभाव दर्शाया है। कटहा थाना कांग्रेस का सेक्रेटरी दुलारचंद कापरा ऐसा व्यक्ति है, जो जुआरी होने के साथ ही दारू - गाँजे और लड़कियों की बिक्री के अवैध धंधों में लिप्त है। वहाँ के सप्लाई इंस्पेक्टर तथा थानेदार उससे मिले हुए है। बावनदास जब सीमेंट, चीनी और कपड़े से लदी तस्करी की गाड़ियों को रोकना चाहता है, तब कापरा गाड़ियों को बलात् आगे बढ़ाता है और उनके सम्मुख लेटे बावनदास के शरीर के चिथड़े- चिथड़े उड़ जाते है।[62] वास्तव में बावनदास का जीवन पदलोलुप अवसरवादी नेताओं से भिन्न है, जो केवल सत्ता को हथियाने में आगे रहते हैं। बावनदास के जीवन का अतं वास्तव में गांधीवाद की हत्या है। इस संदर्भ में डॉ० कान्ति वर्मा का मत है - मैला आंचल में बावनदास के विफ़ल बलिदान की एक बड़ी विवश और करूण छाया है। गाँधी युग के मूल्य स्वातंत्र्योत्तर युग में आकर किस प्रकार अकस्मात् निष्फल सिद्ध हो गये और एक विचित्र से नैतिक शून्य का सामना भारतीय मानस को करना पड़ा इसका सफल चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।"[63]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकारी कर्मचारियों एवं विशेषकर पुलिस विभाग के अवैधानिक कार्यों की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई है। 'आधा गाँव' में थाना भरटौली के ठाकुर हरनारायन प्रसाद के अत्यधिक भ्रष्टाचार और ब्रिटिश प्रशासन के अर्थ संबंधी अवैधानिक कार्यों से वहाँ की जनता थानेदार एवं सिपाहियों को वृक्ष से बाँधकर जला देती है।[64] थानेदार हरनारायण प्रसाद को लेने के लिए आयी भीड़ में कई लोग शामिल थे। इसका वर्णन करते हुए कथाकार कहते है - " थाना भरटोली के भरों और पृथ्वीपालसिंह और अशरफ़ुल्लाह खाँ के आदमियों ने घेर लिया था। न रहें होंगे तो कोई दो हज़ार आदमी रहे होंगे। ... ये लोग वह थे, जिनसे ड्योढ़ा लगान लिया था, जिनके खेतों का अनाज छीन लिया गया था, जिनसे जबरदस्ती वारफण्ड लिया गया था। जिनके भाई - भतीजे लड़ाई के काम आ गये थे या काम आनेवाले थे और जिनसे थाना क़ासिमाबाद कई पुश्तों से रिशवत ले रहा था। उनमें कोमिला चमार का बाप बाबूराम

चमार था - बल्कि बाबूराम चमार थे।"[65]

'आधा गाँव' में परूसराम चमार के माध्यम से अवसरवादी, जातिवादी, भ्रष्ट और विचारधारा तथा विवेक से रहित राजनीति विकसित होती है। परूसराम चमार कांग्रेसी राजनीति के उभरते हुए रूप को उसकी संभावनाओं और समस्त विघटन ग्रस्तता के साथ धारण करता है। फुन्नन मियां के साधारण से प्रश्न से कि उसने गांधी को अपना खलीफा कैसे मान लिया, परूसराम इस सीधे -सादे सवाल का कोई जवाब नहीं दे सका। गाँधी टोपी की लालसा ने ही उसे ऐसा मानने पर मज़बूर किया होगा। शायद उसे गांधीजी से अधिक इस टोपी की ज़रूरत थी जिसकी वजह से सरकारी लोग उससे डरने लगे थे, और जिसकी वज़ह से उसकी इज्जत और आमदनी दोनों बढ़ी थी।[66]

साप्रंदायिकता के विरोध में बोलने वाला परूसराम स्वंय इन साम्प्रदायिक परिस्थितियों का इस्तेमाल निजी स्वार्थपूर्ति के लिए करता है। वह हम्माद मियां के आदमी को निजी कारणों से हवालात में बंध करवाता है। परिणामतः परूसराम और हम्माद मियां एक दूसरे के विरूद्ध होकर अपनी उन्हीं शक्तियों का इस्तेमाल एक दूसरे को बर्बाद करने में करते है। इस प्रक्रिया में स्वातंत्र्योत्तर राजनीति का विघटित रूप व्यक्त होने लगता है, - " सारे गाँव में खलबली मच गयी। ऊँची जात के लोगों ने हम्माद मियां का साथ दिया। तिज़ारत-पेशा राक़ियों ने नीची जात के हिन्दुओं के साथ परूसराम का साथ दिया। .... कई खेत कटे। कई फौज़दारियाँ हुई।"[67]

निजी स्वार्थ की पूर्ति हेतु हिन्दु मुस्लिम एकता को खंडित करने की प्रक्रिया, राजनैतिक पार्टियों द्वारा सदियों से चली आ रही है। जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने गलत और भ्रामक राजनीति का प्रचार किया और पदों और अधिकारों के भूखे मुसलमानों ने इस राजनीति के सहारे अपने स्वार्थ सिद्ध किए। फुन्नन मियां के अनुसार-" आकिस्तान-पाकिस्तान पेंट भरन के खेल है।"[68]अब्बू मियां का का भीइस संबंध में यही कहता है कि - " इनके जिन्ना साहब त हाथ झाड़ के चले गए की हिआं के मुसलमान जाएं, खुदा न करें, जहन्नुम में। ई अच्छा रही। पाकिस्तान बने के वास्ते ओट दें हिआं के मुसलमान और जब पाकिस्तान बनें त जिनवा कहें की हिआं के मुसलमान जाएं चूल्हे-भाड़ में।"[69]

इसी प्रकार 'अलग-अलग वैतरणी' में करैता गांव में पैदा हुआ जगेसर, भ्रष्टाचार रोकने वाला समाज का रक्षक, थाने का सिपाही है। जब वह अवकाश में गांव आता है तो उसका भक्षक रूप सर्वत्र झलक पड़ता है। वह गाँव में जीविका के लिए भटकते हुए गरीब 'बायस्कोप' वाले को बुरी तरह

तिरस्कृत कर लूट लेता है। वह फरियाद करे भी तो किससे ? इस जगेसर के बाप देवी चौधरी ने गांव के सज्जन खलील चाचा की रेहन दबाकर भरी सभा में कहा - " अब काहे का रूपया, काहे का खेत ?"[70] भ्रष्ट वातावरण का यह ऐसा सघन दबाव है कि कोई उसके विरूद्ध मुहँ नहीं खोल पाता। सबको एक ही धुन है, लूट-पाटकर जल्दी बड़े आदमी बन जाए। इस जनतंत्र में दो तरफ़ा लूट-चक्र चल रहा है। तंत्र जनता को लूटता है और जनता तंत्र को लूटती है। करैता गांव के गुंडे यह जुलूस निकालते है और नारा लगाते हैं - " गुण्डागर्दी नहीं चलेगी।"[71]

शिवप्रसादसिंह जी ने करैता गाँव में भ्रष्टाचार के विविध आयाम को अत्यंत कुशलता से उज़ागर किया है। ज़ग्गन मिसिर बड़ी खरी, सटीक और स्पष्ट बात कहता है - " पहले गांव में जुलूम ज़मींदार के लोग करते थे। कारिंदा, सीरवाह, पटवारी, अमीन, कानूनगी सबकी मिली भगत थी। .... ज़मींदारी टूट गयी। .... जिन पर उस वक्त जुल्म होता था, वे ही आज ज़ालिम बन गए है। छुट भइये लोग दो पैसे के आदमी हो गए, तो आँख उलट गयी।. अब छुट भइये गोल बनाकर अपने से कमज़ोरों, गरीबों को सताते हैं। लूटते हैं। ..... ज़मींदार था तो एक खोल थी, जो कुछ होता था, उसकी खोल के साथ नत्थी कर दिया जाता था। इसलिए उस वक्त लड़ाई बड़ी साफ़ थी। अब किससे लड़े। अपने ही भीतर के लोग खोल ओढ़कर डाकू, लुटेरे और ज़ालिम बन बैठे हैं।"[72]

भारत सरकार ने ग्राम पंचायतों की व्यवस्था, गांवों में सुधारवादी दृष्टिकोण से की थी। करैता की पंचायत बनती है पर इससे न तो गाँव की पुरानी सुधारवादी धारा विकसित होती है और न प्रगतिशील तत्त्व पनपते है। गाँव दुर्भाग्यवश प्रतिगामी शक्तियों के हाथों में चला जाता है। इस संबंध में जग्गन मिसिर का कहना है कि " पंचायतें साली बिल्कुल गुण्डागोल करती है। वहाँ भी नियाव की आशा करना पत्थर पर माथा पटकना ही है।"[73] वास्तव में शिवप्रसाद ने इस उपन्यास के अन्तर्गत पंचायत प्रकरण को भारतीय प्रजातंत्र के प्रतीक के रूप में बुना है जिससे उसकी समस्त दुर्बलताएँ स्पष्ट हो उठती है।

जातिवाद का प्रभाव गांव की राजनीतिक स्थिति को प्रत्यक्षतः प्रभावित करती है। जातिवादी आधार पर राजनीतिक चेतना संगठित होती है - " सुखदेव राम की अलग पाल्टी है। वह देश - देहात का सबसे बड़ा कांगरेसी नेता है। पिछली बार चुनाव में हार गया तो इससे क्या। पूरी जादव पाल्टी, गोंड, कँहार, दुसाध, कोइरी-काछी सब उसको वोट देंगे? कहीं सुखदेव राम और सुरजू मिल जाए, तब तो और क्या कहना? कौन जाने मिल ही जायँ।"[74]

'अलग-अलग वैतरणी' में स्वातंत्र्योत्तर काल में विघटन के अंग के रूप में राजनीतिक स्थितियों यहाँ आई है चाहे वह ग्रामीण समाज की दलबंदी हो या पंचायत में ग्राम सभापति के चुनाव का प्रसंग। भूतपूर्व ज़मींदार जैपालसिंह सभापति न होकर भी सभापति है। इनके चित्रांकन द्वारा सम्पूर्ण पंचायत राज का खोखलापन उजागर हो जाता है। वे स्वंय अपने न चुने जाने की स्थिति में छोटी जात के हरिजन सुखदेव राम को अपने समर्थकों का वोट दिला देते हैं, और अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं सभापति बन जाते हैं। इस संबंध में कथाकार का कहना है कि - " वह सुखदेव के माध्यम से गांव के लोगों पर अपनी राजनीतिक सत्ता का नियंत्रण रखते है परिणामतः " जाहिरा तौर पर सुखदेव ही पंच था पर फैसले ठाकुर की मर्जी से होते थे। गांव वालों के एक फायदा ज़रूर हुआ था कि मामूली से मामूली जुर्म के लिए पहले से दूनी सजाएँ मिलने लगीं क्योंकि करैता में अब एक नहीं दो पंचों का राज था।"[75] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गांवों में वैमनस्य को बढ़ाने और पार्टी बंदी को प्रोत्साहन देने में ग्राम पंचायतों का बहुत बड़ा हाथ है।

स्वतंत्रता के पश्चात् चुनाव के स्तर में निरंतर गिरावट दिखाई पड़ती है। वयस्क मताधिकार प्राप्त होने के कारण पद-दलित जन -जातियों के बीच अधिकार - बोध को जगाया है लेकिन दुर्भाग्यवश वोट खरीदने और बेचने का व्यापार चल पड़ा है। वोटरों को तरह तरह के प्रलोभन दिए जाते है जिससे चुनाव जीतने में आसानी हो। सरजूसिंह भी यही करते है - " मतदाताओं को गली से आते देखकर ये सब उनके पास जाते मुस्कराते। साथ - साथ लाकर आदर के साथ दरी पर बिठाते। ..... दरी के पास एक ऊँचे स्टूल पर बड़ी सी थाल में पान, बीड़ी, सिगरेट वगैरह सजे थे। " हरी भाई।"
सुरजू सिंह ने आहिस्ते से पुकारा - " जरा पान-सिगरेट भी चलता रहे। चमरौटी के वोटरों पर खूब खियाल रखना।"[76] करैता के समाज में राजनीति का यह विघटित रूप वृहत्तर संदर्भ में राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे मूल्यविघटन और स्वार्थी तथा भ्रष्ट राजनीतिक परिवेश का अंग प्रतीत होता है।

ग्राम-समाज में पंचायत का बहुत बड़ा स्थान होता है। ग्रामीण जनता भी पंचायत के कार्यक्रमों को पूरा सहयोग देती थी। व्यक्ति -व्यक्ति, व्यक्ति -परिवार, परिवार -परिवार,परिवार -समाज आदि से संबंधित सभी मामलों में निर्णय लेने का अधिकार पंचायत को है। यदि पंचायत में निर्णय नहीं होता तो पुलिस, अदालत आदि की शरण में लोग जाते थे। इसलिए न्याय निर्णय की प्रथम एवं मज़बूत सीढ़ी पंचायत है। दुर्भाग्यवश भ्रष्टाचार की कुप्रवृत्ति ने ग्रामीण समाज में अपनी जड़े इस तरह फैला रखी है कि आदमी

का, पुलिस पंचायत आदि से विश्वास उठ चुका है। इस संदर्भ में सुखदेव राम की जगेसर से कही गई ये बातें ठीक ही प्रतीत होती है - " अभी एक पखवारा पहले फेरू सिंह का बैल खूंटें पर से गायब हो गया। मैंने कहा, बाबू साहब रपट करा दो। पंचायत में भी, थाना में भी। बोले, ई सब उपदेश किसी गँवार - बेवकूफ़ को दीजियेगा। बैल तो गया ही, सौ - पचास से पुलिस - दरोगा को टेंट भी गरम करें ? दस पाँच सभापति और सरपंच को भी दें ? मुझे मालुम है कि बैल कहाँ गया। पुलुस-थाना में जाकर और जी हलकान करें ?[77]

भारत सरकार ने पुलिस की व्यवस्था आम जनता की रक्षा के लिए की थी। परतुं ग्रामीण अंचलों में पुलिस भ्रष्टाचारी एवं अनैतिक आचरणों को बढ़ावा देने वाली है जिसका प्रमाण हमें रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ', आंचलिक उपन्यास में मिलता है। सुखराम पुलिस के व्याभिचारी स्वरूप को उज़ागर करते हुए कहता है कि - " मेरे पड़ौसी करनट खूबमस्त रहते, क्योंकि वे मेरे साथ थे, और रूस्तमखाँ की दया थी, उनसे कोई कुछ न कहता, बल्कि दरोगाजी को ज़रूरत पड़ती तो इनमें किसी को बुला लेते और सिपाहियों के जरिये समझा - बुझाकर बनियों की चोरी करवा देते। माल बंट जाता। गाँव बाहर चामड़ के पीछे जुए का भी एक अड्डा पुलिस ने बनवा दिया था, जिसकी नाल का तीन- चौथाई दरोगाजी के हाथ में जाता था। ..... किसानों और कास्तकारों से खूब पैसे ऐठंता था। कितनों को ही उसने फौज़दारी की मामूली बातों में थानों में सड़ाया। एक के खून निकल आया, पर उसने दूसरी तरफ़ के लोगों से रिश्वत लेकर रपट नहीं लिखी।"[78]

इसके अलावा पुलिस करनट जाति की स्त्रियों का यौन शोषण करते हैं उन्हें जब-तब उठा ले जाते है, उन्हें बीमारियाँ देते हैं। सुखराम नट भ्रष्ट पुलिस के संबंध यह कहता है कि - " वह घूँस लेता है। गांव के लोग उससे डरते हैं। वह बड़ी जातों में उठता - बैठता है। वह जिधर जाता है उधर ही नट दौड़कर छिप जाते हैं। हम तो यही देखते आ रहे थे कि चाहे जब चाहे जिस नटनी, कंजरिया को पकड़ ले जाता है। ...... एक बार एक सिपाही से एक नटनी को कोई बीमारी लग गई थी। उसका इलाज बड़ी मुश्किल से हुआ था, सो भी किया था इसीला ने रूखड़ियों से।"[79]

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अलावा डॉ० विमल शंकर नामर कृत हिन्दी के आंचलिक उपन्यासः सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ के आधार पर नागार्जुन के 'बलचनमा', 'वरूण के बेटे', रजिन्द्र अवस्थी के 'जंगल के फूल', सच्चिदानंद धूमकेतु के 'माटी की महक', डॉ० रामदरश मिश्र 'जल टूटता

हुआ' और 'पानी के प्राचीर' आदि आंचलिक उपन्यासों में राजनैतिक मूल्यों में आई गिरावट के कई प्रसंग देखे जा सकते है।

आधुनिक समय में प्रत्येक राजनीतिक पार्टी की शाखा गाँवों में मिल जाती है। ग्रामीणों के विचारों को सही व गलत दिशा देने में इन राजनीतिक पार्टियों का प्रमुख हाथ रहता है और राजनीति का सत् व असत् प्रयोग कार्यकत्ताओं पर निर्भर करता है। 'नोई बोई जाए' में कनकेश्वर फुकन जैसे स्वार्थी, ईष्यालु, लोभी के हाथों में पड़कर राजनीति मैलापन का पर्याय बन जाती है। आज़ादी के पश्चात् हमारे देश में सर्वत्र ढोंगी, आडम्बरी, अवसरवादी एवं भ्रष्ट नेताओं की बाढ़ आ गई है। भगीरथ फुकन अपने बेटे का उदाहरण देते हुए इस संबंध में कहता है कि - " हमारे कनकेश्वर जैसे खादी कपड़े पहनने वाले नेतागन इस परिस्थिति के जिम्मेदार है। स्वाधीनता मिलते ही सुख-सुविधाओं को बटोरने में लग गए। अपनी पहुँच के बल पर, उसने सभी रिश्ते-नातेदारों के बीच भौतिक सुविधाओं का बँटवारा कर दिया।पहले समय के नेतागण वास्तव में समाज के सेवक थे, जो आसानी से तुष्ट हो जाते थे।"[80]

स्वातंत्र्योत्तर और तत्कालीन राजनीति का यह यथार्थ्र सेंदुरीपाम गांव की स्थानीय जड़ता में गतिशील होकर मानवीय स्थितियों के अनेक अंतविरोधों को खोलता है। राजनीति यहाँ उभरते हुए नेता के लिए विचार शून्य माध्यम है, प्रतिष्ठा के और भौतिक सुविधाओं के सोपान चढ़ने का। राजनीतिक माध्यम से ही अपने निजी जीवन के बदलने की गति और उसकी तीव्रता का अनुमान करता है।

इसी प्रकार 'कपिली परिया साधु' में भी निजी स्वार्थ और अवसरवादिता की चपेट में किस प्रकार आम जनता छटपटाती रहती है इसका बड़ा ही ह्रदयस्पर्शी वर्णन मिलता है। बाढ़ एक सार्वजनिक आपदा है जो कभी भी, कहीं पर भी आ सकती है। कपिली नदी का जलस्तर जब सामान्य से अधिक हो जाता है, तब उसमें बाढ़ आ जाती है और वहा के निवासियों का जीवन अस्त - व्यस्त हो जाता है। ऐसी विषम परिस्थितियों से राहत पहुँचाने के लिए सरकार द्वारा कुछ सहायता रिलिफ दलों के रूप में, बाढ़ पीड़ितों के लिए भेजी जाती है। परंतु हमारे देश की विडम्बना यह है कि भ्रष्टाचार का जाल इस हद तक फैला हुआ है कि राहत सामग्री ज़रूरत मंदों के पास न पहुँचकर बीच रास्ते में ही गायब हो जाती है।

बाढ़ प्रकोप की इस संवदेनशील घटना से दुखी होकर मिस्टर पिल्लई अपनी पत्नी को रिलिफ दलों द्वारा दी जाने वाली सहायता किस प्रकार स्वार्थी, ह्रदयहीन तत्त्वों द्वारा बीच रास्ते में ही आत्मसात कर ली जाती है विषय पर पत्र लिखते हुए कहते है कि - " जागीरोड को जो कम्बल भेजी गई थी उसका

कोई अता-पता ही नहीं है। .... पंजाब से भेजी गई साड़ियाँ बाढ़ में कष्ट भोग रहे लोगों तक नहीं पहुँची। उस दिन जेलखाने के ठेकेदार ने जो कम्बल दिए थे, उसके बीच में रिलिफ दल का कम्बल भी मौजूद था ऐसे होते है मनुष्य। मनुष्य इतना हृदयहीन हो सकता है, हैरानी की बात है। ...... यदि मैं खुद जाकर रिलिफ की चीज़ें लोगों तक न पहुँचाऊ तो कई वकील लोग उसका लाभ उठायेंगे। ...... उस दिन एक आफिसर के घर के परदों को मैं पहचान गया।"[81]

इस प्रकार सामूहिक रूप से स्वार्थपरता, बेईमानी, भ्रष्टाचार में डुबा हुआ मनुष्य लगातार विघटन की ओर अग्रसर हो रहा है। देश निराशा, अनिश्चितता और भविष्य के भय से आक्रांत तथा नियतिवादी हो गया। अतः यह कहना समीचीन होगा कि राजनीति का जो रूप स्वातंत्र्योत्तर काल में ग्रामीण क्षेत्रीयता और पिछड़ेपन के बीच जातिगत गुटबंदी की पृष्ठभूमि में विकसित होता है, वह अपनी प्रकृति और परिणाम में विघटनशील और अमानवीय है।

इन प्रमुख असमिया आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त, होमेन बरगोहाई के 'हालधीया चराए वाऊ धान खाय', लक्ष्मीनंदन बरा के 'गंगा शिलनीर पाँखी' आदि आंचलिक उपन्यासों में भी राजनैतिक मूल्यों में आई गिरावट की चर्चा मिलती है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अध्ययन के पश्चात् यह बात स्पष्ट है कि वर्तमान संदर्भ में राजनैतिक मूल्यों व आस्थाओं का विघटन हुआ है। भारतीय जीवन उच्छृंखलता, खोखलेपन एवं अनास्था से कुंठित हो गया है। राजनीति से सम्बद्ध मानवीय और सामाजिक ज्वलंत प्रश्नों का खो जाना राजनीति के संस्थागत रूप की विसंगति है। राजनीति के द्वारा सामूहिक हित का प्रयोजन कहीं दूर छूट गया है। असमिया आंचलिक उपन्यासों की तुलना में, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में राजनीति का भ्रष्ट रूप अधिक मात्रा में दिखाई देता है। हिन्दी के अधिकांश आंचलिक उपन्यासों जैसे 'मैला आंचल', 'आधा गाँव', 'अलग-अलग वैतरणी' में भ्रष्ट राजनीति का घिनौना रूप दिखाई देता है। भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय राजनीतिक दलों व शक्तियों की कुंठित मानसिकता का विस्तृत विवरण इन में मिलता है। राजनैतिक मूल्यों में आई इस गिरावट ने देश को जर्जर बना दिया है। इसके विपरीत असमिया आंचलिक उपन्यासों जैसे 'कपिली परिया साधु', 'नोई बोई जाए' में राजनीति का भ्रष्ट एवं उच्छृंखल स्वरूप कम मात्रा में दिखाई पड़ता है।

आर्थिक चेतना

भारतीय अर्थ व्यवस्था की बुनियाद गाँव है। गाँव में ही भारत की गरिमामय सांस्कृतिक विरासत पनपती है। ग्रामीण जीवन की सांस्कृतिक और सामाजिक उन्नति और अवनति का मूल आधार अर्थ है। भारत की आर्थिक व्यवस्था मुख्यतः कृषि पर निर्भर है। रोजी-रोटी के लिए आज भी ग्रामीण लोग खून-पसीना एक कर देते हैं। स्वतंत्रता से पूर्व काल, किसानों के लिए एक प्रकार से संघर्ष काल था। किसान, सामंत और महाजनी सभ्यताओं से शोषित हो रहा था, इसलिए वह इनसे संघर्ष कर रहा था। इन शोषकों की सहायता करने वाले सरकारी कर्मचारी भी गाँवों के लिए अभिशाप थे। ब्रिटिश शासन के अत्याचार, दमन, दुर्व्यवस्था, भेदभावमूलक नीति के कारण कृषक तबाह हो रहा था। लेकिन स्वतंत्रता- प्राप्ति के पश्चात् भारतीय कृषक की स्थिति में परिवर्तन आया है। सरकार ने कृषि पर निर्भर करने वाले कृषक - काश्तकारों की ओर ध्यान दिया और गांवों की अवस्था सुधारने के प्रयत्न किए है।

नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप नवीन कृषि- रीतियों का प्रचार-प्रचलन संभव हुआ है। फिर भी, ग्रामीण लोगों के दकियानूसी विचार तथा अशिक्षा के कारण नवीन कृषि- रीतियों को अपनाने में वे विमुख रहते हैं। सरकार की ओर से अनेक कार्य, कृषि की प्रगति के लिए किए गए है। इनके जरिए जमींदारी उन्मूलन, कृषि-भूमि पर काश्तकारों का पूर्णाधिकार, कृषि- भूमि का सीमा निर्धारण, खेतीबाड़ी के लिए बैंकों द्वारा अनुदान, कृषकों को प्रशिक्षण देने का कार्य, सिंचाई की सुविधा आदि में सरकार का ओर से किए गए कार्य प्रशंसनीय है। अंचलों में इनका प्रभाव द्रष्टव्य है। हिन्दी और असमिया आंचलिक उपन्यासों में पुरानी और नई आर्थिक व्यवस्थाओं एवं उनसे संबंधित परिस्थितियों का चित्रण खूबी से हुआ है।

व्यवसाय

कृषि एवं उद्योग धंधे भारतीय अर्थ-व्यवस्था की मूल धूरी है। भारत एक कृषि - प्रधान देश है। यह सर्वविदित है कि भारतीय गांवों में खेती प्रायः मानसून पर निर्भर करती है और साल के छः महीने ग्रामीण खाली रहता है। ग्रामीण अंचलों की खेती-बाड़ी ही कृषकों का प्रमुख व्यवसाय है। यही इनकी रोज़ी-रोटी का प्रमुख साधन है। अतः ग्रामीण जन खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए कृषि-कार्य में वैज्ञानिक यंत्रों, खादों और प्रविधियों का उपयोग करते है। नवीन कृषि - प्रणालियों के द्वारा उत्पादन में वृद्धिकर कृषक अपने आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

'मैला आंचल' का सुमरितदास गांववालों को मेरीगंज में लगाए गए पम्प सेट के बारे में कहता है कि - " पानी का पम्प आवेगा। इन्दर भगवान की ख़ुशामद की ज़रूरत नहीं। कमला नदी में पम्पु लगा दिया। मिसिन इस्टाट कर दिया और हथिया सूड़ँ की तरह सब पानी सोखकर खेत पटर देगा।"[82] किसानों में नवीन किस्म के खाद, बीज, मशीन, आदि का भी प्रचार हो रहा है जिससे उत्पादन में अधिक से अधिक वृद्धि हो सके। टैक्ट्रर के बारे में मेरीगंज गांव के बेतार का कहना है - " उसी में सबकुछ होगा, हल चलेगी, विधा कोड़कमान, कादी-गोरा ओर धनटनी भी। आदमी की कया जरूरत।"[83]

कुटीर उद्योग आंचलिक जीवन में व्याप्त बेकारी का बहुत बड़ा समाधान है। यह व्यवसाय सामान्यतः श्रमिकों के घरों पर ही चलाया जा सकता है। इसकी उत्पत्ति स्थानीय मांग की पूर्ति करने में सहायक होती है। मेरीगंज में चरखा सेंटर खुल जाता है। इसकी महत्ता को स्पष्ट करते हुए शिवनाथ चौधरी कहते है कि यदि घर का एक-एक व्यक्ति चरखा चलाने लगे तो गाँव से गरीबी दूर हो जाएगी, अन्न वस्त्र की कमी नहीं रहेगी। .... मास्टनी औरतों से कहती है, " चरखा हमार भतार-पूत, चरखा हमार नाती, चरखा के बदौलत मोरा दुआर झूले हाथी।"[84]

इसके अलावा फुलिया जैसी स्त्रियाँ भी है जो आर्थिक दबाव के कारण देह व्यापार में सलंग्न है और यही उसकी रोजी-रोटी कमाने का प्रमुख जरिया है। फुलिया के माँ-बाप अपनी विधवा बेटी का पुनर्विवाह इसलिए नहीं करते, क्योंकि उसका शरीर नोंचकर प्राप्त धन से ही उनकी गृहस्थी की गाड़ी चलती है। इस संबंध में रमजुदास की स्त्री का कहना है कि - " .... अरे फुलिया की गाये। तुम लोगों को न तो लाज है और न धरम। कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारीवाली साड़ी चमकाओगी ? आखिर एक हद होती है किसी बात की। मानती हूँ कि जवान बेवा बेटी दुधार गाय के बराबर है। मगर इतना मत दुहो कि देह का खुन भी सूख जाए।"[85]

'कब तक पुकारूँ' में बेज़मीन और बेघर जरायम पेशा करनटों का जीवन चित्रित है। इस जाति के पुरूष खेल तमाशे दिखाते और जड़ी-बूटियाँ बेचते तथा गाँव-गाँव घुमते हुए खानाबदोश जीवन जीते हैं। सुखराम भी गाँव में जाकर शहद बेचता है, कभी डांग में दवा-दारू कर लेता है। कजरी जाकर सूप बेच आती है। " नट मौका पड़ता, भीख मांगते, या गांव के ठाकुरों के यहाँ शहद पहुँचाते। वे दवाईयाँ बनाते।"[86] यहीं इनका प्रमुख पेशा है । सूसन जब कजरी से यह पूछती है कि नट क्या काम करते है तो जवाब में वह कहती है कि - " बस खेल करते हैं, इधर-उधर, शिकार मार लेते है। शहद बेचते है,

औरतें खेल करती है। पर जाने क्यों वह नहीं कह सकी कि औरतें पेशा करती है और फिर भी इसीसे मर्द उनकी इज्जत करते हैं। जितनी जवान होगी उतनी ही उसकी कदर भी होगी।"[87]

इसके अलावा हिरन की खाल बेचना, ढोल मढँना आदि भी इनका प्रमुख व्यवसाय है। उपन्यास का एक अन्य पात्र चंदन प्रसिद्ध टोनेबाज था, जो जादु-टोने के अलावा पशु पालने का भी व्यवसाय करता था, इस संबंध में कथाकार लिखते है कि - " सूअर पालना उसका धंधा था। उनके बाल बेचता। कुछ नट भी उससे खरीद ले जाते और बड़े कस्बे ले जाते जहाँ से इकट्ठा होकर वह सब माल शहरों में चला जाता जहाँ से वे बाल विलायत के कारखानों में चले जाते।"[88]

नट जाति समाज की उपेक्षित ओर शोषित जातियों में से एक है। अतः समाज में उनका स्थान न के बराबर है। कोई उन्हें काम नहीं देता। इनकी स्त्रियाँ रात के अँधेरे में कुलीन व उच्च्य वर्ग को अपना शरीर बेचकर पैसा कमाती है। आर्थिक दबाव के कारण स्त्रियाँ स्वेच्छा से देह व्यापार का व्यवसाय करती है। इस संबंध में प्यारी की माँ सोनो उससे कहती है कि - " औरत का काम औरत का काम है। उसमें बुरा-भला क्या ? कौन नहीं करती ? नहीं तो मार-मार कर खाल उड़ा देगा दरोगा। और तेरे बाप और खसम दोनों को जेल भेज देगा। फिर कमेरा न रहेगा तो क्या करेगी ? फिर भी तो पेट भरने को यही करना होगा ?"[89]पुलिस वाले भी अपनी हवस पूरी करने के लिए इन्हें जब तब पकड़ ले जाते हैं। प्यारी सुखराम को पुलिस के चुंगल से बचाने के लिए दरोगा के साथ रात गुजारती है तथा रूस्तम खाँ की रखैल बनना इसलिए स्वीकार करती है, ताकि पुलिस वाले सुखराम को नहीं सतायेगे और नटों को बेवज़ह पकड़ कर थाने में बंद नहीं करेंगे। आर्थिक तंगी की मार झेल रही कजरी, सुखराम से ठीक ही कहती है कि - " सुखराम, दुनिया में पेट झुल्म कराता है। और जहाँ दो दाने पड़े तो देही गरमा जाती है, फिर तो उड़ने की सूझती है।"[90]

पूर्वी उत्तर-प्रदेश के करैता ग्राम की पृष्ठभूमि पर आधारित आंचलिक उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' में अधिकांश ग्रामीण कृषक खेती से प्राप्त आय पर ही निर्भर करते है।यहीं उनका प्रमुख व्यवसाय है। इसी आय से उनके घर का चुल्हा जलता है और खाने के लिए दो वक्त की रोटी नसीब होती है। परतुं सुखा, अकाल, अतिवृष्टि और आर्थिक शोषण का शिकार किसान एक ऐसे सर्वव्यापी विघटनशील चुंगल में फँस गया है जहाँ से उसकी मुक्ति अत्यंत कठिन है। किसानों को वर्ष भर खाने

को अनाज मिलते रहे इसी बात को केन्द्र में रखकर मिसिर चाचा, छबिलवा से कहते है कि - " अगहन में चार मनधान है। जाय तो ऐसे जुगुत से खरचो-खाओ कि चैत भेंट ले, और चैत में चार मन गेहुँ चना हो तो ऐसी कंजूसी - कटौती बरतो कि अगहन ठेक जाय। यही है फसल- भेंट पाल्टी।"[91]

जिन किसानों के पास अपनी भूमि नहीं है, वे ज़मीदारों के यहाँ पर मज़दूरी का कार्य करते है और इसी से उनकी गृहस्थी की गाड़ी चलती है। खेतिहार श्रमिक झिनकू, छोटे ज़मीदार वंशी सिंह के खेतों पर मज़दूरी का काम करता है, परंतु विडम्बना यह है कि दो वक्त रोटी जुगाड़ करना भी उसके लिए भारी पड़ता है। वह अपने मालिक और स्वयं की आर्थिक स्थिति के संबंध में बताते हुए कहता है कि - " हूँ ऊ का जानेंगे ? अपने तो दोनों जून दाल-रोटी चाब लेते हैं। जिसका पेट भरा होता है, उसका गाल बहुत बजता है।........ आदमी जांगर पीटता है, पसीना बहाता है, काहे को ? इसलिए न की लड़का पानी को दोनों जून रूखा-सूखा पेट भरने को मिल जायेगा। इहाँ तो हाँड-तोड़ के काम भी करो, तो भी मुँह में दाना मुअस्सर नहीं होता।"[92]

खलील मियां की पत्नी अपने परिवार का पेट भरने के लिए केवल फसलों से प्राप्त आय पर निर्भर न होकर, पैसे कमाने के अन्य साधनों को अपनाती है। वह कहती है कि - " फसल के आसरे रहे तो खाना मुअस्सर न हो। औरतों की ब्लाउजें, लड़कों के गुलबंद स्वेटर सिल-बुनकर किसी तरह रोटी जुटाती रही हूँ। ऐसी फसल से तो बिना खेती भला।"[93]

चमारिन सुगनी का बुझारथ सिंह के साथ संबंध और राजपूत सुरजू सिंह के साथ पकड़े जाने की घटनाओं में आर्थिक विषमता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। सुगनी अपना जिस्म बेचकर उससे प्राप्त आय से अपने परिवार का भरन -पोषण करती है। यही उसका पेशा है। चौधरी सरूप भगत इस आर्थिक विषमता को लक्ष्य करते हुए कहता है कि - " ई कैसा परेम है भाई। आज तक किसी राजपूत - बाझन की लड़की के साथ चमार - दुसाध का प्रेम काहे नहीं हुआ ?" इस काहे का उत्तर आर्थिक समस्याओं के साथ बड़ी गंभीरता के साथ जुड़ा हुआ है।[94]

पूर्वी उत्तर प्रदेश के शिया मुसलमानों के 'गंगौली' ग्राम की पृष्ठभूमि पर आधारित आंचलिक उपन्यास 'आधा गाँव' में ज़मींदारी उन्मूलन के पश्चात् ज़मीदार फुस्सू मियां इमामबाड़े के कमरे में जूतों की दुकान खोल लेते हैं जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक समृद्धि उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा भी देती है। और यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि बदली हुई परिस्थितियों में सामाजिक प्रतिष्ठा का संबंध जाति,

हड्डी और खानदान से न होकर आर्थिक समृद्धि से है। अब यही दुकान उनकी रोजी-रोटी का प्रमुख साधन है। इसी प्रकार ज़मींदार पुत्र मिगदाद भी ज़मींदारी खत्म होने के पश्चात् खेती-बाड़ी के काम में लग जाता है और उससे प्राप्त आय से घर का खर्च चलाता है। वह एक आम किसान की मानसिकता वाला है - " हम ना जाये वाले हैं कहीं। जाये ऊ लोग जिन्हें हल-बेल से शरम आती है। हम त किसान है, तन्नू भाई। जहाँ हमारा खेत, हमारी ज़मीन तहाँ हम।"[96]

इसी प्रकार गाँव के जुलाहे दिन रात कपड़ा बुना करते है और यही उनकी आजीविका का प्रमुख साधन है। युग-युग से उपेक्षित गांव के जुलाहे अपने करघों पर कपड़े बुनकर दिन- पर- दिन सम्पन्न होते जा रहे है। - " दोतरफ़ा मकानों से करघों की आवाजें आ रही थीं - खट ! खट! जुलाहे कमर ज़मीन - दफन गाढ़े के थान, गमछे और लुंगियाँ बुनने में जुटे हुए थे।"[97] फुन्नन मियां को अपना सारा आभिजात्य गर्व त्याग कर चमार परूसराम एम.एल.ए से दोस्ती करके अपनी रोज़ी - रोटी चलानी पड़ती है।

'सागर, लहरें और मनुष्य' में बरसोबा के तट पर बसने वाली कोली जाति के लोगों का सम्पूर्ण जीवन समुद्र से मछली पकड़ने एवं बेचने पर निर्भर करता है। ये मछुआरे अपना जीवन खतरे में डालकर समुद्री तूफ़ानों से घिर कर मछलियाँ पकड़ते है और बाज़ार में जाकर बेचते हैं। " बहुत पहले समय से इन कोलियों का पेशा दूर-दूर समुद्र से मछलियाँ मारना रहा है।"[98] यही उनकी आजीविका का प्रमुख साधन है। बिचौलिए द्वारा इनका शोषण होता है और उन्हें श्रम की उचित कीमत नहीं मिलती। माणिक भी एक मज़दूर की तरह मछली पकड़ने और बेचने का कार्य करता है जिसके फलस्वरूप उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार आने लगता है। उदयशंकर भट्ट जी का इस संबंध में कहना है कि - " माणिक को मांगा की मछलियाँ बेचने को मिल गई। धीरे - धीरे वह एक छोटा - मोटा आढ़ती बन गया।........ माणिक ने अपनी पुरानी झोपड़ी संभाली। उसके भीतर पक्का फर्श बन गया। चटाई की जगह शीतलपाटी आ गई। एक स्टोव, कुछ अल्यूमिनियम के बरतन और लालटेन से झोपड़ी चमक उठी। चीथड़ों की जगह साफ़ कपड़ों ने ले ली।"[99]

इस प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अलावा, डॉ० विमल शकंर नागर कृत 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यासः सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ के आधार पर नागार्जुन कृत 'बलचनमा', 'वरूण के बेटे', डॉ० श्याम परमार के 'भौरझाल', योगेन्द्रनाथ सिन्हा के 'वन - लक्ष्मी', 'वन के मन में', राजेन्द्र अवस्थी के 'जंगल के फूल', 'सूरज किरण की छाँव' आदि आंचलिक उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण जनों का प्रमुख

व्यवसाय का वर्णन मिलता है जिनमें खेती के अतिरिक्त मछली पकड़ने एवं जंगली जानवरों का शिकार करने एवं अन्य उद्योगों के वर्णन उपलब्ध है।

'कपिली परिया साधु' में कपिली नदी के किनारे बसे गांववालों की आजीविका का प्रमुख साधन खेती-बाड़ी से प्राप्त आय है। रूपाइ भी खेती करता है और उसकी दादी सूत काटती है तथा माँ रंगीली कपड़ा बुनती है - " रूपाइ ने खेत खलिहानों की तरफ़ ध्यान दिया। कपिली भी शांत है। बुढ़ी दादी सूत काटती है, रंगीली कपड़े बुनती है।"[100]

गाँव के किसान खेती की सिंचाई के लिए प्रकृति पर निर्भर है। कपिली नदी सिंचाई के लिए जल प्रदान करती है जिसके फलस्वरूप खेती-बाड़ी लहलहाने लगती है। लेकिन जब कभी कपिली नदी में बाढ़ आती है, तो लोगों की खेती - बाड़ी डूब जाती है। फलस्वरूप अन्न का उत्पादन नहीं हो पाता और लोगों को भूखमरी का सामना करना पड़ता है। ऐसी विषम परिस्थितियों में आर्थिक दबाब झेलने वाले ग्रामीणों को रिलिफ दलों द्वारा मदद पहुँचाई जाती है।[101]यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि कपिली नदी ही ग्रामीण जनों की आर्थिक सम्पन्नता एवं विपन्नता की उत्तरदायी है।

'कईनार मूल्य' में आदि समाज के अधिकांश लोग 'झूम खेती' को प्रमुखता देते है। झूम खेती स्थान बदल - बदलकर की जाती है। इस संबंध में कथाकार लुम्मेर दाई का कहना है कि - " कुछ वर्षों के अंतराल पर एक ही जगह पर झूम खेती की जाती है। उदाहरणस्वरूप किसी -किसी जगह पर पाँच वर्ष के अंतराल पर और किसी-किसी जगह पर दस ग्यारह वर्ष के अंतराल पर।"[102] ग्रामीण जन खेती-बाड़ी से प्राप्त होने वाली आय के सहारे ही अपने गृहस्थी की गाड़ी चलाते है। यही उनका प्रमुख व्यवसाय है। कारगुम भी झूम खेती से प्राप्त होने वाली आय के सहारे अपने समस्त परिवार का भरन-पोषण करता है। इसके अलावा 'मैथोन' नामक जानवर का पालन-पोषण करना भी ग्रामीण जनों की प्राथामिकता और व्यवसाय है। विवाह पर्व के उपलक्ष में, अन्य वस्तुओं के साथ मैथोन नामक जानवर का आदान -प्रदान, आदि समाज में लोगों की आर्थिक स्थिति और समाज में उनकी मर्यादा का सूचक है।"[103]अतः मैथोन के पालन पोषण पर अधिक ध्यान दिया जाता है। गांववाले अपने -अपने मैथोनों की पहचान हेतु उनके कान में चिन्ह देते है जिससे की उनको आसानी से पहचाना जा सके।

इसी प्रकार 'मिरि जियरी' में भी ग्रामीण जनों का प्रमुख व्यवसाय कृषि से प्राप्त आय ही है। घुनासुती गाँव के अधिकांश लोग सोवणशिरी नदी के दोनों किनारों पर खेती का कार्य करते है। पहले

एक किनारे पर मिरि गाँव था और दूसरे किनारे पर जंगल था। जिसे लोगों ने खेती के लिए उपयुक्त भूमि बना ली। कारण, खेती ही प्रमुख रूप से आजीविका का साधन है।

कृषि प्रधान समाज में ग्रामीण जनों का आर्थिक आधार खेती से प्राप्त आय ही है। वह प्रकृति पर इतना निर्भरशील है कि उसकी आर्थिक स्थिति मंथर गति से आगे बढ़ती है। खेती के परम्परागत पद्धतियों के ऊपर निर्भर होने के कारण भगीरथ फुकन की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं है। कभी बाढ़ का प्रकोप, तो कभी जंगली जानवरों के आतंक से खेती नष्ट हो जाती है। 'नोई बोई जाए' में भगीरथ को भी इन्हीं तकलिफ़ों का सामना करना पड़ता है। इस संबंध में वह कहता है कि - " पिछले साल, भादो महीने में बर-लुईत नदी में बाढ़ आने के कारण धान की पैदावार नष्ट हो गई। भादो और अश्विन महीने में जितनी भी धान की खेती की गयी थी, उसे भी जंगली जानवरों ने नष्ट कर दिया। यदि पुराना अनाज जमा करके नहीं रखा होता तो, मांग के खाने की नौबत आ जाती।"[105]

'नोई बोई जाए' में अधिकांश जनमानस का प्रमुख व्यवसाय खेती है। इसके अलावा भगीरथ फुकन धान तथा दूध बेचने का कार्य भी करता है। यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो घर में पैसे की तंगी बनी रहेगी। - " धान और दूध की बिक्री न करने पर, पैसे की शक्ल तक नहीं दिखती। ....तेल - नमक, कपड़े -लट्ठे खरीदने के लिए पैसे का अभाव बना रहता है।"[106] भगीरथ फुकन अपने काम का व्यौरा देते हुए कहता है कि - "मुझे हल चलाकर खेती करना पड़ता है, मुगाँ पालना पड़ता है, गन्ने का रस निकालना पड़ता है।"[107]

इसके अलावा भगीरथ फुकन अपने दोस्त हाटी बरूआ के साथ मिलकर जंगली हाथियों को पकड़कर बेचने का व्यवसाय भी करता है।[108] खेती से प्राप्त आय से घर का खर्च चलाना अत्यंत मुश्किल पड़ता है, इसलिए ग्रामीण जन अन्य व्यवसायों की ओर भी आकर्षित होते है। 'नोई बोई जाए' में इस बात के संकेत मिलते है कि वर्तमान समय में, खेती से प्राप्त आय से गृहस्थी का बोझ उठाना असंभव सा प्रतीत होता है। इस संदर्भ में भगीरथ फुकन का कहना है कि - " पहले पांचमहीने खेती करके भी सातमहीने बैठकर खाते थे, अब सातमहीने मेहनत करके भी पांचमहीने खाने को पूरा नहीं पड़ता।"[109]

'रंगमिलीर हाँही' में कारबी जनमानस का आर्थिक आधार झूम खेती है। झूम खेती कृषि का अत्यंत परम्परागत तरीका है। गांव की मुख्य पैदावार धान, सरसों है। इसके अलावा आलू, अरबी, जिमीकंद आदि का उत्पादन भी किया जाता है। खेती से प्राप्त धन ही लोगों की आजीविका का प्रमुख

साधन है। परंतु झूम खेती से कृषकों को इतना लाभ नहीं पहुँचता और फलस्वरूप भूखमरी से दिन-पर-दिन गाँव की लोगों की अवस्था दीन होती जा रही है। इस संबंध में गाँव के मुखिया सारइक तेरांग का कहना है कि - झूम खेती करते - करते मेरे सिर के बाल सफ़ेद हो गए। परंतु क्या लाभ ? आर्थिक अवस्था में तो कोई परिवर्तन नहीं आया। एक मुठ्ठी चावल तक खाने के लिए पूरा नहीं पड़ता, भूखमरी ने दिन-पर-दिन गाँव का स्वरूप ही बदल दिया है।"[110] कथावाचक ने स्पष्ट किया है कि गाँव की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं है। खेती से प्राप्त अनाज भी कभी-कभी खाने को पर्याप्त नहीं होता, कारण कभी बाढ़ का प्रकोप खेती को फलने-फूलने नहीं देता तो कभी हाथी अनाज को नष्ट कर देते है। खेती के अलावा पशुपालन पर भी ध्यान दिया जाता है। जैसे सुऊर, गाय- भैंस, मुर्गिया इत्यादि। सारइक तेरांग और उसका परिवार भी खेती के साथ पशुपालन का कार्य भी करते हैं।[111]

रंगमिलीर गाँव में खेती के अलावा वस्तु - विनिमय का व्यापार भी किया जाता है, जिसमें एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु का आदान- प्रदान किया जाता है। कारेंग रंगफारपी भी सारइक के घर धान माँगने आता है और पैदावार होने पर उसे वापिस करने का वायदा करता है। आर्थिक तंगी के कारण उसके घर में दो दिन से खाने के लिए अनाज तक मौजूद नहीं है। सारइक की पत्नी इस विषय में कहती है कि - " कुछ समय पहले कारेंग रंगफारपी धान मांगने आया था। दो दिन से बच्चों को एक मुट्ठी चावल भी खिला नहीं पा रहा है। धान की पैदावार के समय वापस कर देगा। गांव की हालत दिन-पर-दिन क्या हो गई है।"[112]

उपन्यास में इस बात के भी संकेत मिलते है कि माड़वाड़ियों ने अपनी चतुराई से कपास, तिल, लाह के व्यवसाय पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया जिसके परिणामस्वरूप कारबी समुदाय का कारोबार ठप्प होने लगा। इन माड़वाड़ियों ने अफ़ीम बेचने का कार्य किया जिसके कारण कारबी जनमानस को नशे की ऐसी लत लगी कि उनका घर, खेत-खलिहान, अनाज आदि अफीम खरीदने के चक्कर में बर्बाद हो गया और गांव की आर्थिक उन्नति अवरूद्ध हो गई।[113]

इन प्रमुख असमिया आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त होमेन बरगोहाई के 'हालधीया चराए वाउ धान खाए' वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य के 'मृत्युजंय', शीलभद्र के 'मधुपूर', 'आँहतगुरि', लक्ष्मीनंदन बरा के 'गंगा शिलतीर पाँखी' आदि उपन्यासों में अंचलवासियों का प्रमुख व्यवसाय खेती से प्राप्त आय ही है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में ग्रामीण जनों का प्रमुख व्यवसाय खेत-खलिहानों से प्राप्त आय है। वृष्टि, अनावृष्टि आदि के कारण इनकी आर्थिक स्थिति में निरतंर उतार-चढ़ाव आते रहते है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में इस बात के संकेत मिलते है कि ग्रामीण जन खेती के अलावा विभिन्न प्रकार के व्यवसाय जैसे मछली पकड़कर बेचना, शहद बेचना, जूतों की दुकान खोलकर पैसे कमाना तथा वैश्यावत्ति में संलग्न होकर पैसे अर्जित करने का काम भी करते है। पंरतु असमिया ग्रामीण समाज का प्रमुख व्यवसाय खेती से प्राप्त होने वाली आय ही है।

"मैला आंचल" की फुलिया, 'अलग-अलग वैतरणी' की सुगनी देह व्यापार में संलगन होकर अपनी रोज़ी- रोटी चला रही है। या यूँ कहे कि यही इनका प्रमुख व्यवसाय है। पेट की भूख ने नैतिक - अनैतिक की परिभाषा ही बदल कर रख दी हैं। इसके विपरीत असमिया आंचलिक उपन्यासों में इस तरह के कोई संकेत नहीं मिलते। असमिया ग्रामीण समाज का प्रमुख व्यवसाय केवल खेती से प्राप्त होने वाली आय है। 'रंगमिलीर हाँही' ओर 'कईनार मूल्य' में झूम खेती का वर्णन मिलता है। झूम खेती स्थान बदल-बदलकर की जाती है। इसके विपरीत हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में इस तरह की खेती पद्धति के कोई संकेत नहीं मिलते।

ज़मींदार और सामान्य जन

स्वतंत्रता से पूर्व साम्राज्यवादी अंग्रेज, पूँजीपति और ज़मींदार शोषण की तीन ईकाई थे जो जनता को तरह-तरह से प्रताड़ित करते थे। ज़मींदारी प्रथा वास्तव में सामंती सभ्यता का ही एक अंग है। ज़मीदार, अंग्रेजों और किसानों के बीच की एक कड़ी थे जो किसानों से भूमि कर लेकर अंग्रेजों को देते थे। " इस प्रकार किसानों से इतना लगान लेता था कि वह स्वंय भी मौज कर सके और सरकार को भी दे सकें। प्रकारान्तर से किसान अपने खून से ज़मींदारों और साम्राज्यवादी सरकार तथा सरकार की गोद में पलते हुए पूंजीवाद इन सबको सींच रहे थे। किसानों का सीधा संबंध ज़मींदारों से था, किंतु सरकारी अहलकार भी प्रायः किसानों के पास आया ही करते थे और तरह-तरह से इन्हें परेशान करते थे। इनकी हड्डियों से पैसे निचोड़ते थे।"[114]

ज़मींदार कृषकों से अधिक से अधिक कर प्राप्त करने के लिए उनके साथ अमानवीय व्यवहार करते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् परम्परागत ज़मींदारी व्यवस्था का उन्मूलन कर खेतों पर कार्य करने वाले कृषकों एवं श्रमिकों को भूमि के स्वामित्व का अधिकार प्रदान किया गया। ज़मीदारी उन्मूलन के

कारण कृषकों पर ज़मीदारों - जागीरदारों के परम्परागत आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक प्रभुत्व को गहरा आघात पहुँचा जिसके फलस्वरूप उनका समस्त जीवन विघटित हो गया। माथा झुककार चलने वाले किसान ज़मींदारों के समक्ष तनकर खड़े हो गए, जिससे सांमतीय जीवन में आंतरिक टूटन आ गयी है।

'मैला आंचल' के मेरीगंज ग्राम में ज़मीन के लिए नयी दलबंदी होती है। विश्वनाथ प्रसाद के सम्मुख विकट समस्या है। उनसे एक ओर तो नयी बंदोबस्ती वाले किसान अपनी गवाही देने की प्रार्थना करते रहते है, जबकि दूसरी ओर नया तहसीलदार हरगौरी उनसे खुशामद करते हुए, अपने पक्ष में मिला लेना चाहता है। कारण यह है कि नीची जाति के लोगों ने ऊँची जाति के लोगों के मरे मवेशी उठाना, उनकी हज़ामत बनाना आदि बंद कर दिए है।[115] सांमती जीवन में आने वाली दरार स्पष्ट दिखाई देती है।

ज़मींदारी प्रथा समाप्त होने की सूचना पाकर संथाल लोग इस प्रकार नाच-गाने में मस्त हो जाते है मानो सारी ज़मीन पर इन्हीं का अधिकार हो गया हो - "ज़मींदारी प्रथा खतम हो गई। अब ज़मींदार ज़मीन से बेदखल नहीं कर सकता। हमने उन्हें ज़मीन से बेदखल कर दिया। जो जोतेगा, ज़मीन उसकी है। जो जितना जोत सको, जिसकी ज़मीन मिले जोतो, बोओ, काटो। अब बाँटने का भी झंझट नहीं।"[116] ज़मींदार विश्वनाथ प्रसाद ज़गीदारी उन्मूलन विधेयक के आगमन की सूचना प्राप्त होने के उपरांत अपने क्षेत्र में कार्य करने वाले संथालों को भूमि से हटा देते हैं। परिणामस्वरूप ज़मींदार के व्यक्तियों और संथालों में युद्ध होता है। संथालों को आजीवन कैद की सज़ा मिलती है, और भूमि का स्वामी ज़मींदार पहले से भी अधिक भूमि का स्वामी बन जाता है।[117]

ज़मींदार वर्ग साधारण जनता को लूटने के नए-नए मार्ग खोजता ही रहता है। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद इस प्रकार के तिकड़म भिड़ाते है कि गांववालों को अधिक से अधिक लूट सकें। एक बार जब अकाल पड़ता है और सरकार धान -जब्ती का कानून बनाना चाहती है, तो वे धान छिपा देते हैं और ग्रामीण जनों का शोषण करते है। इस संबंध में रेणु का कहना है कि -

" अनाज के ऊँचे दर से गाँव के तीन ही व्यक्तियों ने फायदा उठाया है - तहसीलदार साहब ने, सिंघ जी ने और खेलावनसिंह यादव ने। छोटे-छोटे किसानों की ज़मींने कौड़ी के मोल बिक रही है। मज़दूरों को सवा रूपए रोज मज़दूरी मिलती है, लेकिन एक आदमी का भी पेट नहीं भरता।"[118]

ज़मीदार विश्वनाथ प्रसाद चंदे के नाम पर भी पैसा अथवा धन वसूलना अपना अधिकार समझते है और सामान्य ग्रामीण जनों को लूटते हैं। इस संदर्भ में बिरंची कहता है - " तहसीलदार साहेब आज कह रहे थे, इस बार सभी को अपने हिस्से में से औकाद मुताबिक धान देना होगा-एक कट्‌ठा, आध कट्‌ठा, एक सेर, आध सेर। .... महतमा जी चन्ना हो रहा है।"[119] ज़मींदारी व्यवस्था के अंतर्गत जो भूमि सार्वजनिक उपयोग की थी तत्पश्चात् विश्वनाथ प्रसाद उस सरकारी ज़मीन पर भी अपना वैधानिक अधिकार बना लेते हैं ।- " मेरीगंज गांव के एकमात्र मालिक, एकछत्र ज़मींदार, तहसीलदार बावू विश्वनाथ मल्लिक का खम्हार देख लो। .... जिस बड़े चौताल पर एक पंक्ति में बैठकर गांधीजी के सराध के दिन लोगों ने सरबघटन भोज खाया, उसी को घेरकर खलिहान बनाया है तहसीलदार साहेब ने। दस बीघे का घेराव है।"[120]

तहसीलदार विश्वनाथ तरह-तरह की पैतरेबाज़ी करके आम जनता का शोषण करते हैं। गांव के मिलिटरीवालों को डाली पहुँचाते है उस डाली का व्यय भी वे स्वयं न वहन करके अपने टोले से वसूल करने का प्रबंध करते है।[121] 'मैला आंचल' में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ग्रामीण जनता की दशा दयनीय थी। खेतों में श्रम करने वाले श्रमिकों एवं कृषकों का ज़मींदारी व्यवस्था के अंतर्गत भूमि पर कोई अधिकार नहीं था। उनके साथ अमानवीय व्यवहार होता था। ज़मींदार विश्वनाथ के पिता देवनाथ मल्लिक द्वारा लगान - वसूली का बड़ा ही क्रूर उपाय अपनाया जाता था। उन्होनें कमला नदी के बगल के एक गड्ढे में जोंक पाल रखा था। लगान देने में विलम्ब करने वालों को वे उस गड्ढे में चार घंटे तक खड़ा करवा देते थे। इस तथ्य का रैयत पर ऐसा आंतक था कि विश्वनाथ प्रसाद को लगान वसूली में कोई दिक्कत नहीं होती थी। इस संबंध में रेणु का कहना है कि -

" रैयतों पर विशेष जोर-जुल्म करने की कभी ज़रूरत नहीं पड़ी। उनके पूर्वजों ने रैयतों के दिल और दिमाग पर तहसीलदार की ऐसी धाक जमा रखी थी कि उन्हें विशेष कुछ नहीं करना पड़ता था। कहावत मशहूर थी, जमदूत थोड़ा मुहलत दे सकता है, पर तहसीलदार नहीं।"[122]

सोशलिस्ट पार्टी का नेता कालीचरन मेरीगंज में किसान सभा का आयोजन करता है और ग्रामीण जनों को ज़मींदारों के शोषण के तरीकों से अवगत कराता है और यह परामर्श देता है कि सभी लोग ज़मींदार से धान उधार लेने से पूर्व अगूँठा-निशानी न लगाए। इस कारण गांव के अन्य ज़मींदार तो धान नहीं देते, लेकिन विश्वनाथ प्रसाद यह सोचकर दे देते है कि उनके पास, लोगों की पुरानी अगूँठा

निशानियाँ है और आवश्यकतानुसार उनका इस्तेमाल कर सकते हैं।[123]

इसी प्रकार 'अलग-अलग वैतरणी' में करैता गाँव में ज़मींदारी उन्मूलन के पश्चात् कई प्रकार की आर्थिक परेशानियों का सामना करना पड़ा। जमींदारी से जुड़े हुए सांमतवादी ढाँचे के टूटने से नई आर्थिक स्थितियाँ उत्पन्न होती है। इस स्थिति का वर्णन करते हुए शिवप्रसाद सिंह कहते है कि - "ज़मींदारी की पुश्तैनी पुख्ता दीवारें एक हल्के धक्के से ही ज़मीन पर आ गयी। आसामियों ने खानदानी लाज-शरम छोड़कर ज़मींदारों की छावनी से अपना रिश्ता तोड़ लिया। अब कभी दशहरे के मौके पर आसामियों की भीड़ जुहार करने नहीं आती। न ही कभी छावनी के मुख्य द्वार पर रखा बड़ा-सा परात नज़राने के रूपयों से खनकता ही है। अहीरों ने दही-दुध, कोइरियों ने साग-सब्जी, मल्लाहों ने मछलियाँ, जुलाहों ने मुर्गी और गड़ेरियों ने सलामी में खस्सी देना एकदम बंद कर दिया।"[124]

इस बदलते परिवेश में भी, इस बात पर विश्वास करना असंभव सा प्रतीत होता है कि मांसाहारी बाघ शाकाहारी कैसे बना रहेगा। वास्तविकता तो यह है कि वह ऐसा होता भी नहीं है। वह शोषण का नया मार्ग अपना ही लेता है। गांव की जनता के समक्ष माथा झुकाने का ढोंग करते हुए, छिपे तौर पर उनके जीवन के साथ खिलवाड़ करता है। ज़मींदार जैपालसिंह इसके अच्छे उदाहरण है। ग्राम पंचायत के मौके पर वे नीच जात के सुखदेव को, ग्राम सभापति बना देते है जो वास्तव में उन्हीं के हाथ की कठपुतली है और वे सभापति न होकर भी सभापति बनकर ग्रामीण जनता के भाग्य-विधाता बन जाते है।[125]

ज़मींदार वर्ग, सामान्य जनों की आर्थिक स्थिति का फायदा उठाकर उनका शोषण करते है। छोटे ज़मींदार वंशीसिंह द्वारा झिनकुवा का शोषण इसका ज्वलंत उदाहरण है। एक साल सुखा पड़ने के कारण फसल नहीं होती, झिनकुआ की आर्थिक स्थिति इतनी खराब है कि घर में खाने को एक दाना भी नहीं है। अतः वह भूखा पेट काम करने से मना कर देता है और मालिक से रोज़ीना बन्नी पर रखने की बात कहता है तो बदले में, पिटाई पाता है।[126] आर्थिक तंगी से जूझती चमार पुत्री सुगनी भी सुरजूसिहं के साथ पकड़ी जाती है जो उसका यौन शोषण करता है।[127] धरमूसिंह के घर की कुर्की के पीछे भी ज़मींदार का हाथ है। धरमूसिंह के द्वारा ऋण की बकाया राशि चुकाए जाने के बाद भी, यह कहा जाता है कि उन्होंने एक भी पैसा नहीं दिया और घर की कूर्की कराने के आदेश दिए जाते हैं।[128]

ज़मींदारी व्यवस्था के उन्मूलन के पश्चात् कुछ ज़मींदारों को छोड़कर, अधिकार ज़मींदारों के पास आज न भूमि है और न आजीविका का कोई अन्य साधन। परिणामस्वरूप इनकी आर्थिक स्थिति जर्जर हो गयी। 'आधा गाँव' में ज़मींदारी गंगौली के सय्यदों के सामाजिक और आर्थिक अस्तित्व का आधार है - " हम्माद मियां के अलावा किसी ज़मींदार के पास एक घर-ज़मीन नहीं थी। ये तमाम लोग देखते-देखते पलभर में नुरूद्दीन शहीद के मकबरे की तरह गिर गए।"[129] ज़मींदारी ही उनकी जिंदगी का एकमात्र सहारा था जिसे वे मज़हब की तरह मज़बूत मानते थे। वह भी उनकी इच्छा के विपरीत खत्म हो गई और उन्हें अपने घर में ही बेघरबार बना गई।

गंगौली के अधिकतर ज़मींदार वर्ग अपने हड्डी की शुद्धता पर बल देते है और अपने आप को इमाम हुसैन का सीधा वशंज मानते है। अनेक पत्नियों के बाद भी कलमी औलादों का शोक पूरा करते है। लेकिन विवाह के समय रक्त की शुद्धता पर बल देते हैं। परिणाम यह होता है कि हम्माद मियां का लड़का मिगदाद, सैफुनिया नाइन से विवाह करता है जो मेहरूनिया नाइन से उत्पन्न हम्माद मियां की ही लड़की है। भाई-बहन के इस विवाह से यौन-संबंधी ढीली नैतिकता का पर्दा फाश होता है।[130] लेकिन ज़मींदारी खत्म होने पर और आर्थिक स्थिति बिगड़ने पर इनके लिए रक्त- शुद्धता का प्रश्न कम महत्वपूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार ज़मींदार अब्बू खाँ की बेटी सईदा को भी आर्थिक तंगी के परिणामस्वरूप स्कूल में 'ट्रेंड टीचर' के रूप में नौकरी करनी पड़ती है। इस बात का विरोध गाँव की औरतें करती है और बेटी के पापों की कमाई खाने की तोहमत लगाती है। उनका मत है कि जिस समाज की औरतें बुर्का पहनकर बाहर निकलती थी, उसी समाज की औरतें मुँह खोलकर दुनिया-भर में घुमकर अपने खानदान की इज्जत पर पानी फेर देंगी। परंतु समय के परिवर्तन के साथ ज़मींदारी उन्मूलन हो गया। शीआओं की सामाजिक मान-मर्यादा घट गई, रोजी-रोटी की मुसीबत आ गई। ऐसी बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति में सईदा की नौकरी के पैसों से परिवार का पालन-पोषण होने लगा।[131]

ज़मींदारी टूटने के पश्चात् गंगौली के अधिकांश सय्यदों की आर्थिक हालत नाज़ुक स्थिति पर पहुँच गई। राही मासुम रजा ज़मींदारों की आर्थिक स्थिति के विषय में लिखते है कि - " हर घर में अम्बारों बक्स थे। हर ज़नाने कमरबन्द में कुंजियों का भारी गुच्छा था, पर बक्स खाली थे। तालों की कोई ज़रूरत न थी, पर औरतें कुंजियों के गुच्छे से चिमटी हुई थी। क्योंकि वही उनकी खुशहाली के ज़माने की एक यादगार रह गया था।"[132]

ज़मींदार वर्ग अपने पैसे और ज़मींदारी की ताकत पर निम्न वर्ग का शोषण करते थे। परतुं ज़मींदारी उन्मूलन के पश्चात् इनकी आर्थिक स्थिति में परिवर्तन के साथ ही इनके रूतबे को भी क्षति पहुँची। फुन्नन मियां इस संदर्भ में हुसैन अली मियां को कहते हे कि - " जब ज़मींदारियाँ रही तब्बे कोनो जोर-जबरदस्ती न किये रहयो ! का इ हमें ना मालुम कि तुम रहमतुवा की बहन से फँसे रहियो ! ता केह बूते पर फँसे रहियो ? तूँ ज़मींदार न रहे होतियो त का ओ तेरी बहिनया ना चोद देता ! कल तोरा बखत रहा, आज बरकतुवा का बखत है।" [133]

ज़मींदारी समाप्त होने के पश्चात् परसुराम चमार एम.एल.ए हो गया, फलस्वरूप इज्जत और आमदनी में बढ़ोत्तरी होने लगी। परूसराम एक ऐसी शक्ति के रूप में उभरता है जो परंपरागत ज़मींदार मियां लोगों के अस्तित्व को हिलाकर रख देता है और परूसराम जब यह कहता है कि - मैं नहीं चाहता कि मेरे इलाके या गांव में ये सब बाते हो तो मियां लोगों का पूरा बजूद ही लड़खड़ा जाता है।[134] जो व्यक्ति कल तक ज़मींदारों के अधीन था, आज वह ज़मींदारों के अस्तित्व को संकट में डाल रहा है। इसका मूल कारण यह है कि वह ज़मीदारों से, आर्थिक रूप से अधिक सबल है।

'कब तक पुकारूँ' में उपेक्षित करनट जनजाति के जीवनगत पहलुओं को दर्शाया गया है। नटों की आर्थिक स्थिति इतनी बदत्तर है कि कोई इनकी इज्जत नहीं करता। ज़मींदार के आदमी एवं पुलिस वर्ग उनका निरंतर शोषण करते हैं। ज़मींदार वर्ग की शोषण की प्रवृत्ति को लक्ष्य करते हुए बूढ़े ने खचेरा से कहा - " बड़े आदमी सदा से छोटों को पिटवाते रहे हैं। लाला ! तेरा बाबा तो मशहूर था। जब बड़े ज़मींदार के पास जाता था तो अंटी में रूपए लगाकर ले जाता था। भेज (लगान) माँगने पर कभी आपसे नहीं देता था। कहता था, " जूते लगावा दो, ले लो, नहीं तो मेरी फसल आगे खड़ी न होगी। ज़मींदार के पाँव पकड़के घिघियाता था, मेरा सगुन मत बिगाड़ों महाराज। ज़मींदार तब जूता उसके सिर से छुआ देते, और वह हंसी-खुशी रूपए गिन देता। इसी से तब धरती सोना उगलती थी। राजा का हक था। राजा लेता था। जूते के ज़ोर से लेता था।[135] परंतु ज़मींदारी उन्मूलन के पश्चात् परिस्थितियाँ बदल गई है। ज़मींदार वर्ग आर्थिक विपन्नता के शिकार बन गए। उन्हीं की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गयी। इस संबंध उपन्यास का एक पात्र राजाराम कहता है - " अरे, मेरे बचपन में ही ज़मींदार के घर में सवा सौ जवान थे। खाते-पीते थे, मस्त थे, आठ आना महीना मिलता था। इशारे पै जान देते थे। अब ज़मींदार ही खाने के भुखे हुए। कुल तीस नौकर हैं। तब नगड़े बजाके भोर कराते थे, अब कहाँ है वे ठाठ। पहले गद्दी

होती थी तो सात गाँव के लोग भेंट लाते थे, अब कहाँ है वह बात। ज़मींदारी उन्मुलन ने ज़मींदारों के अस्तित्व के साथ उनकी आर्थिक स्थिति को भी झकझोर कर रख दिया।[136]

इस प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अलावा डॉ० राजकुमारी सिंह कृत हिन्दी और अंग्रेजी आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन संदर्भ पुस्तक के आधार पर नागार्जुन कृत बाबा बटेसरनाथ 'बलचनमा', रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ', फणीश्वरनाथ रेणु के 'परती परिकथा', बलदेव शर्मा के 'गरीबी से आगे' हिमांशु श्रीवास्तव के 'नदी फिर वह चलीं' में ज़मींदार और सामान्य जन का विवरण मिलता है।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों के समान, असमिया के आंचलिक उपन्यासों में ज़मींदारी प्रथा का विवरण न के बराबर है। हाँ इतना अवश्य है कि 'दँताल हातीर उइये खोआ हाऊदा' नामक आंचलिक उनन्यास में थोड़ा बहुत विवरण मिल जाता है।

महाजन का कुचक्र

भारतीय अंचलों में आर्थिक विकास को अवरूद्ध करने वाले अनेक तत्त्व हैं। इनमें गरीबी, बेकारी, महँगाई आदि के अलावा ऋण की समस्या भी है। ग्रामीण जनता की आर्थिक बाधाओं के अन्तर्गत कृषि -उद्योग में लगाने के लिए समय पर धन की आवश्यकता होती है। ग्रामीण जनता के पास समय पर सस्ते व्याज की दर पर धन प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े सूदखोरों महाजनों पर निर्भर करना पड़ता है। इस संदर्भ में रामदरश मिश्र का कहना है कि - " महाजनी सभ्यता का वृहद रूप शहरों में था, मगर छोटे-छोटे साहुकारों और ऋणदाताओं के रूप में देहातों में भी वह कुछ छटा दिखा रहा था। ये छोटे-छोट बनिये और सूदखोर महाजन किसानों को ऋण के जाल में उलझाते थे, उनके घर-द्वार नीलाम कराते थे, उनके अनाज खलियान से तौलवा लेते थे।"[137]पहले से ही आर्थिक मार झेल रहे किसानों के लिए ऋण की समस्या अत्यंत ही विकट रूप धारण कर लेती है जिसके कारण किसान का जीवन गरीबी, भूखमरी और जहालत का शिकार बन जाता है। ग्रामीण जनता की ऋण की समस्या के संबंध में डॉ० ओंकारानाथ श्रीवास्तव लिखते है - " गांवों की कर्ज़दारी की समस्या हमारे लिए सबसे अधिक महत्व की है क्योंकि इसने सामुदायिक अंतसम्बंधों पर सबसे अधिक असर डाला है। आधुनिक आर्थिक प्रगति में ऋण का बड़ा महत्व है बशर्ते कि ऋण उत्पादन के लिए लिया जाए। इस तरह सामुदायिक धन का बेहत्तर उपयोग होता है और उत्पादन बढ़ता है। मगर भीषण गरीबी ने जनता को 'उपभोग' के लिए

ऋण लेने पर बाध्य कर दिया, इसके कारण उत्पादन के क्षेत्रों में धन के प्रवाह की संभावनाएँ बंद हो गई और समाज में सूदखोरी की अनार्जित आय का दौर-दौरा हो गया।"[138]

'मैला आंचल' में गांव वालों की आर्थिक दुर्दशा का कारण है उच्च, सम्पन्न वर्ग के लोगों द्वारा शोषण। ज़मींदार विश्वनाथप्रसाद किसानों का खेत हड़पते है और महाजन के द्वारा खाली कागज़ पर मोहर लगवाकर तथा वसूली हुई रकम की रसीद न देकर बेईमानी करते हैं। फागुन के पर्व त्योहारों के पांच दिन पहले उनके 'बखार' के मुहँ खोल दिए जाते हैं। मालिक बही खाता लेकर बैठ जाते है, पास में कजरौटी खुली हुई रहती है। धान नापनेवाला धान की देरी से धान नापता जाता है। .... बादरदास को एक मन ! ...... सोनाय ततमा को तीन पसेरी। ..... सादा कागज़ पर अँगूठा का निशान देते जाओ। भादो महीने में यदि भदै धान चुका दोगे तो ड्योढ़ा, यानी एक मन का डेढ़ मन। यदि अगहनी फसल में चुकाओगे तो डेढ़ मन का तीन मन। सीधा हिसाब है।"[139]यदि किसान समय पर कर्ज़ न चुका पाय तो उसे अपनी ज़मीन से हाथ धोने पड़ते हैं। फलस्वरूप तहसीलदार विश्वनाथ, ठाकुर रामकिरपाल सिंह, खिलावन यादव जैसे ज़मींदार सैकड़ों बीघ्रों के मालिक हो जाते हैं। शोषण का यह चक्र लगातार चलता रहता है क्योंकि कर्ज़ एक ऐसा मेहमान है जो एक बार आता है तो फिर आता ही चला जाता है।

'अलग-अलग वैतरणी' में करैता गाँव की पुष्पी के घर की कुर्की भी कर्ज की समस्या के कारण ही उत्पन्न होती है। पुष्पी अपनी ऋण से ग्रसित दशा का वर्णन विपिन से करती हुई कहती है कि - " बाबू ने मालिक काका से रूपया लिया था, आजी के किरिया-करम में। दो सौ या तीन सौ, मैं ठीक नहीं जानती। बाबू कहते हैं कि वे अपनी तनखाह में से काटते रहे, पर वो मुआ नवज़ादिक मुंशी कहता है कि नहीं, एक पैसा भी नहीं दिया है अब तक। सो कुल चार सौ रूपये का मुकदमा चलाया। उसी की कुर्की है विपिन। तुम जानते ही हो, चार-पांच साल से पैदा एकदम नहीं हो रही है। खाने तक के लिए उधार लेना पड़ता है।"[140]

'कर्ज़ की समस्या' से करैता गांव के अधिकांश लोग दुखी एवं चिंतित है। अतः लोगों में फसल कटने की खुशी न के बराबर है और किसानों को इस बात की चिंता सताती रहती है कि अनाज का अधिकांश भाग कर्ज़ चुकाने में चला जाएगा तो वे अपनी गृहस्थी कैसे चलाएगें। इस संदर्भ में डॉ० शिवप्रसाद सिंह का कहना है कि - "अभी चैती की फसल कटे मुश्किल से एक महीना ही बीता है, पर

शायद ही दो चार जन ऐसे हो जिनके चेहरे पर घर में अनाज होने की खुशी दिखाई पड़ती हो। बहुत सा अनाज तो खलिहान से ही पिछले कर्ज़ की पटाई में और महाजन की उधारी चुकाने में खतम हो गया था। ऐसी सूरत में अधिकतर घरों में जौ चने के सत्तू ने दोपहर के भोजन का स्थान ले लिया था।"[141]

इस प्रकार महाजन का यह कुचक्र निरंतर चलता रहता है। किसानों को चाहकर भी इससे मुक्ति नहीं मिलती और उन्हें आर्थिक संघर्ष झेलना पड़ता है। अतः परिस्थिति के अनुसार दबाव डालकर भूमि हड़प लेना आर्थिक शोषण की स्थिति को जन्म देता है जो किसान को धीरे-धीरे भूमिहीन बनाते हुए मज़दूर बना देती है।

'नोई बोई जाए' में भगीरथ पुकन को अपनी पुश्तैनी ज़मीन का कर चुकाने के लिए महाजन के पास रूपए मांगने जाना पड़ता है। परतुं महाजन उसे बीस रूपए इस शर्त पर देने के लिए राजी होता है कि वह पैदावार के समय महाजन को बीस मन धान, बदले में वापस करेगा।[142]आर्थिक दबाव के कारण ही महाजन ग्रामीण जनों का भरपूर शोषण करता है और साधारण से कर्ज़ के बदले में उनसे कई गुना कर्ज़ वसूलता है।

आर्थिक तंगी के कारण सुआगी के पिता अपनी कुछ ज़मीन महाजन के पास गिरवी रख देते है। परंतु घर का खर्च पूरा नहीं पड़ता, अतः वह दुकान से उधार पर समान लाता है। लेकिन समय पर दुकान की उधारी चुका नहीं पाता और कर्ज़ का बोझ दिन-पर-दिन बढ़ता ही जाता है। उधार न चुका पाने की अवस्था में वह पुनः महाजन के पास जाकर अपनी सारी ज़मीन के कागज़ात बिना लिखे-पढ़े ही उसे सोप देता हैं।[143] परिणाम यह होता है कि महाजन जहाँ एक ओर अधिक से अधिक भूमियों का स्वामी बन जाता है । वहीं दूसरी ओर गरीब किसान खेतों को खोकर मज़दूर बन जाता है तथा आर्थिक तौर पर असहाय हो जाता है तथा अपना सर्वस्व खौ बेठता है।

इसी प्रकार 'रंगमिलीर हाँही' में महाजन रामधन केयांर गांव के सीधे -सरल लोगों को अपने जाल में फँासने का अथक प्रयास करता है। वह लोगों से सस्ते दामों पर लाह और कपास खरीदता तथा उन्हें ऊँचे दरों पर बेचता है। वह ग्रामीण जनों से कपास, लाह खरीदते समय तराजू से नाप-तोल करने में हेरा-फेरी करता है। सारइक तेरांग इसका विरोध करता हुआ कहता है कि - " महाजन, ये तो अन्याय है। तराजू के पल्ले में नीचे से पेर रखना, ऐसा तो हमने पहली बार देखा है। यह किस तरह का नाप-तोल है। वह लोगों से खरीदी गई चीज़ों का उचित मूल्य न देकर उनका शोषण करता है।"[144]

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण जन की आर्थिक स्थिति अवरूद्ध करने में महाजन, एक अहम भूमिका निभाता है। ज़मींदारों के समान गांवों में आतंक मचानेवाला और एक वर्ग है - महाजन। कर्ज़ गांव के किसानों तथा अन्य निम्नस्तर के लोगों का साथी है। अधिकांश ग्रामीण कर्ज़ से जीवनभर मुक्त नहीं हो पाते। बाढ़, सूखे तथा तूफ़ान जैसे प्रकृति कोप से पीड़ित ग्रामीणों के लिए एकमात्र आश्रय महाजन है। एक बार इनके जाल में पड़े तो फिर मुक्त होना संभव नहीं है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों जैसे 'मैला आंचल' में तहसीलदार विश्वनाथ गरीबों से कोरे कागज़ पर अँगूठे का निशान लगवाता है। वहीं 'अलग-अलग वैतरणी' में धरमू के घर की कुर्की ग्रामीणों की त्रासदी की कहानी कहता है। इसी प्रकार असमिया आंचलिक उपन्यासों 'नोई बोई जाए' और 'रंगमिलीर हाँही' में भी महाजन के आतंक का वर्णन मिलता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में महाजन का आतंक गावों में समान रूप से छाया रहता है। पहले से आर्थिक मार झेल रहे ग्रामीणों को कर्ज के फँदे में इस प्रकार जकड़ लेता है कि उनका जीना मुहाल हो जाता है। कर्ज़ की आदयगी न कर पाने पर उसे अपना सर्वस्व खोना पड़ता है। आर्थिक संकट का विकराल रूप सदा उसके सामने खड़ा होता है। ग्रामीण जीवन में महाजन एक आतंक का पर्याय बन चुका है।

नगरोन्मुखता

भारत गांवों में बसता है। कितुं सुख - सुविधाओं, शिक्षा - स्त्रोतों और रोजी - रोटी के लिए गाँवों की अपेक्षा शहर में ज्यादा सुविधाएँ है। अतः बेकारी और अभाव ग्रस्तता के अतिरिक्त आधुनिक काल में अन्य ऐसे अनेक आर्थिक कोण उभर कर आए हैं जिनके प्रभाव से गाँव टूट रहे हैं और ग्रामीण ज़न उसे छोड़कर नगरों की ओर उन्मुख हो रहे हैं।

'मैला अंचल' में खेतिहार श्रमिक मेरीगंज ग्राम छोड़कर शहरों की ओर जा रहे है। गांव में खेत - खलिहानों में वैज्ञानिक यंत्रों के उपयोग की वृद्धि के कारण श्रमिकों के लिए काम कम हो गया है। अतः श्रमिक ग्राम छोड़कर कटिहार जूट मिल में काम मिलने की आशा से शहर जाते है - " कटिहार में एक जूट मिल और खुला है। तीन जूट मिल ?.......... चलों चलो दो रूपैया रोज मज़दूरी मिलती है। गाँव में अब क्या रखा है ?[145]

नगर का आर्थिक इन्द्रजाल अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीणों को अपनी ओर आकर्षित करता है और वे

गांव छोड़कर नगरों में घँस जाते है। 'अलग - अलग वैतरणी' में ज़मींदार जैपालसिंह का लड़का विपिन गाँव छोड़कर गाजीपुर शहर के डिग्री कालेज में प्रवक्ता बन जाता है। लोगों की नगरोन्मुखता के बारे में जग्गन मिसिर का कहना है कि - " हमारे गाँवों में आजकल इकतरफ़ा रास्ता खुला है। निर्यात सिर्फ़ निर्यात। जो भी अच्छा है, काम का है, वह वहाँ से चला जाता है। अच्छा अनाज, दूध, घी, सब्ज़ी जाती है। अच्छे मोटे ताज़े जानवर, गाय, बैल, भेंड़ - बकरे जाते है। हट्टे - कट्टे मज़बूत आदमी जिनके बदन में ताकत है, देह में बैल है, खींच लिये जाते है पल्टन में, पुलिस में। मलेटरी में। मिल में। फिर वैसे लोग, जिनके पास अक़्ल है, पढ़े - लिखे है, यहाँ कैसे रह जायेंगे ? वे जायेंगे ही। जाना ही होगा।"[146]

किसी भी ग्रामांचल को पूरी तरह शहर से कटकर नहीं देखा जा सकता, क्योंकि बेरोज़गार, गरीब और बेबस ग्रामीण रोज़ी - रोटी की तलाश में शहर की ओर भागते है, जिससे अप्रत्यक्ष रूप से शहर ग्रामीण परिवेश, वहाँ की आर्थिक स्थिति और मानसिकता को प्रभावित करने लगते है। 'आधा गांव' में भी इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते है कि रोज़ी - रोटी के लिए प्रायः ग्रामीण जन गांव छोड़कर कलकत्ता चले जाते है और अपनी ज़मीन से बिछड़ने का दर्द कम नहीं होता। कलकत्ता शहर ग्रामीण किशोरियों के विरह का पर्याय बन जाता है, पूर्वांचल का बहु - प्रचलित लोकगीत - "लगा झूलनी का धक्का, बलम कलकत्ता चले गए " की गूँज सार्थक होती रहती है। - इस संदर्भ में लेखक का कहना है कि - " कलकत्ता किसी शहर का नाम नहीं है। गाज़ीपुर के बेटे - बेटियों के लिए यह भी विरह का एक नाम है। यह शब्द विरह की एक पूरी कहानी है, जिसमें न मालूम कितनी आँखों का काजल बहकर सुख चुका है।............ कलकत्ता, बम्बई, कानपुर और ढाका इस शहर की हदें है। दूर तक फैली हुई हदें........ यहाँ के रहनेवाले यहाँ से जाकर भी यहीं के रहते है।"[147]आर्थिक दबाव एवं जीविकोपार्जन के कारण मज़दूर बनकर ग्रामीणवासी किसी भी महानगर में चले गए, किंतु अपने केन्द्र से उनका संबंध नहीं टूटता।

'सागर, लहरें और मनुष्य' में बरसोवा के तट पर बसनेवाले कोली जाति के पिछड़े हुए मछुआरे भी अनेक प्रकार के आर्थिक संकट झेलते है। परिणामस्वरूप रत्ना और माणिक शहर के जीवन की ओर उन्मुख होते है। शहर की रंगीनियाँ रत्ना को माणिक के करीब ले जाती है और वह अपने गाँव के प्रेमी यंशवत को छोड़कर माणिक से विवाह करती है। इस संबंध में त्रिभुवन सिंह का यह कहना बिल्कुल सही है कि - " आधुनिक सभ्यता का महल अर्थ की नींव पर खड़ा है और हम देखते हैं कि मच्छीमारों के व

परिवार जिनकी आर्थिक स्थिति संतोषजनक है, गँवई - सभ्यता से असंतुष्ट होकर नगर - सभ्यता की कल्पना करने लगे है।"[148] माणिक शहरी जीवन में अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अपनी पत्नी रत्ना के शरीर का व्यवसायिक इस्तेमाल करना चाहता है। यह अमानवीय स्थिति अर्थ - लोभ से ही पैदा हुई है। इस प्रकार हम देखते है कि केवल अनपढ़ ही नहीं पढ़े - लिखे बेरोज़गार अंचलवासियों को भी शहरी जीवन अपनी ओर आकर्षित करता है।

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त, कलावती प्रकाश कृत 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का लोकतात्त्विक अध्ययन' पुस्तक के आधार पर रामदरश मिश्र के 'सुखता हुआ तालाब', 'जल टूटता हुआ' आदि में ग्रामीण जनों द्वारा धनाभाव के कारण नगरों की ओर उन्मुख होने का विवरण मिलता है।

आधुनिक युग में बेकारी और अर्थ समस्या से पीड़ित ग्रामीण युवक - युवतियों शहर की ओर सहज ही आकर्षित होते हैं। शहर में जाकर, सफल हो जाने वाले ग्रामीण जन अकसर गाँव को भुला बैठते है और उनका जीवन वर्तमान द्वारा संचालित होने लगता है। 'नोई बोई जाए' में भगीरथ फुकन का बड़ा पोता रूपम आर्थिक तंगी के कारण, गांव छोड़कर शहर में नौकरी करने के लिए बाध्य होता है। इस संदर्भ में कथावाचक कहता है कि रूपम ने नगर में मेश में रहकर बी.ए. की पढ़ाई की। एम.ए. पढ़ाने के लिए पैसों की तंगी थी।......... घर की ऐसी हालत देखकर उसने आगे न पढ़ने का फैसला किया और शहर के सरकारी विभाग में नौकरी करने लगा।"[149] धनाभाव के कारण जहाँ एक ओर तो उसकी शिक्षा में बाधा उत्पन्न की, वहीं दुसरी तरफ़ घर की जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए एक बार जो नगर की उन्मुख हुआ तो, बस नगर में ही जाकर बस गया। उसने डिब्रूगढ़ में ज़मीन खरीदकर घर बना लिया और स्थायी रूप से वहीं रहने लगा।

इसी प्रकार भगीरथ फुकन को अपने बेटे विजन को डाक्ट्ररी पढ़ाने के लिए कई प्रकार की आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। फिर भी वह यह सोचकर खुशी का अनुभव करता था कि, विजन गांव में रहकर गांववालों का इलाज करेगा। परंतु दुर्भाग्यवश नगरीय सुख - सुविधाओं, आर्थिक सुदृता ने जैसे उसके पाँव में बेड़ियाँ बांध दी हो वह चाहकर भी गांव नहीं लौट पाता। इस संदर्भ में भगीरथ फुकन अपनी वेदना प्रकट करते हुए कहता है कि - " गाँव का केचुँ अपने गड्ढे से निकलकर नगर के खुले मैदान में पहुँच गया।"[150] इन सब परिस्थितियों के मूल में अर्थ - समस्या ही है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का अध्ययन करने के बाद इस बात की पुष्टि होती है कि नगरीय जीवन की सुख - सुविधाएँ एवं रोज़गार के अवसर ग्रामीणों की अपनी ओर अकर्षित करते है। आर्थिक रूप से सुढ़ता गांव की अपेक्षा शहरों में अधिक पाई जाती है क्योंकि यहाँ पर रोज़गार के कई अवसर पाए जाते है। ग्रामीणों की प्रमुख समस्या पेट भर सकना ही है। ऐसे अनेक पात्र हमें हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में मिलते है जो नगरीय परिवेश में ही जीवन यापन करने लगते है और पुनः गांव में अपना कोई सुरक्षित भविष्य नहीं देख पाता। 'मैला आंचल' के फेतिहार श्रमिक, 'अलग-अलग वैतरणी' का विपिन , 'आधा गाँव' की सईदा, 'सागर, लहरें और मनुष्य' की रत्ना और माणिक, 'नोई बोई जाए' का विजन, रूपम आदि पात्र इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

अतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों के अधिकांश ग्रामीण नगर के मोह पाश से आबद्ध है। नई शिक्षा प्राप्त युवा-पीढ़ी की मानसिकता ग्रामानुकूल नहीं है। शिक्षा प्राप्त नई पीढ़ी गांव में रहकर खेती-बाड़ी या काम-धंधा करने के लिए हिचकती है, क्योंकि पढ़ी-लिखी नई पीढ़ी गाँव के वातावरण से ताल-मेल स्थापित नहीं कर पाती। हाँ इतना अवश्य है कि असमिया आंचलिक उपन्यासों की तुलना में, हिन्दी आंचलिक उपन्यासों में नगरोन्मुखता की प्रवृति अधिक पाई जाती है।

निष्कर्ष

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में राजनैतिक -आर्थिक चेतना का अध्ययन करने के पश्चात् बहुत कुछ साम्य दिखाई पड़ता है। भारत की स्वतंत्रता के लिए, अपने बीच के भेद-भाव मिटाने के लिए, अपने अधिकार हासिल करने के लिए अंचल के ग्रामीण लोग संघर्षरत थे। इसके लिए उन्हें जागृत करना था। यह जन-जागरण राजनीतिक पार्टियों के प्रचार - प्रसार से अधिक सफल हुआ। अतः जन - जागरण के पीछे की शक्ति राजनीतिक पार्टियाँ थीं। यहाँ राजनीतिक भावना के जागृत होने का एक कारण भारत के स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित घटनाएँ थीं। अंचल चाहे पूर्व के हो, या चाहे उत्तर के सब में कहीं न कहीं विदेशी आधिपत्य से मुक्त होकर स्वतंत्रता के महत्वपूर्ण मंजिल पर पहुँचने की तीव्र इच्छा थी। अंचलों की इस इच्छा की तीव्रता हिन्दी तथा असमिया के आंचलिक उपन्यासों की कथाओं एवं पात्रों की कार्य - प्रवृत्तियों से स्पष्ट होती है। देश को स्वतंत्र कराने में महात्मा गांधी व अन्य राष्ट्रीय कांग्रेसी नेताओं के योगदान का वर्णन इन उपन्यासों में मिलता है। इन नेताओं का मानना था

कि जब तक भारतीय अंचलों में राजनीतिक जागरण का नव - संदेश नहीं पहुँचेगा तब तक मुक्ति संग्राम में राष्ट्र कुछ भी नहीं कर पाएगा।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में राजनैतिक आर्थिक चेतना का अध्ययन करने के पश्चात् यह सत्य उज़ागर होता है कि अंचलवासियों में राजनीतिक जागरण प्रबल होने के साथ-साथ वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने लगे। क्रमशः अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का मार्ग भी अपनाने लगे है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में घटित घटनाओं से प्रतीत होता है कि स्वतंत्रता के लिए जो स्वप्न भारतीय जीवन को गतिशीलता प्रदान करते थे, वह व्यक्तिगत स्वार्थ, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, हिंसा, भ्रष्टाचार, स्वार्थ के सामने चूर - चूर होने लगा। सरकार की ओर से बनाई जाने वाली विभिन्न योजनाएँ, सरकारी भ्रष्ट अधिकारियों को अवसरवादिता और निजी स्वार्थ के कारण ग्रामीण जनों तक नहीं पहुँच पाई। हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में अनेक ऐसे प्रसंग देखने को मिलते है।

स्वतंत्रता से पहले यदि कुछ योजनाएँ बनाई गई थीं तो वे ग्राम - विकास को लक्ष्य करके नहीं हुई थी। अंग्रेजों ने अपनी सुविधाओं तथा लाभ को लक्ष्य करके विकास कार्य किया था। लेकिन स्वतंत्रता के बाद की स्थिति ऐसी नहीं थी। पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामोद्धार पर विशेष बल दिया तथा इसके अनुरूप अनेक छोटी - मोटी योजनाओं की घोषणाएँ की। इनको सरकार ने स्वंय तथा अनेक संस्थाओं के द्वारा कार्यान्वित करने का प्रयत्न भी किया। सहकारी संघ, पंचायती राज, संस्थाएँ आदि इनमें प्रमुख है। नहर, पुल, सड़क, तलाब, बिजली, कुटीर उद्योग खेती के नवीनीकरण आदि योजनाओं को प्रमुखता मिली। हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में इस संबंध में चर्चाएँ मिलती है।

आर्थिक चेतना पर विचार करते हुए हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासकारों की दृष्टि सबसे पहले भारत की कृषि- व्यवस्था पर गई है। कारण, भारत की आर्थिक व्यवस्था की नींव, कृषि है। अतः ग्रामीण जनों का प्रमुख व्यवसाय कृषि ही है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में कृषि - कार्यों की प्रगति के लिए सरकार की ओर से कई प्रकार की योजनाएँ बनाई गई है। भारतीय अंचलों में आर्थिक विकास को अवरुद्ध करनेवाले अनेक तत्त्वो में से एक है महाजन का आंतक। किसान का सारा जीवन महाजन का ऋण चुकाने में बीत जाता है, परंतु ऋण की समस्या कभी समाप्त नहीं होती जिसके फलस्वरूप किसान को अपना सर्वस्व खोना पड़ता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आर्थिक दृष्टि से भारतीय गांव आज भी पिछड़े हुए है। विकास की योजनाएँ गरीबी, बेकारी, ऋण की समस्या जैसी अड़चनों के

कारण क्षीण बनती जाती है।

समाज के आर्थिक आयाम पर अपना मत प्रकट करते हुए हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासकारों ने नगरोन्मुखता के प्रमुख कारणों पर विचार प्रकट किए है। आर्थिक संकट के कारण कृषकों के लिए खेती - बाड़ी करना नामुमकिन हो गया। गाँव में खेती - बाड़ी के अलावा और कोई काम नहीं है। अतः ग्रामीण जन शहरों में मज़दूर - कुलियों का काम करने लगते है और शहर में बस जाते हैं। इसी प्रकार शिक्षित युवा-पीढ़ी की मानसिकता ग्रामानुकुल नहीं है। शहरों में गाँवों की अपेक्षा रोज़गार के कई अवसर प्राप्त होते हैं अतः नौकरी के मोह में पड़कर शिक्षित लोग गांव से शहर में पहुँचते है और आर्थिक सबलता उन्हें गांव के धूल और कीचड़ से दूर ले जाती है और वहीं डेरा डाल लेते हैं। शहरों के भौतिक वातावरण में वशीभूत नई पीढ़ी शहर को छोड़ना नहीं चाहती।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त राजनैतिक - आर्थिक चेतना में पर्याप्त मात्रा में साम्य दिखाई पड़ता है, किंतु थोड़ा बहुत अंतर भी स्पष्ट तौर पर उज़ागर होता है। हिन्दी आंचलिक उपन्यासों में ज़मीदारी प्रथा तथा उसके उन्मूलन की चर्चा यत्र-तत्र मिलती है परंतु असमिया समाज व्यवस्था में ज़मीदारी प्रथा का उल्लेख न के बराबर है। हिन्दी आंचलिक उपन्यासों में राजनीतिक दलों द्वारा जातिवाद के आधार पर पार्टी के गठन पर बल दिया जाता है जिससे राजनीति दूषित हो जाती है परंतु असमिया आंचलिक उपन्यासों में जातिगत राजनीति का कोई विवरण मिलता। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जहाँ अंचल वासियों के प्रमुख व्यवसाय के रूप में कृषि के अलावा मछली पकड़ना, शहद एवं दवाईयाँ बेचना आदि की चर्चा है, वहीं असमिया आंचलिक उपन्यासों में केवल कृषि ही ग्रामीण जनों का प्रमुख व्यवसाय है।

संदर्भ सूची

1. आधुनिक परिदृश्य - आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, विद्या सिन्हा, पृ - 59

2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, ज्ञानचंद गुप्त, पृ - 20

3. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, ज्ञानचंद गुप्त, पृ - 38-39

4. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 224

5. वहीं, पृ - 30

6. वहीं, पृ - 225

7. आधा गाँव, राही मासूम रजा, पृ-207-210

8. वहीं, पृ - 260

9. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ - 12

10. वहीं, पृ- 269

11. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 43

12. वहीं, पृ - 46

13. कपिली परिया साधु ,नवकांत बरूआ, पृ - 20

14. वहीं, पृ - 21

15. वहीं, पृ - 25

    "सत्यर प्रति जार आग्रह तेउहे सत्याग्रही।"

16. वहीं, पृ - 29

17. वहीं, पृ - 29

    "जेलखानाखन तार तीर्थस्थल जेन लागिल।"

18. वहीं, पृ - 30

19. वहीं, पृ - 29

20. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 140

21. वहीं, पृ - 224

" कनकेश्वर फुकन मौजाटोर जिलिका मानूह। देशर कामत लागुते घर - द्वार, लोरा -छुआली पाहरिलेई।"

22. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 141

"ईगराज़र सिपाहिये राईजक मारधर करिसे। माति नीलामत दिसे। घर कुर्की करि कॉहि - बाटि, कापोर - कानि, हातर - कानर काड़ि निसे।"

23. वहीं, पृ - 223

"स्वाधीन हबर दिना नगरत डागर सभा होईसिल, तालौ गोईसिलो। सभापति वहा उख सांगखनत नगरर मूखियाल मानुहवोर वहिसिल। पढ़ा-सुना जना, वकील, सहकी दुअरा - काकति, चलिहा, वेज़वरूआ, फुकन -वरूआर घरर ईगांजर घरत मानखुआ केईघरर मुख - जिलिका केईजन। गाँवे-गाँवे फुरि, सिपाही -संतरीर बुटजूतार गोर, तांगुनर माधमार खाई देहा काहिल करा केईजनर एजनरू मूख ने देखिलूँ।"

24. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरागं - पृ - 190

"राईजर सतिरे गांधीयेऊ हेनु ब्रिटिश जेन सरकारकु कँपाई आसे।"

25. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 84

26. वहीं, पृ - 158

27. वहीं, पृ - 138

28. वहीं, पृ - 51

29. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, पृ - 122

30. वहीं, पृ - 353

31. वहीं, पृ - 187

32. वहीं, पृ - 352

33. वहीं, पृ - 294 - 295

34. वहीं, पृ - 354

35. अलग-अलग वैतरणी , शिवप्रसाद सिंह, पृ - 34

36. वहीं, पृ - 24

37. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 184

38. वहीं, पृ - 184

39. वहीं, पृ - 174

40. वहीं, पृ - 181

41. वहीं, पृ - 56

42. वहीं, पृ - 57

43. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ - 268

44. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरागं, पृ - 191

" आलोचना प्रधान विषय आसिल दरबार गठन आरू सीमा निर्धारन करि सूकिया ज़िला एखन गठन करा। राइजो बहुत गुत खाईसिल। कारबी राइजर ऐने एकान्तिक सँहारि मई आन कोतेई देखा नासिलु।"

45. वहीं, पृ - 192

" अँ कानिर अपकारिता उपलब्धि करि प्रस्तावतुर सभाई ग्रहन करिले आरू सभार नाम कारबी आ-दरबार राखिले।"

46. वहीं, पृ -192

47. कईनार मूल्य, लुम्मेई दाई, पृ - 79

48. वहीं, पृ - 91, फुटनोट से

49. वहीं, पृ, 111 - 112

50. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 255

51. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासःसामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भ,डॉ० विमल शंकर नागर, पृ - 81

52. अधूरे साक्षात्कार, नेमिचंद जैन, पृ - 165

53. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 290

54. वहीं, पृ - 120

55. वहीं, पृ - 290

56. वहीं, पृ - 171

57. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 197

58. वहीं, पृ - 219 - 220

59. वहीं, पृ - 171

60. वहीं, पृ - 262

61. वहीं, पृ - 210

62. वहीं, पृ - 298

63. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, कांति वर्मा, पृ - 194

64. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, पृ - 177

65. वहीं, पृ - 177

66. वहीं, पृ - 282

67. वहीं, पृ - 355

68. वहीं, पृ - 269

69. वहीं, पृ - 297

70. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 196

71. वहीं, पृ - 93

72. वहीं, पृ - 447

73. वहीं, पृ - 448

74. वहीं, पृ - 36

75. वहीं, पृ - 59

76. वहीं, पृ - 48

77. वहीं, पृ - 245

78. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ - 54

79. वहीं, पृ - 48

80. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 255

81. कपिली परिया साधु, नवकांत बरूआ, पृ - 47

82. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 299

83. वहीं, पृ - 299

84. वहीं, पृ - 118

85. वहीं, पृ - 59

86. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ - 50

87. वहीं, पृ - 372

88. वहीं, पृ - 302

89. वहीं, पृ - 35

90. वहीं, पृ - 148

91. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 86

92. वहीं, पृ - 172

93. वहीं, पृ - 381

94. वहीं, पृ - 407

95. आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, पृ - 341

96. वहीं, पृ - 226

97. वहीं, राही मासूम रज़ा, पृ - 269

98. सागर,लहरें और मनुष्य, उदयशंकर भटट, पृ - 12

99. वहीं, पृ - 96

100. कपिली परिया साधु, नवकांत बरूआ, पृ - 32

" रूपाये खेती-बातित मन दिले। कपिली शांत। बुढ़ीमाके सुता काते, रंगीलिए कापोर बोय।"

101. वहीं, पृ - 1

102. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, पृ - 9

" किशुमान निर्दिष्ट बसरर मूरे मूरे एके ठाईत खेति करा होय। उदाहरणस्वरूपे कोनो कोनो ठाईत पाँच बसरर मूरे मूरे आरू कोनो कोनो ठाईत दह इगारह बसरर मूरे - मूरे।"

103. वहीं, पृ - 32

104. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, पृ - 3

" ठाये ठाये सोवणशिरीर दुयु पारे मिरिहँतर गाँव। कतवा होयतो एपारे मिरिर गाँव आनपारे हाबि। सेई हाबि भांगी मिरिहँते भुँई करे।"

105. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 139

" जोआबसर बर लुईतर भदिया बाने खेती तेने ऊचन करिले। भादो सेहत आरू आहिनत जी कईडरा रूईसिल, ताको राति-राति जाकरूआ पहुए खाई अन्त करिले। पूरनी धान एँभराल नथकाहेतेन खूजि खाव लागिलहेतेन।"

106. वहीं, पृ - 133 - 134

" धानमुथि, गाखीरकन नेबेचिले पईचार मुख देखिवलेई नाई। धानर मोने टका, पाँच सिकि।........तेल निमख, कापोर-कानिर दामेई नोलाय।"

107. वहीं, पृ - 91

108. वहीं, पृ - 170

109. वहीं, पृ - 238

" आगते पांचमाह खेति करि सातमाह बहि खाय, एतिया सातमाह खातनिरे पांचमाह ज़ोरा नमरे।"

110. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरागं - पृ - 3

" आर खेती करि करियेई मूरर चूलिकेईडाल पकिल, किंतु कोता? आर्थिक अवस्थातोर कोनो परिवर्तनजनक सी देखा नापाले। भात मूथिर अनाटने, दुर्भिक्षई दिने दिने गांवखनर रूप सलनि करा सि देखी आहिसे।"

111. वहीं, पृ - 54

112. वहीं, पृ - 6

" धान बिसारी कारेंग रंगफारपी अथनी आहिसिल। आजि दुखाज होल हेनो लोरा-छोवालीक भात ऐमुथि मुखत दिबलेईके परानाई। धानर बतरत हेनो घुराई दिवही। गांव खनर अवस्था जे दिने दिने कि होई आहिसे।"

113. वहीं, पृ - 70

114. हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ - 33

115. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 170

116. वहीं, पृ - 173

117. वहीं, पृ - 187 - 193

118. वहीं, पृ - 117

119. वहीं, पृ - 229

120. वहीं, पृ - 298

121. वहीं, पृ - 9 -10

122. वहीं, पृ - 134

123. वहीं, पृ - 122 - 23

124. अलग-अलग वैतरणी, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, पृ - 23

125. वहीं, पृ - 59

126. वहीं, पृ - 174

127. वहीं, पृ - 403

128. वहीं, पृ - 75

129. आधा गाँव, राही मासूम रजा, पृ - 307

130. वहीं, पृ - 205

131. वहीं, पृ - 311

132. वहीं, पृ - 345

133. वहीं, पृ - 350

134. वहीं, पृ - 354

135. कब तक पुकारूँ , रांगेय राघव, पृ - 123

136. वहीं, पृ - 123

137. हिन्दी उपन्यासः एक अंतर्यात्रा, रामदाश मिश्र, पृ - 33

138. हिन्दी साहित्यः परिवर्तन के सौ वर्ष, ओंकारनाथ श्रीवास्तव, पृ - 115

139. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 122

140. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 75

141. वहीं, पृ - 96

142. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 142 - 43

143. वहीं, पृ - 122

" माटी दूडरामान घटि महाजनर उचरत आसिल। दोकानर ऊठना खाई, सेई केईडराउ एकेबारे दि दिले। लेखा-पढ़ा नाई। पटाखनके शोधाई दिले।"

144. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरागं, पृ - 142

" महाजन, एईतो अन्याय होइसे नेकि ? पाल्लात भरि दिया आमि देखा नाई। आजिहे देखीलो। ऐइतो केने धरनर उजन लले।"

145. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 299

146. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 485

147. आधा गाँव, राही मासूम रजा, पृ - 10

148. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, त्रिभुवन सिंह, पृ - 450

149. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 289

150. वहीं, लीला गोगोई, पृ - 240

" ताक पढ़ावलेईके हाथीजनी बेची दिलो। साँचतीया धन शेष करिलो। डाक्टर हौय गांवर रोग निरामय करिबलोई सि नाहिल। गांवर केचुँ गाँतरपरा उलाई नगरर मूकलि पालेगोई।"

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में सांस्कृतिक-धार्मिक चेतना

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में सांस्कृतिक धार्मिक चेतना

सांस्कृतिक परिवेश

प्रत्येक समाज की अपनी एक निर्दिष्ट संस्कृति होती है जिसको जाने बिना हम उस समाज के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ रहते हैं। संस्कृति एक सामाजिक विरासत के रूप में प्रत्येक अंचल जीवन में व्याप्त है। अंचल में व्याप्त परम्परा, आदर्श, संस्कार, रूढ़ियाँ, प्रथाएँ, जीवन रीति, आचार-विचार, खान-पान, रीति-रिवाज़ आदि का सुसंस्कृत संश्लिष्ट रूप संस्कृति है।

भारतीय संस्कृति का सच्चा स्वरूप ग्रामीण जीवन में ही प्रतिबिम्बित होता है। ग्रामीण कलाएँ, पर्व, त्योहार, रूढ़ियाँ, प्रथाएँ आदि विभिन्न तत्त्वों का सहयोग संस्कृति के आधार में विद्यमान है। ये सभी तत्त्व ग्रामीण अंचल की एकता और अखंडता के सूचक है। भारतीय ग्रामीण अंचल का मूल स्त्रोत कृषि है। अतः अंचल का सारा सांस्कृतिक प्रसाद कृषि एवं ग्राम जीवन में परिव्याप्त है। डॉ० ज्ञानचंद गुप्त का इस विषय में कहना है कि - " मनुष्य के रूप में एक सामाजिक सदस्य के नाते जो वह करता है, सोचता है, वह सब जटिल सांस्कृतिक चक्र से बंधा है। संस्कृति ही वह आधार है, जिसके माध्यम से व्यक्ति ज्ञान, कला, नैतिकता, प्रथाएँ एवं परम्पराएँ सीखता है।"[1] अतः यह कहना उचित प्रतीत होता है कि आंचलिक उपन्यासों में भारत की प्राचीन संस्कृति को उभारने का पूर्ण प्रयास किया गया है। भारतीय आंचलिक समाज में प्राचीन व नवीन संस्कृति का संघर्ष देखा गया है। नव शिक्षा, नया भावबोध, नई सामाजिक व्यवस्था, विज्ञान का प्रचार आदि से अंचलों की संस्कृति में परिवर्तन हो रहा है। अंचल वासियों के आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, उत्सव त्योहार वहीं है किंतु परिस्थिति के अनुसार उनमें परिवर्तन की हल्की सी रेखा अंकुरित होती हुई दिखाई दे रही है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति एक धरोहर के रूप में पिछड़े ग्रामों में सुरक्षित है। अतएव हमें प्राचीन संस्कृति के दर्शन ग्रामों में ही होते है।

मेला, उत्सव

ग्रामीण अंचलों के पर्व, त्यौहार, मेले आदि उत्सव के अंग है। ग्राम-जीवन में मेलों-त्योहारों की प्रथा, सांस्कृतिक प्रथा है। सामाजिक जीवन से इनका अटूट संबंध है। उत्सव प्रत्येक जन समुदाय की

संस्कृति एवं परम्परा को द्योतित करने वाली इकाई है। हमारी संस्कृति का मूल स्त्रोत कृषि है अतः कृषि संस्कृति से अधिकांश ग्रामीण उत्सवों का सीधा संबंध है। इसलिए कृषि के काम से छुटकारा मिलने तथा धन-धान्य से घर-खलिहान भरा-पूरा होने पर अधिकांश ग्रामीण उत्सव एवं त्योहार मनाते हैं। जीवन की आनंद-रस-धारा के सनातन स्त्रोत और संस्कृति के मेरूदण्ड हमारे त्योहार और पर्वोत्सव है।

ग्रामीण समुदाय मेले के प्रति विशेष रूचि प्रद्धर्शित करता है और इनका सांस्कृतिक महत्व भी है। मेला ग्रामीण अंचलों में एक विशेष प्रकार का आनंद और उल्लास की छटा लेकर आता है। यह मेले किसी विशिष्ट त्योहार के दिन लगते है या किसी अन्य सांस्कृतिक महत्व को प्रतिष्ठित करने के उपलक्ष में लगते है। 'अलग-अलग वैतरणी' में करैता गांव का मेला, अंचल की सांस्कृतिक भावना को उभारता है। उपन्यास के प्रारंभ में मेले का जो चित्रांकन किया गया है वह हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित किसी भी मेले से अधिक उदात्त, सांस्कृतिक, आधुनिक और विशाल है। करैता गांव के देवीधाम वाले मेले का प्रथम अध्याय पूरे उपन्यास की एक सांस्कृतिक भूमिका की अभिव्यक्ति है। रामनवमी को मनाए जाने वाले इस मेले के पीछे कई वर्षों की आस्था परम्परागत रूप से पनप रही है। प्रतिवर्ष निसंतान स्त्रियों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। देवी-मंदिर की देहरी पर माथा झुकाने के पीछे अंचलवासियों के विश्वास व आस्था का भाव जाग्रत होता दिखाई पड़ता है। शिवप्रसादसिंह जी ने मेले का सजीव चित्रावलियों के द्वारा जो वर्णन किया है वह ग्राम जीवन की सम्पूर्ण समसामयिक अभिव्यक्ति है। मेले का वर्णन इस प्रकार से किया गया है- " देवीकुण्ड के चारों कगारों पर आदमी। मंदिर के इर्द-गिर्द आदमी। चौतरफ़ा फूटनेवाले रास्तों पर आदमी। रास्ते-बेरास्ते पेड़ों के नीचे,सर्वत्र आदमी-ही-आदमी। इनमें मर्द कम, औरतें और बच्चे ज्यादा। .... तरह-तरह की काली, गोरी, गन्दुमी-नवचौ, अधेड़, बूढ़ी। एक-एक के साथ बच्चे-बच्चियों की लम्बी कतार। एक का हाथ एक पकड़े। इंजन के साथ जुड़े मालगाड़ी के डब्बों की तरह, हिलते-डुलते, लड़खड़ाते घिसटते बच्चे-बच्चे। रास्ते, बेरास्ते चलती इन मालगाड़ियों का आपस में टकराना स्वाभाविक है।"[2]

वर्तमान समय में मेले का वास्तविक स्वरूप कहीं लुप्त हो गया है। आज व्यक्ति के जीवन में समस्याओं और जटिलताओं की संकुलता इतनी बढ़ गयी है कि वह मेले की भीड़ में भी अकेला हो जाता है। स्वतंत्रता के बाद यह मनोवृत्तिगत ह्रास बहुत तीव्रता से हुआ है। मेले में लोगों का जागृत

सामूहिक बोध प्रकट होता है। इसमें सब तरह के लोग भाग लेते हैं। कुछ लोगों के करतूतों से कभी-कभी मेले में संघर्ष उत्पन्न होता है। करैता के मेले में औरतों से छेड़खानी होती है। करैता की किसी शोख लड़की से छेड़खानी करने के कारण मारपीट और खून-खराबा इस मेले का सालाना रिवाज था।"[3]

इन सबके बावज़ूद ग्रामीण जनता का मेलों के प्रति आकर्षण कम नहीं हुआ है। मेलों में ग्रामीण जनता बड़े हर्ष-उल्लास से भाग लेती है। गांववालों के लिए मेले उनके बाज़ार भी है, त्योहार भी है और सामुहिक उत्सव भी।

भारतीय ग्रामीण कृषक का जीवन चाहे कितने ही दुखों से भरा हुआ हो, किंतु त्योहार, उत्सव आदि को वे बड़े ही उत्साह-उमंग से मनाते हैं। कृषक जीवन के कुछ अपने विशेष पर्व होते है। 'मैला आंचल'में रेणु ने कई प्रकार के त्योहारों, पर्वों का उल्लेख किया है। मिथिला अंचल में एक पर्व है - खम्हार यानि खलिहान, जिसमें धान की फसल का लेखा-जोखा होता है। साधारण किसान तो घाटे में रहते है, लेकिन जमींदार की मौज होती है, सो उसके लिए जश्न का दिन होता है। उसके घर में होता है मिथिला अंचल का प्रसिद्ध लोकनृत्य बिदापत नाच।[4]

इसी प्रकार बिहार अंचल में 'सिरवा पर्व' और 'सतुआनी पर्व' भी बड़ी ही धूमधाम से मनाया जाता है। सिरवा पर्व पर मछलियाँ पकड़ने का रिवाज़ है, जबकि सतुआनी पर्व के दिन लोग सत्तू खाकर रहते हैं। इस संबंध में रेणु का कहना है कि - " कल पड़मान में 'मछमरी' होगी -मछमरी अर्थात् मछली का शिकार। आज चैत संक्रांति है। कल पहली बैशाख,साल का पहला दिन। कल सभी गांव के लोग सामुहिक रूप से मछली का शिकार करेंगे। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी टापी और जाल लेकर सुबह ही निकलेंगे। आज दोपहर को सत्तु खाएँगे। सतुआनी पर्व है आज। आज रात की बनी हुई चीज़ें कल खाएँगे। कल चूल्हा नहीं जलेगा। बारों मास चूल्हा जलाने के लिए यह आवश्यक है कि वर्ष के प्रथम दिन में भूमिदाह नहीं किया जाए। इस वर्ष की पकी हुई चीज़ उस वर्ष में खाएँगे।"[5]

मिथिला क्षेत्र की लोक संस्कृति में होली के त्योहार का बड़ा ही महत्व है। वह तो मुर्दा दिलों में भी जान डाल देती है। बौरे हुए आम के बाग से हवा आकर बच्चे-बूढ़ों को मतवाला बना जाती है। होली एक ऐसा त्योहार है जिसमें स्त्री-पुरूष में रोमांस खुलकर प्रकट होता है, यहाँ तक कि थोड़ी बहुत छेड़-छाड़ भी सामाजिक रूप से स्वीकृत है। 'मैला आंचल' में मेरीगंज में मनाई जाने वाली होली का खूब रंगीन चित्रण किया है। गांव की फुलिया नैहर में होली मनाना चाहती है जबकि उसका पति खलासी

उसे शहर ले जाना चाहता है। पर जब वह नहीं मानती तो खलासी जी रूठ जाते है, तब फुलिया गाने लगती है -

" नयना मिलानी करी ले रे सैयाँ, नयना मिलानी करी ले।

अबकी बेर हम नैहर रहबौ, जे दिल चाहय से करी ले।"[6]

त्योहारों और सांस्कृतिक पर्वों को मनाने की दीर्घ परम्परा भारतीय जीवन की मूल भावना है। यह सभी को एक भावनात्मक सूत्र में बाँधे रहती है। पर्व, उत्सव, त्योहार विशेष रूप में आंचलिक जीवन के प्राण तत्त्व है। 'अलग-अलग वैतरणी' में लेखक ने मकर संक्रांति के त्योहार का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है - " करैता गांव के लिए खिचड़ी का त्योहार का कुछ खास ही महत्व था। इस दिन छावनी की ओर से एक घरी रात रहे ही बांस के बड़े-बड़े ओड़ों में चिवड़ा भरकर कहरों के सिर पर उठा दिया जाता। बाद में एक आदमी एक ओड़ी में लड्डू, तिलौरे और गुड़ की भेलियाँ लिये चलता। गंगाजी के तट पर ाहुत बड़े जाज़िम पर यह सब सामान डाल दिया जाता। ..... ज़मींदार खुद अपने हाथों से लोगों को चिवड़े, मिठाई ओर तिलौरे बाँटते।"[7] इस त्योहार म`बच्चों को जाड़े के नए कपड़े ज़रूर दिए जाते है। औरतें नदी- तट के जलसे में भले ही शरीक नहीं होती थी, अपने परिवार की देखभाल करने का कार्य वहाँ जाकर ज़रूर करती थी।

दीपावली का त्योहार भी ग्रामीण अंचलों में आनंद और उल्लास के साथ मनाया जाता है। 'अलग-अलग वैतरणी' में दीपावली के आगमन से पूर्व जग्गन मिसिर की बखरी की लिपाई पोताई हो रही है। घर को खाली कर दिया गया है। सामान धूप में पड़ा है। लिपाई पोताई के बाद मिसिराइन उन्हें झाड़-पोंछ कर अपनी जगह रख रही है। बखरी के बाद बइठका पोता जाता है। लक्ष्मीजी की सवारी आने वाली है। अतः जगमग दीपों की पंक्तियाँ सुसज्जित की जाऐगी।[8]

इसके साथ ही, लेखक ने करैता गांव में मनाए जाने वाले हल-पवरी त्योहार का भी उल्लेख किया है। जिस साल अकाल पड़ता है उस साल गांव की दो सबसे लम्बी औरतें छाँटकर हल में जोती जाती है। यह हल एक घड़ी रात गए नधता है। हलवाहा भी औरत और बैल भी औंरतें ही। यह पर्व बारिश होने की कामना से मनाया जाता है, जिससे कि खेतीबाड़ी फल-फूल सकें।[9]

'आधा गाँव' में 'मोहर्रम' के उत्सव का बड़ा ही यथार्थ और सजीव वर्णन किया गया है। मोहरेम के जुलूस के बड़े ही प्रभावशाली वर्णन प्रस्तुत किए हैं जो मोहर्रम की दस बैठकों के विवरणों की भांति

ही यथार्थ है। सुंदर से सुंदर ताजिये बनाने का एक तरह का जुनून सवार हो जाता है और बड़े से बड़े ताजिए बनाने का मुकाबला शुरू हो जाता है। 'मोहर्रम' गंगौली के जीवन की धुरी है और वह खंडित जीवन को जोड़ता है। मोहर्रम के त्योहार की महत्ता को स्पष्ट करते हुए राही मासूम रज़ा लिखते है कि - " सच तो यह है कि उन दिनों सारा साल मोहर्रम के इंतजार ही में कट जाता था। ईद की खुशी अपनी जगह, मगर मोहर्रम की खुशी भी कुछ कम नहीं हुआ करती थी। बक़रीद के बाद ही से मोहर्रम की तैयारी शुरू हो जाती। दद्दा मरसिये गुनगुनाना शुरू कर देने, अम्माँ हम सब के लिए काले कपड़े सीने में लग जातीं, और बाज़ी नौहों की बयाज़ें निकालकर नयी-नयी धुनों की मश्क करने लगी।"[10]सच तो यह है कि ऐसे उत्सवों में लोगों को एक दुसरे से मिलने का अवसर प्राप्त होता है। यही कारण है कि त्योहार आम आदमी के जीवन में इतना महत्व रखता है।

'सागर, लहरें, और मनुष्य' में कोली समाज में मनाए जाने प्रमुख त्योहार 'नारियल पूर्णिमा' का बड़ा ही सजीव वर्णन मिलता है। कोलियों में नाली पूर्णिमा (नारियल पूर्णिमा) का पर्व बड़े ही धूमधाम से मनाया जाता है। लोग कागज़ के फूलों से रंग-बिरंगे नारियल सजाकर सुबह से ही जुलूस की तैयारी करते है। प्रत्येक घर से सजे हुए नारियल लेकर स्त्रियाँ गीत गाती हुई निकलती है। आगे-आगे पुरूष और पीछे-पीछे स्त्रियों का समूह गाता बजाता चलता है। जुलूस सारे बाज़ार में घूमता हुआ समुद्र के किनारे पहुँचता है और फिर सब अपनी-अपनी सजी हुई नावों में बैठकर नारियल विसर्जित करने जाते है तथा खण्डाला देवता और समुद्र की पूजा करते है। इस पर्व के विषय में लेखक का कहना है कि - " कोलीबाड़े के सब कोली मिलकर जुलूस की तैयारी करने लगे। कीचड़ में गुलाब की तरह लोगों के चेहरे खिल उठे। लोग संबेल (छोटा बाजा), झाँगरी (मृदंग), शहनाई, और नफीरी लेकर इकट्ठे हो गए। जुलूस चला।...... समुद्र के किनारे जाकर सबने नारियल चढ़ाए और खण्डाला देवता और समुद्र की पूजा की। तट की धूल माथे में लगाकर आँखों और शरीर पर पानी छिड़कर कोलियों ने समुद्र-देव को अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार रंग-बिरंगे नारियल का प्रसाद चढ़ाया और गाते-बजाते लौट आए।"[11]

इसी तरह होली का पर्व भी कोली समाज में हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। लेखक ने होली के आमोद-प्रमोद में डूबे लोगों का वर्णन इस प्रकार से किया है - " होली के दिन में बरसोवा के कोलियों में नया जीवन आ गया। छोटे-बड़े का भेदभाव भूलकर सब लोगों के चेहरे, शरीर, कपड़े, रंग, गुलाल, स्याही से पुत गए। हफ्तों पहले जगह-जगह नाचने-गाने का आयोजन हुआ। समुद्र के किनारे मैदान में,

घर के बाहर, चांदनी रात में स्त्री-पुरूष गिरोह के गिरोह नाचने के लिए इकट्ठे होने लगे।..........
आदमी औरतों पर गुलाल उड़ाते, रंग फेंकते और औरतें आदमियों पर। औरतों ने गाना शुरू किया -

हाय हाय होली खेला तू जायगो।
हाय हाय होली उरातू जायगो।

आदमियों ने भी आवाज़ लगाई -

वालाचा काल केट झेउनी जाये
वारा महिन्याची माझी हौलू बाई
खेलत जाइ ओर उरत जाई।[12]

अंचलों के पर्व, त्योहारों, मेले आदि पर, उस अंचल विशिष्ट के जन-जीवन के खास वातावरण का प्रभाव पड़ता है। इसलिए त्योहारों के बाहरी ढाँचे में फरक होना स्वाभाविक है। 'मिरि ज़ियरी' आंचलिक उपन्यास में असमिया लोगों तथा मिरि जाति के लोगों द्वारा मनाए जाने वाला प्रमुख त्योहार बिहु है। असमिया लोगों के लिए जहाँ 'बहाग बिहु' अत्यधिक महत्व रखता है वही मिरि लोगों के लिए 'नराछिगा बिहु' अपना विशिष्ट स्थान रखता है। 'बहाग बिहु' का दिन असमिया लोगों के लिए आनंद एवं उल्लास से भरा होता है। सालभर की थकान, दुख-दर्द भूलकर असमिया लोग इस दिन का पालन बड़ी निष्ठा और श्रद्धा के साथ करते है। इस संबंध में लेखक का कहना है कि - "आज बहाग-बिहु का दिन है। क्या अमीर, क्या गरीब जन, सभी के घरों में बिहु के दिन मौज-मस्ती छाई हुई है। वर्षभर की थकान, दुख-दर्द और लड़ाई-झगड़ा छोड़कर असमिया लोग बहाग बिहु के दिन उतावले हो गए है। बंधु जनों के साथ सभी एकजुट हुए है। गुरूजनों की सेवा करते हुए सभी लोग उनसे आशीर्वाद लेते है। समान आयु के लोग एकजुट होकर मौज-मस्ती करते है। आर्थिक स्थिति से सबल जनों के घरों की महिलाएँ 'पसि' का खेल खेलती है।"[13]

इसी प्रकार 'नराचिगा बिहु' उत्सव के दिन सभी मिरि जन 'मरंग घर'[14] में एकत्रित होकर सामूहिक तौर पर भोजन करते हैं। भोजन के लिए खाद्य सामग्री और बर्तन, लोगों के घरों से इकट्ठा किया जाता है। भोजन ग्रहण करने से पहले कीर्तन, पूजा-पाठ किया जाता है। भक्त जनों द्वारा लोगों को आशीर्वाद दिया जाता है। सबसे पहले भक्त भोजन ग्रहण करते है और फिर वे अपने घरों की ओर प्रस्थान करते हैं। भक्तों के जाने के बाद जवान युवक-युवतियाँ एक साथ मिलकर नाचते-गाते हैं और

बीच-बीच में थकान मिटाने के लिए शराब का पान भी करते हैं।[15]

'रंगमिलीर हाँही' में उमरू कारबी गांव में होने वाले समांगकान उत्सव का उल्लेख मिलता है। यह उत्सव कारबी जनसमुदाय की लोक संस्कृति को दर्शाता है। इसमें आस-पास के कई गांवों के लोग सम्मिलित होते है जो अपनी पारंपरिक वेश-भूषा धारण किए हुए रहते हैं। लेखक ने उल्लेख किया है कि समांगकान उत्सव में सामूहिक नृत्य प्रतियोगिता आयोजित की जाती है। अतः दूर-दूर के कई गांवों से लोग आते है। जवान युवक-युवतियाँ रंग-बिरंगे पोशाक पहनती है तथा विभिन्न प्रकार के आभूषणों से उनका शरीर ढका रहता है।

उत्सव का प्रारंभ 'रंग-केतंग' (आदर-सभा) अनुष्ठान से होता है। सर्वप्रथम उमरू के जवान दल, प्रतियोगिता में भाग लेने वाले गाँवों का स्वागत करते है और फिर उन्हें आदर पूर्वक बिठाया जाता है। इन सबके साथ ही उत्सव का श्री गणेश होता है। 'जांबिली आथन' समांगकान उत्सव का प्रतीक चिन्ह है। जांबिली आथन कारबी संस्कृति को दर्शान का एक प्रतीक है जो मोतियों-मणियों से सुसज्जित होता है। जाबिली आथन कारबी जनगोष्ठी के मूल पांच वर्ग तथा पांच लंगड़ी (गांव) का प्रतिनिधित्व करता है। सामूहिक नृत्य प्रतियोगिता में जिस गांव का दल विजेयता बनता है उसे लाऊ पात्र के साथ, एक बता तामोल-पान देकर सम्मानित किया जाता है।[16]

'नोई बोई जाए' उपन्यास में असमिया लोक संस्कृति पूर्ण रूप से मुखरित हुई है। असमिया समाज का महत्वपूर्ण उत्सव बिहु है, जो निर्धारित समय के अनुसार साल में तीन बार मनाया जता है। ये तीन रूपों में मनाये जाते हैं - माघ बिहु, ब्रहाग बिहु और काति बिहु। बिहु का त्योहार अपने साथ आनंद एवं उल्लास लेकर आता है। 'माघ बिहु' के पहले दिन को उरूका कहते है, उस दिन सभी लोग मिलकर सामूहिक भोजन का आयोजन करते है। जवान युवक पांरपरिक रूप से ढोल बजाकर बिहु नाचते और गाते है। माघ बिहु के अवसर पर 'मेज़ी' बनाया जाता है और उसके सम्मुख तामोल-पान भेंट किया जाता है। माघ बिहु के दिन सुबह सूरज निकलने से पहले ही 'मेज़ी' को जलाया जाता है और अग्नि देव की पूर्जा-अर्चना की जाती है। इसी दिन से भैसों की लड़ाई की प्रतियोगिता का भी आयोजन किया जाता है।[17]

इसी तरह बंसत ऋतु में मनाया जाने वाला 'बहाग बिहु' त्योहार,असमिया संस्कृति की धरोहर है। इस पर्व का पहला दिन 'गोरू बिहु' के नाम से मनाया जाता है। 'गोरू बिह' के दिन सबसे पहले

गायों को हल्दी और ऊड़द दाल का लेप लगाया जाता है। इसके बाद उन्हें नदी में ले जाकर नहलाया जाता हैं और उनके दीर्घ आयु और अच्छे स्वास्थय की मंगल कामना की जाती है। फिर खाने के लिए उन्हें चावल से बनी चीज़े दी जाती है। गोरू बिहु के दिन, रात्रि में मेहंदी लगाना शुभ माना जाता है। इसी दिन से ही हुचौरी गाना प्रारंभ होता है। हुचौरी गाने वालों को सम्मान के लिए गमछा, सैलेंग कपड़ा और नकद रूपए दिए जाते है। इसके अगले दिन गांवों में 'मानुह बिहु' मनाया जाता है। इसी दिन से है असमिया समाज में नववर्ष का प्रारभं होता है। लोगों का मानना है कि इस दिन एक सौ एक साग खाना शुभ होता है। ग्रामीण जनों का यह मानना है कि - " बिहु का आगमन लोगों के मन का मैल धो देता है। नए साल में, नई आशा के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। .... हुचौरी गाकर गांव के लोग सभी को आशीर्वाद देते है। साथ ही यह आशा कि जाती है कि नये साल में महामारी, सुखे-बाढ़, आंधी-तूफ़ान से निर्वारण प्राप्त हो तथा पठार में धान, तालाब में मछली, बाड़ी में तामोल-पान की भरपूर मैदावार हो।" [19]

इसके साथ ही 'काति बिहु' के दिन घर की लिपाई-पोताई की जाती है। घर के कपड़ों की धुलाई की जाती है। इसके पश्चात् औरतें नदी में नहाने जाती है। आस-पास की जगह को साफ़ सुथरा किया जाता है। इस दिन तुलसी का पौधा लगाया जाता है और उसके नीचे दीया जलाया जाता है। इसके अलावा भँराल घर में (देहरी), पठार में, रसोईघर में भी एक-एक दीया जलाया जाता है और सबकी मंगल कामना की जाती है।"[20]

असमिया ग्रामीण समाज में 'भाउना और रास' उत्सव का विशेष स्थान है। यह असमिया संस्कृति के विविध पहलुओं को दर्शाने में सहायक है। 'भाउना' में किसी पौराणिक विषय को आधार बनाकर, कलाकारों द्वारा उसका अभिनय किया जाता है। भाउना का अभिन्न अंग गायन-बायन है। कुछ नाटकों में 'शुत्रधार' की भूमिका भी। अहं होती है और वह कहानी को आगे बढ़ाने का कार्य कर्ता है। 'नोई बोई जाए' में भाउना और रास उत्सव का वर्णन मिलता है। रास उत्सव का आयोजन कार्तिक पूर्णिमा के दिन किया जाता है जिसमें कृष्ण जीवन के विविध लीलाओं का नाट्य रूप दिखाया जाता है।[21]

असमिया ग्रामीण समाज कृषि प्रधान है, जिसकी मुख्य पैदावार शाली धान की खेती है। धान की कटाई के पश्चात् सभी गांववाले आपस में मिलकर 'नखोआ' (नए धान के चावल का भोजन) उत्सव मनाते है। 'नोई बोई जाए' में लेखक ने इस संबंध में कहा है कि - " हमारे गांव में चार बड़े उत्सव मनाए

जाते है। बैसाख में हुचौरी सभा, आषाढ़ में लखिमी सभा, अग्रहायन में नखोआ, फाल्गुन में भाउना सभा। अग्रहायन महीने के बीच में ही नखोआ का आयोजन किया गया। नखुआ मतलब सामूहिक नखोआ।"[22]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों म मेले, पर्व, त्योहार, उत्सवों के प्रति लोगो का विशिष्ट आकर्षण दिखाई पड़ता है। सभी ग्रामीण जन अनेक प्रकार के उत्सव धूमधाम से मनाते है। लोगों के विश्वासों के आधार पर रूपायित ये उत्सवादि, अनुष्ठान, उनके बीच उत्तम संबंध बढ़ाने का कार्य करते है। हिन्दी के उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' में मेले का विस्तृत वर्णन मिलता है इसके विपरीत असमिया आंचलिक उपन्यासों में मेले का कोई वर्णन नहीं मिलता। हाँ, परतुं इतना अवश्य है कि जब 14 जनवरी को मकर संक्रांति का पर्व मनाया जाता है, उसी दिन असमिया समाज में 'माघ बिहु' का त्योहार हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। इन त्योहारों का उद्देश्य जहाँ एक ओर अपने अंचलों की संस्कृति को उज़ागर करना है, वही दूसरी ओर एक-दुसरे से मिलने का अवसर प्रदान करना भी है जिससे आपसी प्रेम, मेल-मिलाप की भावना सदैव बनी रहें। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण जीवन में सामाजिक बोध पैदा करने में उत्सव और त्योहारों का अपना विशिष्ट स्थान है। जीवन के दोनों छोरों को जोड़ने के लिए व्याकुल एवं व्यस्त ग्राम-जीवन में उल्लास एवं हर्ष पैदा करनेवाले उत्सव जैसे विरले ही प्रसंग आते है। अपनी व्यथा भूलने के लिए जो भी मौका इनको प्राप्त होता है, उसका सदुपयोग वे करते है और अनेक प्रकार के उत्सव और त्योहार ग्राम समाज में मनाए जाते हैं।

विविध संस्कार

प्रत्येक अंचल के सांस्कृतिक जीवन में विविधता पाई जाती है। मानव समाज को अपने विविध संस्कार, प्राचीन पीढ़ियों से विरासत के रूप में प्राप्त होते है। उन्हीं के आधार पर वे अपने जीवन क्रम का निर्धारण करते हैं। ग्रामीण अंचलों में, अनेक प्राचीन आस्थाएँ एवं संस्कार आज भी अपने प्राचीन रूपों में विद्यमान है। आंचलिक उपन्यासकारों ने प्रत्येक अंचल को अपने नैसर्गिक अवस्था में चित्रित किया है। जन्म, मृत्य और विवाह ये मानव जीवन की सबसे प्रमुख घटनाएँ है। इन सभी उपलक्षों पर विविध प्रकार के संस्कार अपनाएँ जाते हैं। जहाँ जन्म के बाद नामकरण, वर्षगाँठ आदि की रस्में होती है, वहीं विवाह के अवसरों पर द्वार-पूजा, जयमाला, सात-फेरे आदि की रस्मों का पालन किया जाता है। इसी प्रकार मृत्यु के पश्चात क्रिया-कर्म से संबंधित विधियाँ सम्पन्न की जाती है। ये विविध संस्कार हमारी संस्कृति

का अभिन्न अंग है।

घर परिवार में किसी के जन्म लेने पर हर्ष का वातावरण छा जाता है। नए मेहमान का आना, घर में नई आशाओं, खुशियों को जन्म देता है। नए मेहमान के आने की खुशी में कई प्रकार की रस्में की जाती है। 'मैला आंचल' में जब डाक्टर प्रशांत और कमला के पुत्र का जन्म होता है तब सुमरितदास घर-घर में छट्ठी के भोज का निमंत्रण देने जाता है। बच्चे के जन्म के छठवें दिन यह रस्म निभाई जाती है। अतः सुमरितदास लोगों को न्योता देते हुए कहता है कि - " .... डागडरबाबू आ गए हैं। अब कल छट्ठी के भोज का निमत्रंण देने आया हूँ तुम लोगों को। कल सुबह से ही आनन-बधावा मचेगा।"[23]

ग्रामीण अंचलों में विवाह का अत्यधिक महत्व है। अतः यह एक उत्सव के रूप में बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न किया जाता है। पूर्ण रूप से सामाजिक सहयोग से साधारणतया विवाह सम्पन्न होता है। सगाई से लेकर विवाह समारोह तक विविध प्रसंगों में परिवार के तथा समाज के लोग संबंधित होते हैं और अपनी हैसियत के अनुसार बड़ी धूम-धाम से उसको समृद्ध बनाने की कोशिश भी करते है। परम्परा यह रही है कि इस पावन अवसर पर वर पक्ष के लोग वधु के घर नाचते गाते बरात लेकर आते हैं और बरातियों का भरसक आदर-सत्कार किया जाता है। प्रायः सभी अंचलों में इस अवसर पर गाए जाने वाले गीतों का बाहुल्य है जिनमें हास-परिहास का पुट भी रहता है। उदाहरणस्वरूप 'आधा गांव' में गंगौली गांव की मुस्लिम महिलायें गीत गाकर बरात का स्वागत इस रूप में करती है -

" बड़ी धूम-गजर से आया री बना,
कुम्हार की गली हो आया री बना।
अपनी अम्मा नचाता आया री बना,
सब लोग कहें कुम्हार का जना।
बड़ी धूम-गुजर से आया री बना,
महतर की गली हो आया री बना।
अपनी दादी नचाता आया री बना,
सब लोग कहें महतर का जना।"[24]

विवाह के पश्चात् वधु को विदाई का दर्द सहना पड़ता है। अपने माता-पिता, सखी-सेहलियों, भाई-बंधुओं को छोड़कर किसी दूसरे घर जाना पड़ता है। यही कारण है कि विवाह के गीत की भांति

विदाई के गीत भी गाये जाते है। 'अलग-अलग वैतरणी' में पुष्पी की विदाई का समय पटनहिया भाभी एक औरत के कंधे पर हाथ रखे गा रही थीं -

" उनके आँखिया से लोखा गिरत होइहैं ना।
उनके गजमती अँचरा भिजँत होइहैं न।
फूल परिजवा झरत होइहैं ना।
लरिकइयाँ के नेहिया टुटत होइहैं ना।"[25]

जन्म के समान ही, मृत्यु के बाद होने वाली अनेक रस्में भी गांवों में प्रचलित है। मृत्यु के तेरहवें दिन पर विशेष प्रकार की रस्में निभाई जाती है। इसके पश्चात् सामूहिक भोज आदि होता है। हर साल, श्राद्ध कम भी आयोजित किया जाता है। 'मैला आंचल' में तहसीलदार ने अपने पिता का श्राद्ध मनाया और लोगों को भात और दही-चूड़ा खिलाया।" इसी प्रकार सिंहजी ने अपनी सास के श्राद्ध में अपनी जाति के लोगों को पूरी-मिठाई और अन्य जाति के लोगों को दही-चूड़ा खिलाया था।"[26]

इसी प्रकार 'अलग-अलग वैतरणी' में करैता गांव के ठाकुर जैपाल सिंह की मृत्यु के बाद बड़ी धूम-धाम से ठाकुर जी का श्राद्ध सम्पन्न हुआ। करैता गांव के बहुतेरे लोग, जो जैपाल सिंह से उनकी जिंदगी भर नाराज़ रहे, उनके मरने की मनौतियाँ मनाते रहे, उनके काम में शामिल हुए। भूले-बिसरे परजा-पौनियों ने भी स्वर्गीय ज़मींदार के क्रिया-कर्म में अपनी पूरी ताक़त लगाकर सहयोग दिया।"[27] सरूप भगत की बेटी दुलारी अपनी माँ की मृत्यु के पश्चात् होने वाली रस्मों का वर्णन करती हुई कहती है - " बाबू ने खुद उस लाश को नहलाया धुलवाया। लाल चुनर में लपेटा। गले में मालाएँ डालीं। टिकठी पर ढेरों चमकीले ज़री के तार पोह दिए गए थे। अगरू और लोबान की गंध से गलियाँ महमहा उठी थीं। पीछे-पीछे ढोलक, झाल, मज़ीरे बज रहे थे। खूब कीर्तन होता चला। शिवनारायनी भगत लोगों की लाशें ऐसी ही उठती हैं।"[28]

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त शिवशंकर शुक्ल के 'मोंगरा', सुरेन्द्रपाल के 'लोक लाज खोयी', हिमांशु श्रीवास्तव के 'नदी फिर वह चली', राजेन्द्र अवस्थी के 'जाने कितनी आँखें', रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर' आदि में विविध संस्कारों का उल्लेख मिलता है।

'नोई बोई जाए' में असमिया समाज द्वारा पालन किए जाने वाले विविध संस्कारों का विशद विवेचन किया गया है। औरत के गर्भवती होने पर, पांचवे महीने में उसे अपनी माँ के घर पंचामृत (घी,

शहद, चीनी, दूध, दही) खिलाया जाता है। अतः सुभागी भी पांचवे महीने में अपनी माँ के घर पंचामृत खाने जाती है। यह संस्कार बच्चे के शुभ आगमन के लिए किया जाता है।[29]

इसी प्रकार जन्म से पहले, नवें महीने में प्रसुति सभा का आयोजन किया जाता है। भगीरथ फुकन की माँ भी अपनी बहु की प्रसुति से पूर्व, गांव की औरतों को 'प्रसुति सभा' के लिए बुलाती है। इस अनुष्ठान में भीगे चावल का आटा, दूध और केले का प्रयोग होता है। सभी औरतें बच्चे की माँ को सुरक्षित प्रसव का आशीर्वाद देती है। नवें महीने में चावल का आटा, दूध पके हुए केले के प्रयोग द्वारा प्रसुति सभा का आयोजन किया जाता है।"[30]

बच्वें के जन्म के इक्कीसवें दिन बाद शुद्धीकारण की प्रथा होती है और नाम-कीर्तन किया जाता है। प्रसाद के अलावा, चावल और गुड़ के मिश्रण से बना लड्डु देना अनिवार्य माना जाता है।"[31] बच्चे के जन्म के अवसर पर घरवाले मछलियाँ दान में देते है। ऐसा माना जाता है कि मछलियाँ दान में देने से उसके वंश की वृद्धि द्रुत गति से होगी।[32]

इसी तरह विवाह से संबंधित कई प्रकार के संस्कार है। विवाह तय करने के लिए 'सराय' देने का नियम है। वर पक्ष के लोग, वधु के माता-पिता को तामुल-पान से सुसज्जित सराय भेंट करते है और यदि कन्या पक्ष को यह विवाह प्रस्ताव स्वीकृत है तो, वे भी वर पक्ष को तामोल-पान से सजे 'सराय' को भेंट में देते है। असमिया समाज में विवाह कई तरह से सम्पन्न किए जाते है। आहोम संप्रदाय के लोग मूलतः 'चकलंग' विधि से विवाह करते है और कुछ लोग 'आशीवर्दिया' विधि से। गांव के कोच, कलिता जाति के लोग 'होम यज्ञ' विधि से विवाह करते है। भुगीरथ फुकन ने अपने बेटे सोन का विवाह 'चकलंग' विधि से किया। विवाह, उत्सव सात दिनों तक चला जिसका पहला दिन 'जोरन' के नाम से जाना जाता है, जिसमें वधु को वर पक्ष की ओर से कपड़े-गहने दिए जाते है। लेखक के शब्दों में - " सात दिन की शादी, सात दिन के पहले का दिन जोरन। विवाह चकलंग विधि से किया गया। ..., जोरन के दिन, लड़की के घर में मेहमानों एवं रिश्तेदारों का तांता लग जाता है। लड़कियाँ मिलजुल कर पांरपरिक ढंग से 'जोरा नाम' (हास-परिहास का गीत) गाती है -

" मारार अलंकार

थोआँ काति करि

देऊतारार अलंकार थोआँ

तोमार निजाघरर

अलंकार आनिसे

हात-जोरे करि लोवाँ।"[33]

विवाह की एक और प्रमुख रस्म है - 'पानी तोला' जिसके अंतर्गत पास के नदी या तालाब से दुल्हे या दुल्हन की माँ लौटे में पानी भर कर लाती है और फिर उसी पानी से दुल्हे या दुल्हन को स्नान करवाया जाता है। इसके बाद उनके सिर पर सरसों का तेल डाला जाता है और वहाँ मौजूद औरतें 'जोरा-नाम' गाती है। इन सब विधियों के बाद दूल्हा नहा-धोकर, सुदंर एवं पांरपरिक वेशभूषा पहनकर तैयार हो जाता है। भगीरथ फुकन का बेटा सोन भी इन सब विधियों के सम्पन्न होने के पश्चात् हाथी पर सवार होकर दुल्हन को लेने जाता है। लेखक के शब्दों में - " बारात में जाने के लिए तीस हाथी और छह बैलगाड़ी का बंदोबस्त किया गया।"[34] इसके अलावा हमारे असमिया समाज में जो लोग भागकर शादी करते हैं उन्हें संस्कारित करने हेतु सामाजिक नीति-नियमों के अनुसार अग्नि के सामने (होम-यज्ञ) पुनः सात फेरे लेने पड़ते है। फलस्वरूप उनके प्रति समाज की अवेहलना समाप्त हो जाती है।"[35]

'रंगमिलीर हाँही' में कारबी समाज के लोग विवाह तय करने के लिए 'लाऊ पात्र' (लोकी से बना हुआ पात्र) भेंट स्वरूप वधु पक्ष को देते है। यदि यह विवाह प्रस्ताव वधु पक्ष को स्वीकृत है तो वे उसका स्पर्श करते हुए उसे अपने हेमफू देवता को अर्पित करते है। लेखक के शब्दों में - " लाऊ पात्र को स्पर्श करने का अर्थ ही है कि कन्या दान के लिए पिता तैयार है।"[36] रंगमादु गांव से जब अमफू के लिए विवाह प्रस्ताव आता है तो वर पक्ष अपने साथ 'लाऊ पात्र' भी लाते है। सारइक इस लाऊ पात्र का स्पर्श करते हुए, उसे हेमफू देवता को अर्पित करता है और विवाह प्रस्ताव स्वीकार करता है।

असमिया समाज की परम्परा के अनुसार किसी के मरणोपरांत आत्मा की शांति हेतु उसका श्राद्ध मनाया जाता है। 'नोई बोई जाए' में जब नादुकी के पिता का देहांत हुआ तो, उसके घरवलों ने आत्मा की शांति हेतु महीने भर का व्रत रखा।"[37] इसी तरह जब भगीरथ फुकन के दादाजी का निधन हुआ, तब उनके पार्थिव शरीर को, उनके पंत के लोगों एवं साथियों ने गायन-बायन एवं कीर्तन करते हुए शमशान तक पहुँचाया।"[38] भगीरथ फुकन प्रतिवर्ष अपने मृत पिता का श्राद्ध भी विधि पूर्वक सम्पन्न करता है।

इसी प्रकार भंगीरथ फुकन के ससुर की मृत्यु के बाद उनके पार्थिव शरीर को तुलसी के पेड़ के पास रखा गया तथा उनके सामने एक दीया भी जलाया गया। आस-पास के गांववालों को इसकी सूचना मिली, तो वे घरवालों को सात्वंना देने आते है। गांववाले मृतक को यह आशीर्वाद देते है कि आज से तुम जीवित प्राणियों का साथ छोड़कर मृतक प्राणियों का संग ले लो। लेखक के शब्दों में - .... गांववालों ने आशीर्वाद दिया कि आज से तुम जीवित लागों को छोड़कर मृतक का संगी बनों। पुण्य आत्मा का स्वरूप ग्रहण करते हुए, घर में रहने वाले प्राणियों पर दया करों।"[39] इसके बाद लाश को विधि पूर्वक जलाया जाता है। फिर एक महीने का व्रत रखा जाता है। मृत्यु के तीसरे दिन 'तिलनी' की विधि होती है, साथ ही इस बात का निर्णय लिया जाता है कि मृतक के श्राद्ध की विधि के दसवें दिन बाद 'दहा' और महीने बाद 'काज' की रीति निभाई जाऐगी। इसी नियमानुसार घरवालों ने श्राद्ध से जुड़ी सभी विधियाँ सम्पन्न की।

किसी के मरणोपरांत व्रत रखने की प्रथा असमिया समाज में विद्यमान है। कहीं पर एक महीने का तो कहीं सोलह दिन का, तो कहीं पर ग्यारह दिन का व्रत रखा जाता है। यह उस निर्दिष्ट समाज पर निर्भर करता है कि व्रत की अवधि कितनी हो। 'कपिली परिया साधु' में जब रूपाइ के पिता धीरसिंह की, बाढ़ के प्रकोप से मृत्यु हो जाती है तो वह ग्यारह दिन का व्रत रखता है।[40]

'मिरि जियरी' में मिरि जाति के लोग मृत्यु के पश्चात् लाश को कॉफ़िन (रूंगकुगं) में डालकर उसे ज़मीन में दफना देते है। गाछी मिरि, पानेई और जंकी को मौत के घाट उतार देते है और उनकी लाश पानी में बहा देते है। जब पानेई के घरवालों को उसकी लाश मिलती है तो वे अपने नियमानुसार क्रिया कलाप करते है - " दोनों शवों को गांव के लोग ले गए। और मिरि जाति के दस्तुर अनुसार उनका क्रिया कर्म किया गया।"[41]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में चित्रित विविध संस्कारों में पर्याप्त अंतर पाया जाता है। प्रत्येक अंचल अपनी विशिष्ट संस्कृति के अनुरूप ही अपने संस्कारों का पालन करता है। जन्म, विवाह, मरण से जुड़े संस्कारों पर उस विशिष्ट समाज की छाप साफ़ दिखाई पड़ती है। हिन्दी के उपन्यास 'मैला आंचल' में जहाँ जन्म के पश्चात् छट्ठी मनाए जाने का वर्णन मिलता है, वही 'नोई बोई जाए' में जन्म के इक्कीसवें दिन शुद्धीकरण की प्रथा होती है। विवाह के उपलक्ष में भी दोनों संस्कृतियों में साम्य-वैषम्य स्पष्ट तौर पर दिखाई देता है। विवाह के उपलक्ष में हास-

परिहास का गीत गाने का रिवाज़ हिन्दी और असमिया दोनों ही, आंचलिक उपन्यासों में मिलता है। लेकिन विवाह की विधियों में पर्याप्त अंतर है। इसी प्रकार किसी के मरणोपरांत श्राद्ध मनाने का रिवाज़ दोनों ही संस्कृतियों में पाया जाता है। आत्मा की शांति हेतु प्रत्येक वर्ष श्राद्ध मनाने का उल्लेख हिन्दी और असमिया उपन्यासों में मिलता है। हाँ इतना अवश्य है कि श्राद्ध की विधियों में पर्याप्त अंतर दृष्टिगोचर होता है परतुं मूल भावना एक ही है, वह है मृतक की आत्मा की शांति। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में इन संस्कारों को सम्पन्न किए जाने की विधियों में पर्याप्त अंतर होते हुए भी, उसके पीछे निहित भावना में समानता है।

लोकगीत एवं लोकनृत्य

अंचलवासियों के नैसर्गिक आचार-विचार की अभिव्यक्ति लोक तत्त्वों में निहित हैं। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में लोक संस्कृति के नियामक विविध उपदानों का चित्रण मिलता है। इन उपादानों के अंतर्गत मुख्यतः ग्रामीण जनता के मनोरंजन के साधन लोकगीत, लोकनृत्य, लोक वाद्य, पर्व उत्सव आदि समाविष्ट है। ये संस्कृति के पोषक भी है।

लोकगीत, जनसाधारण की भावना, उनके सवेंगों, अनुभूतियों एवं उनकी सौंदर्य भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकगीतों का उद्‌गम स्थान लोक मानस है और उनकी अभिव्यक्ति लोक भाषा के माध्यम से होती है। लोकगीत, लोककण्ठ की मौखिक परम्परा के धरोहर है या यूँ कह सकते है कि लोकगीतों के प्रणेता एवं प्रचारक लोककण्ठ है। लोकगीतों का संबंध प्रायः किसी घटना या विशिष्ट अवसर से संपृक्त होता है। प्रत्येक अंचल के लोकगीत अपनी क्षेत्रीयता को उभारती है। लोकगीत अधिकांशतः सामूहिक तौर पर गाए जाते हैं।

रेणु के 'मैला आंचल' में विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले लोकगीतों की भरमार है। लोकगीतों के माध्यम से मेरीगंज ग्राम की लोक संस्कृति अभिव्यक्त होती है। मेरीगंज ग्राम में होली एक ऐसा त्योहार है जिसे गरीब से गरीब आदमी भी अपना दुख व अभाव भूलकर हर्षोल्लास के साथ मनाता है। होली पर नाचना गाना, विशेषकर जोगीड़ा गान तथा रंग, अबीर व गुलाल में खो जाना तो ग्रामीणवासियों का विशेष आकर्षण है। होली के समय जोगीड़ा गीत बहु प्रचलित है। इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार से है -

" जोगीड़ा सर .... र र ....

जोगीड़ा सर .... र र ....

जोगी जी ताल न टूटे

तीन ताल पर ढोलक बाजे।"[42]

होली के अवसर पर गाए जाने वाले लोक गीतों में समकालीन युग-बोध भी झलकता है -

होली है ! कोई बुरा न माने, होली है !

बरसा में गड्ढे जब जाते है भर

बेंग हज़ारों उसमें करते है टर्र

वैसे ही राज आज कांग्रेस का है

लीडर बने हैं सभी कल के गीदड़ .... ।[43]

भउजिया का गीत मिथिला का लोकप्रिय लोक गान है, सो रेणु ने गाड़ीवानों के दल के माध्यम से उपन्यास में इस गान को प्रस्तुत किया है -

चढ़ली जवानी मोरा अंग अंग फड़के से

कब होइहैं गवना हमार रे भउजिया ![44]

मिथिला अंचल के मधुर लोकगीत प्रस्तुत हुए हैं - कमली प्रसंग में या होली आदि पर्वों, त्योहारों के अवसर पर। रेणु ने 'मैला आंचल' में अपने स्त्री पात्रों के मन के भावों को प्रकट करने के लिए भी अंचल के मधुर लोकगीतों का सृजनात्मक उपयोग किया है। कमली की जाँच के समय जब डॉ० प्रशातंकुमार अपना ट्रांसिस्टर उसके पास छोड़ आता है तो सविता देवी के गाए मैथिली लोकगीत को उपन्यास में रेणु ने इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि उपन्यास की सरसता बढ़ जाती है -

माइगे, हम न बियाहेब अपन गौरा के

जौं बुढ़वा होइय जमाय गे मााई।[45]

तंत्रिमाटोली में सुरंगा-सदाब्रिज की लोक कथा में गायन का प्रसंग उपन्यास में प्रस्तुत कर 'रेणु' ने मिथिला अंचल में प्रचलित लोक-कथाओं व लोकगीतों को फिर साकार कर दिया है -

.... सासू मोरा मरे हो, मरे मोरा बहिनी से,

मरे ननद जेठ मोर जी।

मरे हमर सबकुछ पलिबरवा से,

फसी गइली परेम से डोर जी। ....[46]

ग्रामीण जनता के सामायिक घटनाओं के सांस्कृतिक रूपों को रेणु ने 'मैला आंचल' में अनोखे रूप में चित्रित किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय स्वतंत्रता प्राप्ति से संबंधित अनेकों लोकगीतों का निर्माण हुआ। उदाहरणस्वरूप -

' कहीं पे छापो गांधी महतमा

चर्खा मस्त चलाते है,

कहीं पे छापो वीर जमाहिर

जेल के भीतर जाते है।

अँचरा पे छापो झंडा तेरंग।

बाँका लहरदार रे रँगरेजबा !.........[47]

इसके साथ ही रेणु ने संथालिन आदिवासी स्त्रियों के गीत भी उपन्यास में समाहित कर लिए है। संथाल टोली का माँदर (मृदंग का एक प्रकार) भी ज़ोर-शोर से बजाता है -

डा डिग्गा, डा डिग्गा !

रिं-रिं ता धिन -ता !..........[48]

इसी प्रकार वर्षा प्रारंभ होने पर सोनाई यादव अपनी झोपड़ी में बारहमासा की तान छेड़ देता है -

एहि प्रीति कारन सेत बाँधल,

सिया उदेस सिरी राम हे।

सावन हे सखी, सबद सुहावन,

रिमिझिमि बरसत मेघ है !..........[49]

इस प्रकार 'मैला आंचल' में विभिन्न प्रकार के लोकगीतों की छटा दिखाई देती है जो मिथिला की संस्कृति को अभिव्यक्त करती है।

शिवप्रसाद सिंह कृत 'अलग-अलग वैतरणी' में भी विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले लोकगीत की मिठास मौजूद है। भगत आँखे बंद करके झूम-झूम कर भक्ति का गीत गाते हैं -

" सूतल रहलीं मैं नींद भरि हो, गुरू देहलैं जगाइ।

गुरू के सबद रंग आँजन हो,लेलों नयना लगाइ।

पेन्हेलों में सुमति कँगनवा हो, देलों कुमति हटाइ।

सबद के माँग सवारों हो, दुरमति दहवाइ।।[50]

इसी प्रकार बीसू धोबी अपनी चेला-मण्डली के साथ ढोल और करताल लेकर बैठ जाता है। चारों तरफ़ स्वरों का मेला लग जाता और वह गाने लगता-

उनके अँखिया से लोखा गिरत होइहैं ना।

उनके गज मोती अँचरा भिंजत होइहैं ना।।[51]

बीसू के लोकगीत, अपनी ऊँचाई के मीनार बनाते, उधर बड़े-बूढ़ों की आखों में बीते ज़माने की कहानी घुमड़-घुमड़कर बरसने के लिए आतुर हो जाती।

सरूप भगत फसलों की कटाई के समय, सुस्ती और थकावट से बचने के लिए लोकगीत गाने लगते है जो उनमें नई ताज़गी का संचार करती है।-

जुगुनि बताये जाव, कवन विधि रहवों राम।

जुगुति बताये जाव।।

जो तुम सास बहुत दिन बितिहें

अपनी सुरतिया मोरे बहियाँ पर लिखाये जाव।

जुगुति बताये जाव। जुगुति ....।।[52]

ग्रामीण समाज में नारी का पतिव्रता होना उसके जीवन का मूलाधार है। इस मूल्य के अभाव में उसका जीवन निराधार है और समाज नाना प्रकार से नारी को प्रताड़ित करता है। 'अलग-अलग वैतरणी' में भी नारी-जीवन संबंधी यह मूल्य मिलता है। पुरूष गहने, हीरे-मोती का लोभ देकर नारी को आकर्षित करना चाहता है, परंतु नारी इसकी अवलेहना करती है और उत्तर देते हुए यह लोकगीत गाती है -

" आ रे एँ एँ एँ !

अगिया लागे गलहार बजर परे मोती लरी।

तोहरो ले पिया मोर सुघर गुलाबे के फूल छरी।।

कटबों चननवाँ के गाछि पँलगिया डसाइबि हो।

ताही पर पिया के सुताइबि, बेनिया डुलाइबि हो।।[53]

'आधा गाँव' उपन्यास के गंगौली ग्राम में, बेरोज़गारी की समस्या के कारण कलकत्ता गए हुए

पति के संबंध में ग्रामीण युवती लोकगीत की दो पंक्तियों में अपने भाव कुछ इस प्रकार से व्यक्त करती है-

" लगा झूलनी का धक्का।
बलम कलकत्ता चले गए।"[54]

'सागर, लहरें और मनुष्य' में बरसोवा के अधिकतर मछलीमार दिन भर समुद्र की लहरों पर मछली पकड़ने का कार्य करते हैं और कभी-कबार रात्रि में मनोरंजन के लिए सामूहिक रूप से नाच-गान का कार्यक्रम रखते हैं। इस अवसर पर सभी लोग उत्साह और उमंग के साथ नाचते-गाते हैं। बाऊला के घर पर भी सामूहिक नाच-गान का आयोजन होता है। उदयशंकर भट्ट कोलियों के सामूहिक नाच-गान के संबंध में लिखते है -

" एक तरफ़ से आदमी और दूसरी तरफ़ से औरतों ने नाचना गाना शुरू किया। स्त्रियाँ पानी में तैरती-सी नाचतीं, तो आदमी नाचते-नाचते जाल डालकर उन्हें पकड़ते। औरतें घूम-घूमकर जाल में फँसती तो आदमी खुशी मनाकर मस्त हो जाते। कभी-कभी स्त्री और पुरूष एक हो जाते फिर अलग हो जाते। बाजों पर गाने वाले मछुओं का गीत गा रहे थे। स्त्रियाँ स्वर और ताल पर गाती हुई प्रश्न करतीं तो आदमी उत्तर देते। गीतों द्वारा आदमी प्रश्न करते तो स्त्रियाँ गीतों में उत्तर देतीं। इस प्रकार सामुहिक नृत्य के पश्चात् सामुहिक गान होता है -

ए रे भोला सर्व ना बाला बाला रे।
जाशी तु काशी का खण्डाला, खण्डाला।
माई पित्याची कावर खण्डाला, खण्डाला।
ए रे भोला सर्व ना बाला बाला रे।[55]

लोकगीतों की तरह ही, हमारे लोक-नृत्य भी सामाजिक सांस्कृतिक कला का ही एक रूप है, भारत जैसे कृषि प्रधान देश में ग्रामीण जनों के मनोरंजन का प्रमुख साधन लोक नृत्य है। त्योहारों के अवसरों पर इनका आयोजन होता है। प्रत्येक प्रांत की अपनी विशिष्ट संस्कृति है जिसकी छाप उसके लोकनृत्यों में देखी जा सकती हैं। 'मैला आंचल' में बिहार ज़िले के मेरीगंज गाँव में होने वाले विविध नृत्यों का बड़ा जीवतं रूप अंकित हुआ है। मेरीगंज में जालिमसिंह नाच, विदापत-नाच, विदेसियाँ-नाच, बलचाही-नाच, संथाली नाच, बिहला-नाच, कम्पनी नाच आदि लोक-नृत्य प्रचलित है। गांव के विभिन्न

पात्र बड़ी अटपटी पोशाकें पहनते है, बड़ी-बड़ी विचित्र आकृतियाँ बनाते हैं। शामियाना तान दिया जाता है। चलित्तरा नाम में मोर्चा जमाता है -

धिनागि धिन्ना, तिरनागि तिन्ना,
धिनक धिनक तिटकट ग-द-धा ! ....
आहे चलहु सखि सुखराम, चलहु !
आहे कन्हैया जहाँ सखि हे,
रास रचाओल हे ! चलहु हे चलहु ![56]

इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि अंचल-विशेष के लोकगीत ओर लोकनृत्य हमारी कला और संस्कृति के सच्चे दावेदार है। गांव में होने वाले ये नृत्य और गीत वहाँ की संस्कृति के विविध रूपों के दर्शन कराने के साथ ही सामाजिकता की भावना को भी सुदृढ़ बनाती है।

लीला गोगोई कृत 'नोई बोई जाए' में असमिया जाति के प्रमुख उत्सव बिहु का विस्तृत वर्णन मिलता है। 'बोहाग बिहु' का त्योहार असमिया लोगों द्वारा बड़ी ही धुमधाम से मनाया जाता है। उन दिनों सब जगह बिहु पक्षी (कूली, कैतेकी) की आवाज़ से सारी जगह गूँज उठती है। चैत के आखिरी दिन गोरू बिहु में लोग पशुओं को नहलाते हैं। स्त्रियाँ हल्दी और उड़द दाल की पीठी रगड़कर तैयार करती है। घरों में नारियल, चावल की मिठाईयाँ बनायी जाती है। बहाग-बिहु के दिनों में, सभी गांववाले मिलकर हुचौरी गाने की परम्परा को निभाते हैं। इसका प्रारंभ गांव के नामघर (मंदिर) से होता है। उसके बाद हुचौरी दल गांव के प्रमुख व्यक्ति या पंडित के घर हुचौरी गाने पहुँचता है। हुचौरी गानेवाले दल गृहस्थ को आशीर्वाद देते हैं और गृहस्थ भी उन्हें तामोल-पान, तम्बाकु और नकद रूपए देकर सम्मान प्रदर्शित करते हैं। हुचौरी दलवाले कुछ इस प्रकार से गाते हैं -

" देऊतार पदूलित गोधांईसे माधूरी
केतेकी मेलेमलाई औ गोविन्दाई राम।[57]

हुचौरी समाप्त होते ही ये 'बिहु नाम' गाते है। बिहु नाम का प्रारंभ 'जोज़ना' से होता है-

' एता बातित नहरू एता बातित पनरू
एता बातिल खूतरा शाक,
मूरर चूलि सिंगी आशीर्वाद करिसों।

गृहस्थ कुशले थाक।'[58]

'बहाग-बिहु' के दिनों में युवक-युवतियाँ आनंद विभोर होकर नाचती और बिहु नाम गाती है -

चते गई गई बहागे पालेहि

फूलिले भेबेलि लता

कोईनो केई थाकिले उरके नपरे

रंगाली बिहुरे कथा।[59]

'बहाग-बिहु' के समय, मौसम को ध्यान में रखकर भी कई प्रकार के गीत गाए जाते है जिन्हें 'बतरर गीत' कहते है -

" आजि बिहु बिहु कालि बिहु बिहु

नाहर फूल फूलिबर बतर ;

नाहर फूलर गोंधे पाई लाहरीर तत नाई

ऊजतित भांगि जाय जँतर।"[60]

'बिहु-नाम' के माध्यम से सभी जन अपने सुख-दुख, आनंद-उल्लास तथा आतंरिक अभिव्यक्ति को वाणी प्रदान करते हैं। प्रेमी-प्रेमिकाएँ भी बिहु नाम के जरिए, एक-दुसरे से अपने प्रेम का निवेदन करते हैं। भगीरथ भी सुआगी से अपने प्रेम का निवेदन कुछ इस प्रकार से करता है -

" ऊजाई चालो मई भटीयाई चालो मई

तोरे मान सुअनि नाई,

देवे औ मारिब मनिचे मारिब

तोके जानो अकलेई पाई।"[61]

उत्सव, पर्वों के अलावा सामान्य रोजमर्रा के जीवन में भी कुछ विशेष प्रकार के लोकगीत गाए जाते है। माँ का अपने बच्चे के प्रति विशेष लगाव रहता है अतः वह बच्चे को मीठी नींद सुलाने के लिए पारंपरिक ढंग से 'लोरी' सुनाती है। सुआगी की सास भी अपने पोते को लोरी सुनाती है -

" शियाली ए नाहिवि राति

तोरे काने काति लगाम बाटि।

शियालीर मूरते मरूआ फूल,

शियाली पालेगेई रतनपुर।"[62]

परतुं जब बच्चा नहीं सोता और चांद की ओर इशारा करते हुए कुछ कहना चाहता है तो उसकी दादी गाने लगती है -

जूनबाई ए, एति तरा दिया
एति तरा नालागे दूति तरा दिया
पात नाई चोत नाई
किहतकेई दिम ....।[63]

इसी प्रकार शादी-व्याह के अवसरों पर भी कई प्रकार के गीत गाए जाते है। भगीरथ के बेटे सोन की शादी के सुअवसर पर कन्या पक्ष के बेटी और बहुएँ, वर पक्ष के लोगों को छेड़ने के लिए 'जोरा-नाम' गाती है, -

" ओ पका भेकूरि
दराघरीया मानूहबोर
जेन बोंदा मेकूरी।
बारीरे दापरे केचा तामुल थूकि
खचराई पारिब पाँरो,..........
दराधरा देकाति किमानर कथकी
फेचाँ येन करिब पाँरो।[64]

'रंगमिलीर हाँहीं', में रंगबंग तेरांग ने कारबी समाज की संस्कृति का विस्तृत विवरण दिया है। उपन्यास में यह उल्लेखित है कि 'उमरू समांगकान उत्सव' में कई गांवों के लोग नाच-गान की प्रतियोगिता में शामिल होते हैं। इसी अवसर पर सेंगतेरन यह लोकगीत गाता है -

" रंगमिली आहामफांग तांगते
थारे आंगताकसे आंगसे।
आंगताकसकेपूनांगने
थारे कांगतांगराक साईसे।
ओ - लांगसाम ओ - होई

ओ - लांगसाम ओ - होई।"[65]

ग्रामीण कृषि समाज में खेती-बाड़ी की महत्वता अत्यधिक पाई जाती है। अतः धान बोने के समय, कारबी कृषक, कैतकी चिड़िया के सुर में सुर मिलाते हुए लोक गीत गाते हैं -

ओ थंग कांक
रित नंग मेलो
वतर देरपो।[66]

इसी प्रकार कारबी समाज के लोग बरखा देवी को प्रसन्न करने हेतु ऋतु परिवर्तन का गीत गाते है जो इस प्रकार से है -

चि चि मा नेंग नेंग
चि चि नांगहांगजेंग
बांग बर रूबे हांग जेंग।[67]

यह गीत तीन भागों में विभक्त होता है और ऐसा माना जाता है कि - " गीत का पहला पद गाते ही आकाश में बिजलियाँ एवं गर्जन शुरू हो जाती है। दूसरा पद गाते ही काले मेघा आकाश में छा जाते है और तीसरा पद गाते ही बरखा देवी धरती पर पानी की वर्षा करती है।"[68]

'मिरि जियरी' में नराछिगा बिहु का उल्लेख है जिस दिन सभी युवक-युवतियाँ आपस में मिलकर 'मरंग घर' में नाचते और बिहु गीत गाते है -

" चते जाई जाई बयागे पालेहि
फूलिले बेबेलि लता।
कईनो ताके माने उरकाई नपरे
सरूति लेदेगँर कता।"[69]

बैसाख महीने में, असमिया जाति के लोगों द्वारा 'बहाग-बिहु' का पर्व मनाया जाता है। 'मिरि जियरी' में इस बात के संकेत मिलते है कि इस अवसर पर मिरी युवक-युवतियों का एक दल लक्षीमपुर शहर में जाकर, पारंपरिक असमिया बिहु नाम और बिहु नृत्य करते है -

" रंगा नोई जे देकिया तोरालि जे तोरालि
दिनत चारि आंगुल बारे।

चम्पाफूल जे लेदेंगा तोरालि जे तोरालि

नाचाई बा ताकिव कोने।"[70]

'नोई बोई जाए' में असमिया संस्कृति को उज़ागर करने में यहाँ के लोक नृत्य-बिहु का विशेष स्थान है। बैसाख महीने में मनाए जानेवाले त्योहार-बहाग बिहु के उपलक्ष में यह नृत्य किया जाता है। ग्रामीण समाज के साथ-साथ नगरों में भी बिहु नृत्य का आयोजन किया जाता है। उपन्यास के कई स्थलों पर लेखक ने बिहु नाम और बिहु नृत्य का उल्लेख किया है। लेखक ने बहाग-बिहु के सात दिन का वर्णन किया है जो इस प्रकार से है - गोसाँई बिहु, गोरू बिहु, मानुह बिहु, ताँतर बिहु, नांगलर बिहु, घरचीया जीवजन्तु बिहु, चेनेही बिहु, चेरा-बिहु।[71]

बहाग-बिहु के अवसर पर भगीरथ फूकन मन ही मन यह तय करता है कि बिहु के अंतिम दिन वह सुआगी को भगाकर ले जाएगा। अतः वह सोचता है कि - "सातवें दिन बिहु की विदाई होती है। केन्दुरगुरिर में सातगांव के युवक-युवतियाँ मिलकर बिहु की विदाई करने आते है। दिनभर ढोल, पेपा बजाकर बिहु नाचते और गाते है -

" राति माजे निशा बिहुतलि एरि जाम

एरि जाम पेतरे भात।

तुमि चावा आमालोई आमि

चाम तोमालोई

देहाति परिब साँत।"[72]

इसी प्रकार 'रंगमिलीर हाँही' में भी कारबी समाज में हाच्छा नृत्य और कानपि नृत्य का विशेष स्थान है। ग्रामीण जन नई फसल को लक्ष्मी का दर्जा देते है। अतः नई फसल घर आने की खुशी में हाच्छा नृत्य किया जाता है। गांव के मुखिया सारइक तेरांग के आंगन में सभी युवक-युवतियाँ मिलकर चाँद की रोशनी में हाच्छा केंकांन नृत्य करते है -

" ए - एहा - हा - हा

हुरस - हुर् कूलिया - कू - ऊक्।

ए - एहा - हा - हा

एहा - श - श

हा हेनांगपूना लूनछे।

लूनछे आंगमूंग फूदाम में।

एहा - हा - हा।

एहा - हा - हा

हुरस हुर कूलिया - कू - ऊक्।"[73]

'उमरू समांगकान उत्सव' में सामूहिक नृत्य अर्थात् कानपि नृत्य की प्रतियोगिता आयोजित की जाती हैं। अतः कई गांवों के दल इसमें शामिल होते है और मिलकर कानपि नृत्य करते हैं -

" ओ पेईया हेमो

चू आरलेंग लिलो।

होई लांगसाम ओ-होई

होई लांगसाम ओ- होई।"[74]

इसी प्रकार 'कपिली परिया साधु' में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि बैसाख महीने के दिन लालुंग (एक जाति) लोगों का बिहु त्योहार प्रारंभ होता है। इस अवसर पर जवान युवतियाँ नाचती है। कपिली के दुसरे पार से युवक उन्हें छेड़ते और वे चिल्लाने लगती है। कहने का तात्पर्य़ यह है कि युवक-युवतियों में परस्पर हास-परिहास का परिवेश बना रहता है और वे इसका आनंद उठाते है।[75]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया आंचलिक उपन्यासों में चित्रित लोकगीत व लोकनृत्य का कार्यक्रम समता व सहयोग के भाव को बढ़ावा देता है। हिन्दी उपन्यासो में यह दर्शाया गया है कि होली आदि अवसरों पर सम्मिलित रूप से नाचने-गाने का आयोजन छोटे-बड़े का आपसी भेद-भाव भुलाने में सहयोग देता है। 'मैला आंचल' और 'सागर लहरें मनुष्य' में होली के अवसर पर गाए जाने वाले गीत ग्रामीण जनों में नवजीवन व नवस्फूति का संचार करते है। हिन्दी और असमिया आंचलिक उपन्यासों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि लोगों के जीवन में विवाह का अत्यधिक महत्व होने के कारण यह एक उत्सव के रूप में बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न होता है। इस अवसर पर ग्रामीण जन किई प्रकार के गीत गाते हैं जिनमें छेड़छाड़, हास-परिहास, विदाई का गीत सम्मिलित होता है। असमिया समाज में बिहु के अवसर पर कई प्रकार के लोक गीत और नृत्य का प्रचलन पाया जाता है, इधर हिन्दी उपन्यासों में भी विभिन्न अवसरों के लिए कई प्रकार के लोकगीत-नृत्य प्रचलित है।

लोकउपकरण

लोकगीतों व लोकनृत्यों के अतिरिक्त लोकउपकरण भी जनजातीय समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की संवाहक है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। अतः ग्रामीण अंचलों में कृषि से संबंधित उपकरण ही प्रमुख मात्रा में उपलब्ध होते है। जैसे हल, जुआठ, ढेकीं, चूल्हा नाधा-पैना, लबेदा आदि।

'अलग-अलग वैतरणी' में कृषि प्रक्रिया के दौरान प्रयुक्त होने वाले लोकउपकरण का वर्णन देते हुए लेखक कहते है -" जग्गन अपना निर्णय सुनाकर काम-काजी आदमी की तरह पटनी से हल, जुआठ, नाधा-पैना उतारने पतारने लगे। उसके बाद महीने भर तक जैसे कुछ न हुआ। हल चला। खेत बोये गये। पाँच बीघे खेत में रोपा हुआ धान कटा। घर में ढेंकी चलने लगी। सुरना की औरत और बहिन कबूतरी दोनों धान कूटने आतीं। भाभी काँड़ी के पास बैठी अधकुटे धान को चलाती रहती। सूप से पछोर-पछोर कर चावल-भूसी अलगाती रहतीं।"[76]

एक अन्य उदाहरण देखिए -

" दिनभर चमार-चमारिनें इस-उस गृहस्थ के खेत में जाकर कटिया लबनी करतीं। बन्नी में फ़सल का जो 'डाँठ' मिलता, झिनकू के खंडहर में रखा जाता। सारा खंडहर गोबर से लीप-पोत कर साफ़ कर दिया गया। रातभर चमारिनें लबेदा से पीट-पीट कर अनाज अलगातीं।"[77]

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण अंचलों में ढेंकी एक ऐसा लोकउपकरण है जो धान कूटने के लिए प्रयुक्त होता है। लबेदा का सहारा लेकर अनाज को पीट-पीट कर अलग किया जाता है। इसी प्रकार 'चूल्हा' भी ग्रामीण जीवन में प्रयुक्त होने वाला सबसे प्रमुख लोकउपकरण है। चूल्हें का प्रयोग खाना पकानें के लिए किया जाता है। लगभग सभी आंचलिक उपन्यासों में 'चूल्हे' का विवरण मिलता है।

'कब तक पुकारूँ' में खानाबदोश करनट जाति के लोगों द्वारा चूल्हें का वर्णन मिलता है - " चार खाने वाले थे। वही आध-आधा सेर का हिसाब हम लोगों के लिए काफ़ी था। रोटियाँ उसने ईटों के चूल्हें पर तवा रखके उसपर गरम-गरम रख छोड़ी थी।"[78]

'मैला आंचल' में कई स्थलों पर 'चूल्हें' के प्रयोग का विवरण मिलता है। एक उदाहरण देखिए - ' प्यारू ठीक कहता था, डागडर लोग हलवाई की बनाई हुई पूड़ी-जलेबी नहीं खाते है। 'कल के चूल्हे' पर प्यारू डागडरबाबू के लिए भात बना रहा है।"[79]एक अन्य उदाहरण देखिए - " मछली-मांस

आश्रम में न तो बनाया - धोया जाता है र न चूल्हे पर पकता ही है।" [80]

"अलग-अलग वैतरणी" में भी 'चूल्हें' का उल्लेख मिलता है - " सारा गांव देव स्थान में एकत्रित है। बीचोबीच लकलक जलते चूल्हे पर भारी सा कड़ाह धरा है। तेल से भरा। खोलता हुआ।" [81]

बरसोवा के मछियारों की जनजाति पर आधारित उपन्यास 'सागर, लहरें और मनुष्य' में मछुवारों द्वारा मछली परड़ने के लिए कुछ लोकउपकरणों का प्रयोग किया जाता है जिसका विवरण देते हुए लेखक कहता है कि - " मचवे का सुकाणु (पतवार) रामा कोली के हाथ में था। वह उसे सँभालने में उस्ताद माना जाता था। शीड (मस्तूल) काठी (पाल), परवान (जिससे मस्तूल बाँधा जाता है), बल्ली, डोल (जाल), खाँभा (मछली पकड़ने की रस्सी, सब नये थे।" [82]

असमिया आंचलिक उपन्यास 'मिरि जियरी' में जंकी और पानेई, दोनों ही खेतों की रखवाली करने के लिए बाँस से बने 'टका' का प्रयोग करते है। ग्रामीण अंचलों में अकसर इसका प्रयोग पशू-पक्षियों को खतों से दूर रखने के लिए किया जाता है। इसकी थक-थक की ध्वनि से चिड़िया या अन्य कोई जानवर खेतों के निकट नहीं आते और खेती-बाड़ी को कोई नुकसान नहीं पहुँचता।[83] 'कुदाल' भी ग्रामीण अंचलों में प्रयुक्त होने वाला एक प्रमुख लोकउपकरण है। इससे खेतों और ज़मीन की खुदाई की जाती है। जंकी भी 'कुदाल' की मदद से आलु की खेती करता है। [84]

'कईनार मूल्य' में 'ओखली' के प्रयोग द्वारा धान से चावल को अलग किए जाने का वर्णन मिलता है। लेखक के शब्दों में - " गुमबा ने सुखे हुए धान को 'ओखली' में डालकर उससे चावल को अलग करने का प्रयास किया।" [85]

'कपिली परिया साधु' में इस बात का उल्लेख मिलता है कि मछुवारे बड़े जाल (बाघ जाल) का प्रयोग मछली पकड़ने के लिए करते है।[86] इसके साथ ही रूपाइ खेत जोतने के लिए, हल, कुदाल आदि लोकउपकरणों का व्यवहार करता है। लेखक के शब्दों में - " रूपाइ दुगने उत्साह के साथ खेती करता है। हल चलाता है और कुदाल का प्रयोग करता है।" [87]

'रंगमिलीर हाँही' में कारबी समाज में प्रयुक्त होने वाले कई लोकउपकरणों का विवरण मिलता है। ग्रामीण अंचल में पांरपरिक ढंग के कपड़े बुनने के लिए 'ताँत' का उपयोग किया जाता है। अमफू अपनी ताँतशाल में पांरपरिक कपड़ों पर सुंदर फूल बुनती है जिसे 'फंरंग आंगसू' कहते हैं।[88] इसी प्रकार कारबी समाज में नए धान के घर आने पर जवान युवक-युवतियाँ 'हाच्छा नृत्य' करते हैं। इस दौरान

वे मद का भी पान करते है। अतः शराब को छानने के लिए बांस से बनी 'छकनी' का उपयोग करते है जिसे 'सीखनेरे' कहते हैं।[89] इसके साथ ही शराब के प्रवाह को आसान बनाने के लिए लकड़ी का पात्र बनाया जाता है जिसके एक सिरे पर नली लगी होती है। इसी के सहारे शराब आसानी से डाला जाता है। इसे 'सेरो' कहते है।[90]

'नोई बोई जाए' में 'ढेंकी' नामक लोकउपकरण के प्रयोग किए जाने का उल्लेख कई स्थलों पर मिलता है। ढेंकी का प्रयोग मुख्यतः धान कूटने के लिए किया जाता है। जब सुआगी धान कूटने के लिए ढेंकी चलाती है, तब उसकी माँ 'छलनी' और 'कूला' की मदद से धान से चावल को अलग करती है और जब उसकी माँ ढेंकी चलाती है तो सुआगी 'छलनी' और कूला का प्रयोग करना सीखती है।[91]

असमिया ग्रामीण समाज में 'ताँत' नामक लोकउपकरण का व्यवहार कपड़ा बुनने के लिए किया जाता है। 'ताँत' की सहायता से ही, असमिया समाज में व्यावहारित होने वाले समस्त परिधानों को तैयार किया जाता है। जैसे गमछा, मेखला, चादर इत्यादि। ताँत के उपादान समुहों में कानमारि, माको, दोरपति, चालिमारि, जखला ब, गरका, तोलोठा आदि आते हैं।[92] 'गन्ने का रस' निकालने के लिए 'कोल्हू' का प्रयोग किया जाता है। भगीरथ फुकन गन्ने के खेतों में ही 'कोल्हु' की मदद से गन्ने का रस निकालता है तथा उसको उबालकार गुड़ बनाता है। 'कोल्हू' के उपादान समूहों में -भीम, क़ातरि आदि आते है।[93] इसी प्रकार मछली पकड़ने के लिए जाकोई, जुलूकी, पलो, परंगी जाल, घोकोटा जाल आदि का उपयोग किया जाता है।[94] इसके साथ ही, खेतों में हल और रसोई में चूल्हे के प्रयोग किए जाने का वर्णन भी मिलता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में कई प्रकार के लोकउपकरण पाए जाते है। ढेंकी, हल, चूल्हा कुछ ऐसे लोकउपकरण है जो हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में समान रूप से पाए जाते है। इसके विपरीत ताँत, कोल्हू, आदि कुछ ऐसे लोकउपकरण है जो असमिया समाज में मुख्य रूप से प्रचलित है तथा हिन्दी आंचलिक उपन्यासों में इसका विवरण नहीं मिलता। कुल मिलाकर यह कहना समीचीन होगा कि लोकउपकरणों का प्रयोग, उस विशिष्ट समाज की ज़रूरतों के आधार पर किया जाता है।

खान-पान

आंचलिक उपन्यासों में लोकजीवन व लोक संस्कृति की अभिव्यंजना जीवंत रूप में मिलती है।

ग्रामीण अंचलों की संस्कृति का मूल स्त्रोत कृषि है। अतः ग्रामीण जीवन के हर क्षेत्र में इस संस्कृति की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। उसके रहन-सहन में, खान-पान में, आचार-विचार में अपनी विशिष्ट संस्कृति का प्रभुत्व व्यापक रूप में पाया जाता है।

अंचलों की भोजन संबंधी मूल्यों पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक अंचल की कुछ विशिष्ट खाद्य-पद्वार्थ होते है जो उस अंचल की विशेषता को अभिव्यक्त करते है। बिहार प्रांत के पूर्णिया जिले के मेरीगंज ग्राम की पृष्ठभूमि पर आधारित 'मैला आंचल' में अधिकतर ग्रामीण जन सत्तू से बनी हुई चीज़े खाते है। सत्तु उनका प्रिय खाद्य है। इसके अलावा विभिन्न अवसरों पर पूड़ी-जलेबी, चावल और दही-चूड़ा खाना भी, खान-पान का अभिन्न अंग है। 'रेणु' जी ग्रामीण जनों के खान-पान का व्यौरा देते हुए कहते है कि - " बैशाख और जेठ महीने में शाम को 'तड़बन्ना' में जिंदगी का आनंद सिर्फ़ तीन आने लबनी बिकता है। चने की घुघनी, मूड़ी और प्याज, और सफ़ेद झाग से भरी हुई तबनी। ......खट-मिट्ठी, शकर- चिनियाँ और बैर-चिनियाँ ताड़ी के स्वाद अलग-अलग होते हैं। बसंती पीकर बिरले पियक्कड़ ही होश दुरूस्त रख सकते हैं।"[95]

'अलग-अलग वैतरणी' में करैता गाँव के अधिकांश लोगों का खाना नए चावल का भात और चने के साग का सालन है। इस संबंध में शिवप्रसाद सिंह जी का कहना है कि - " नये चावल का भात और चने के साग सालन। बस, यही तो था करैता के तमाम लोगों का कमरतोड़, मेहनत का फल।"[96]आम जनता के अधिकतर घरों में जौ चने के सत्तु के घोल के साथ आम की चटनी ने दोपहर के भोजन का स्थान ले लिया था। उपन्यास में इस बात के भी संकेत मिलते है कि कुछ लोग माँसाहारी भोजन का भी सेवन करते है। डोमन चमार को मुर्ग-फाँस से बचाने के लिए उसकी घरवाली ने बारह गांवों के चौधुरियों की बटोर के सामने एक मन चावल और एक पट्ठे सूअर की फ़रमाइश पूरी कीं। लेखक के शब्दों में - " सभा-स्थल से पूरब तरफ़ ज़मीन को खोदकर बड़े-बड़े दो चूल्हे बने, जिन पर भारी-भारी हडों में चावल और सुअर का गोश्त पकने लगा।"[97]

नटों के जीवन पर आधारित उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' में नटों का प्रमुख खान-पान, मांस और मदिरा है। स्त्री-पुरूष दोनों एक साथ शराब पीते हैं। लेखक के शब्दों में - " सुखराम शिकार मारकर लाता है। दोनों उस मांस को भरपेट खाते हैं।"[98]इसी प्रकार 'सागर लहरें और मनुष्य' में वंशी और उसका पति विट्ठल साथ बैठकर मछली और शराब पीते है। बरसोवा के कोलियों में होली के त्योहार

के दिन, शराब तथा पांरपरिक व्यंजन का सेवन किया जाता है। लेखक के अनुसार - " पहले आने वाले लोगों को एक गिलास शराब, भजिया बाँटी गई। घर के पीछे खाना तैयार हो रहा था। पाला, पोम्फेट, कोलवा आदि बीसियों चीज़ें बनीं। चूल्हे पर कढ़ी बन रही थी। ... भोज हुआ शराब से धुत्त कोली स्त्री-पुरूष झांगरी लिये गोल बाँधकर नाचने लगे।"[99]

राही मासुम रज़ा कृत 'आधा गांव' में पूर्वी उत्तर प्रदेश के गंगौली गांव में रहने वाल मुसलमानों के खान-पान का वर्णन मिलता है। रोटी, भात, तरह-तरह के सालन, अचार, मुरब्बा, दाल, बड़े का कालिया, अण्डे का कोरमा, गोस्त आदि भोजन का सेवन किया जाता है।[100]

'कपिली परिया साधु' में इस बात के संकेत मिलते है कि गाँव के अधिकांश लोग गरीब है और इसी कारण उनका खान-पान बिल्कुल ही सरल है। अतः वे रात के बचे हुए भात में पानी मिलाकर, अगले दिन उसी का सेवन करते है जिसे 'पईता भात' कहते है। साथ में वे आग में सेंकी हुए मछली और दाल का सत्तु जिसे (माहगुरा) कहते है, खाते है।[101] असमिया ग्रामीण समाज में दही-चूड़ा का प्रचलन अधिक मात्रा में पाया जाता है। जब रूपाइ तिलक गोसाई के घर दीक्षा ग्रहण करने जाता है तो उसे वहाँ पर नरम चावल, दही, गुड़ और केला खाने के लिए दिया जाता है।[102]

'मिरि जियरी' में मिरि समाज के सभी लोग मांस और मदिरा का सेवन करते है। मांस के अंतर्गत ये लोग सुऊर और मुर्गी खाना अधिक पसंद करते हैं।[103] जंकी को जब गाछी मिरि अपने साथ ले जाते है तब उसे वहाँ पर खाने के लिए आलू कचु और सूखा मांस दिया जाता है।[104] इसी प्रकार 'कईनार-मूल्य' में आदि समाज के खान-पान के संबंध में यह संकेत मिलते है कि ये लोग मांस और मदिरा (आपंग) का सेवन हर अवसर पर करते है। विवाह और उत्सवों में 'मैथोन' नामक जानवर को काटकर उससे खाया जाता है।[105]

'रंगमिलीर हाँही' में कारबी समाज के विविध पहलुओं को दर्शाया गया है। कारबी समाज के प्रायः सभी लोगों को मांसाहारी भोजन प्रिय है। इसके साथ वे चावल, दाल, वन साग और सूखी मछ़ली, आग में सेंककर खाते हैं।[106] 'सजून पूजा' के अवसर पर ये लोग सुऊर और मुर्गी की बलि देते हैं और इसके पश्चात् उसी का सेवन करते है। कारबी समाज के अधिकांश लोग शराब और अफीम का नशा करते हैं। विवाह, जन्म, मृत्यु, इन तीनों ही अवसरों पर शराब का व्यवहार या पान करना कारबी समाज में अपरिहार्य है।[107]

'नोई बोई जाए' में असमिया समाज में प्रचलित खाद्य-पद्दार्थों का विस्तृत विवरण मिलता है। 'नखोआ' उत्सव में ग्रामीणों द्वारा 'भोज' का आयोजन किया जाता है जिसके अंतर्गत मांस (बतख, हिरण), मछली, साग-सब्जी, भात आदि खाया जाता है।[108] बिहु उत्सव के उपलक्ष में ग्रामीण जन चावल, नारियल और तिल से बनी विविध प्रकार की चीज़े जैसे तिल पिठा, घिला पिठा, गुरूकीया पिठा, खामूचीया पिठा, ऊखुआ पिठा, भात- पिठा, सुतुलि पिठा, फेनी पिठा आदि खाते है। बिहु के दिन दही-चूड़ा और आलू खाना शुभ माना जाता है।[109]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में, खान-पान संबंधी कई प्रकार की समानताएँ-असमानताएँ पाई जाती है। असमिया समाज में, दही-चूड़े, चावल का प्रचलन अधिक पाया जाता है, वहीं 'मैला आंचल' में भी ग्रामीण द्वारा दही-चूड़ा खाया जाता है। असमिया आंचलिक उपन्यासों के अध्ययन से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि अधिकतर ग्रामीण जन मांसाहारी भोजन पंसद करते हैं। मांस, मछली का सेवन इन्हें अधिक प्रिय है। 'रंगमिलीर हाँहीं' में देवताओं को सुऊर, मुर्गी की बलि देने के पश्चात् उनके मांस को प्रसाद रूप में ग्रहण किया जाता है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में इस बात के संकेत मिलते है कि गांवों में शाकाहारी और मांसाहारी दोनों प्रकार के लोग मौजूद है। परंतु अधिकांश लोग रोटी, चावल, सब्जी, दही-दुध आदि पंसद करते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि 'अलग-अलग वैतरणी' और 'कब तक पुकारूँ' में मांसहारी भीजन खाए जाने का विवरण मिलता है।

अतं में यह कहा जा सकता है कि जहाँ हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में अधिकांश लोग शाकाहारी भोजन पंसद करते हैं वही असमिया समाज के लोग सिर्फ़ और सिर्फ़ मासांहारी भोजन का सेवन करते हैं।

रीति-रिवाज़

ग्रामीण संस्कृति अपने विशिष्ट रीति-रिवाज़ों और आचार-विचार के कारण ही नगरीय संस्कृति से पृथक प्रतीत होती है। यह ग्रामीण संस्कृति की नींव भी है। ग्रामीण जीवन को व्यक्तित्व प्रदान करने वाली शक्ति भी यही है।

बम्बई के समीप बरसोवा ग्राम में रहने वाले कोलियों की जनजाति पर आधारित 'सागर, लहरें और मनुष्य' में उनके रीति-रिवाज़ों का स्पष्ट विवरण मिलता है। कोली जाति में यह रिवाज़ प्रचलित है

कि लड़के के माँ बाप को लड़की वालों की खुशामद करनी पड़ती है। यहीं नहीं, लड़के के माता-पिता, व्याह में लड़की वालों को रूपया भी देते है। चाहे हम इसे लड़की बेचना न कहें तो भी हमको मानना पड़ेगा कि पांच सौ से लेकर पाँच हज़ार तक वाले कोली रूपया लेते हैं। अपनी बेटी दुर्गा के व्याह की बात चलाते समय गूगी कहती हैं कि - " अपने यहाँ लड़की पर रूपया मिलता है तो क्यों न रूपया लिया जाय। बिना रूपया हम लड़की नहीं देंगें। हमारी कमाऊ लड़की है।"[110]

'मैला आंचल' में भी कई प्रकार के रीति-रिवाज़ों का उल्लेख मिलता है। मेरीगंज गांव में इन्द्र महारज को रिझाने के लिए, बादल को सरसाने के लिए 'जाट-जटिट्न' का खेल खेला जाता है। यह रिवाज़ सदियों से चला आ रहा है। यह खेल सिर्फ़ और सिर्फ़ औरतों की मण्डली ही खेलती है। मर्दों को जाट-जटिट्न देखने का एकदम हक नहीं है। सभी टोलियों की स्त्रियाँ इसमें भाग लेती है और गाती है -

" सुनहरी हमर जटिनियाँ हो बाबूजी,
पातरि बाँस के छोंकिनिया हो बाबूजी,
गोरी हमर जटिनियाँ हो बाबूजी
चाननी रात के इँजोरिया हो बाबूजी।
नान्हीं-नान्हीं दैतवा, पातर ठोरबा...
छटके जैसन बिजलिया .....।[111]

'अलग अलग वैतरणी' के करैता गाँव में भी कई प्रकार के रीति-रिवाज़ प्रचलित है। किसी भी कार्य को करने से पहले बड़े-बुजुर्गों की अनुमति लेना उचित रिवाज़ माना जाता है। सुगनी जब पुष्पी को साग चुनने के लिए बुलाने आती है तो, पुष्पी यह जानते हुए भी कि उसकी माँ उसे मना नहीं करेंगी, उससे आज्ञा लेना उचित समझती है। लेखक के शब्दों में - " जाऊँ अम्मा ? पुष्पी ने यह जानते हुए कि अम्मा उसे भेजने के लिए पूरी तरह तैयार हैं न जाने से बुरा ही लगेगा उन्हें, पूछा ; क्योंकि पूछना ज़रूरी है। इस पुछने का और कोई अर्थ हो या न हो, दिल को इत्मीनान हो जाता है कि रहन-सहन में स्वच्छन्दता कोई जानकार नहीं बरती जा रही है।"[112]

'आधा गाँव' में लेखक ने शीआओं की विशिष्ट रीति-रिवाज़ों का वर्णन किया है। शरीफ़ शीआ परिवारों में माँ-बाप शादी-विवाह के सभी मामले तै करते है जिसमें रक्त-शुद्धता और कुलीनता पर

सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है। विवाह के बारे में शरीफ शीआओं में लड़के-लड़कियों से सलाह लेना आवश्यक समझा जाता है। इसी रिवाज़ के चलते, तन्नु को अब्बा महरूम की वसीयत का लिहाज़ करके सलमा से अपनी इच्छा के विपरीत विवाह करना पड़ता है और सईदा के प्रति अपने प्रेम की कुर्बानी देनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त इन परिवारों में यह रिवाज़ है कि औरतों के वास्तविक नाम के स्थान पर उन्हें बहू या दुल्हन या दुलहिन कहा जाता है। बहू अगर मालदार हुई तो उसे खिताब दिए जाते हैं - 'अजीज़ दुल्हन' और 'नफ़ीस दुल्हन'। इस संबंध में राही जी का कहना है कि - " बेनाम होना तो बहुओं की तकदीर है। फर्क़ बस इतना हो जाता है कि वह अच्छे घरानों में बो की जिल्लत से बच जाती है, वह या तो बहू कही जाती है या दुल्हन या दुलहिन।"[113]

इसी प्रकार शादी-व्याह के अवसरों पर गाली-गलोच करना एक आम रिवाज़ है। इसे शुभ माना जाता है। 'आधा गांव' में बदरून की शादी के अवसर पर परिवार की औरतें हास्य-व्यंग्य करती और उसे छेड़ती। राही के शब्दों में - " चमाईनों का गोल गन्दी-गन्दी गालियाँ गाने लगा। औरतें-शरीफ औरतें-वे गालियाँ सुनने लगीं। कभी किसी ने एक चवन्नी देकर किसी के लिए गाली गवायी। कभी उसने एक अठन्नी देकर उसे गाली गवायी। .... । और उन गालियों को सुन-सुनकर सब ठट्ठे लगाती रहीं। पान खाती रहीं।[114]

'मिरि ज़ियरी' में यह वर्णित है कि विवाह के संबंध में, इस समाज में लड़की को खरीदने तथा बेचने का रिवाज़ विद्यमान है। वर पक्ष की ओर से वधु पक्ष को नकद रूपए, और शकुन देना पड़ता है। साथ ही, होने वाले जमाई को एक साल तक अपने ससुराल में काम करके अपनी शारीरिक क्षमता को भी प्रद्धर्शित करना पड़ता है। अतः क़मूद के पिता ने पानेई को बहु बनाने के उद्देश्य से नकद रूपए दिए और इस घटना के छह-सात दिन बाद कमूद, अपने ससुर तामेद के घर दामाद बनकर काम करने आ गया।[115]

'कईनार मूल्य' में आदि समाज की विभिन्न रीति-रिवाजों का उल्लेख मिलता है। आदि समाज में सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार पिता के नाम के आखिरी अक्षरों के उच्चारण के आधार पर ही बेटे या बेटी का नामकरण किया जाता है। उदाहरणस्वरूप - गुमबा का नाम उसके पिता कारगुम के आखिरी अक्षरों के उच्चारण स्थान को ध्यान में रखकर किया गया है। बेटा एवं बेटी को प्रेम से संबोधित करने के लिए, बेटी के नाम के आखिरी अक्षर के आगे 'या' तथा बेटे के नाम के आखिरी अक्षर के आगे 'ता'

लगाए जाने का रिवाज़ प्रचलित है। अतः गुमबा को प्यार से 'याबा' भी पुकारा जाता है।[116]

'कईनार मूल्य' में आदि समाज की विभिन्न रीति-रिवाजों का उल्लेख मिलता है। आदि समाज में सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार पिता के नाम के आखिरी अक्षरों के उच्चारण के आधार पर ही बेटे या बेटी का नामकरण किया जाता है। उदाहरणस्वरूप - गुमबा का नाम उसके पिता कारगुम के आखिरी अक्षरों के उच्चारण स्थान को ध्यान में रखकर किया गया है। बेटा एवं बेटी को प्रेम से संबोधित करने के लिए, बेट्री के नाम के आख़िरी अक्षर के आगे 'या' तथा बेट्रे के नाम के आख़िरी अक्षर के आगे 'ता' लगाए जाने का रिवाज़ प्रचलित है। अतः गुमबा को प्यार से 'याबा' भी पुकारा जाता है।

विवाह मनुष्य के सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग है। आदि समाज के नियमानुसार विवाह के समय वधु पक्ष को नकद रूपए मैथोन, कास्य के बर्तन आदि वर पक्ष की ओर से दिए जाने का रिवाज़ है। अतः कारगुम ने भी जब गुमबा को बेचा तो उसे पाँच मैथोन, सात गाय, कास्य के वर्तन तथा तीन हज़ार नकद रूपए प्राप्त हुए।[117]

आदि समाज पिछड़ा और अपनी ही पांरपरिक मान्यताओं का अनुसरण करता है। अतः जब कभी आदि समाज के लोग जंगल में भोजन करते हैं या शराब पीते हैं, तो सबसे पहला भोग वनदेवता को अर्पित करते हैं। इसी रिवाज़ का पालन करते हुए कारगुम भी सर्वप्रथम शराब की कुछ बूँद्रे वन देवता को अर्पित करने के पश्चात् ही शराब ग्रहण करता है।[118]

कारबी समाज के जीवनगत पहलुओं को प्रतिफलित करने वाले उपन्यास 'रंगमिलीर हाँही' में यह वर्णित है कि इस समाज में अतिथि का सत्कार मद (शराब) द्वारा किया जाता है। हागफारला (अतिथि गृह) में अतिथियों को बैठने दिया जाता है। शराब ग्रहण करने से पहले, ये लोग सर्वप्रथम अपनी दाईने हाथ की तर्जनी अँगूली के सिरे को शराब में डुबाते है और फिर उसे बाँए हाथ के अँगूठे के ऊपर रखते हुए प्रार्थना करते है तथा इसके बाद अंगूली में लगी हुए बूँदों को चारों ओर छीटक देते हैं। इस रिवाज़ के पश्चात् ही ये लोग शराब का पान करते हैं।[119]

कारबी समाज में घर में नए धान के आने की खुशी में 'हाच्छा केकांग नृत्य' होता है। 'हाच्छा केकांग नृत्य' के संबंध में यह रिवाज़ है कि यह नृत्य सुबह होने से पहले ही समाप्त हो जाना चाहिए, नहीं तो दण्डस्वरूप तीन तम्बाकू के पत्ते देकर, दोष का निर्वारण करना पड़ता है।[120]

असमिया समाज में पान-सुपारी का विशेष महत्व है। जाने -अनजाने किसी से भूल हो जाने पर, यदि भूल करने वाला व्यक्ति सम्पूर्ण समाज के सामने पान-सुपारी का भेंट चढ़ाते हुए क्षमा याचना करें, तो उसे क्षमा दान दिया जाता है। 'नोई बोई जाए' उपन्यास में वर्णित है कि प्रेम से वशीभूत होकर भगीरथ, सुआगी को बिहु दल से भगाकर ले जाता है। परंतु उन्हें सामाजिक रूप से पति-पत्नी के रूप में मान्यता नहीं मिलती जिसके फलस्वरूप उन्हें अपने दोष का निर्वारण करना पड़ता है। अतः ऐसी परिस्थितियों में वे दोनों सारे समाज के सामने तामोल-पान और 100 रूपए नकद देकर माफ़ी माँगने के बारे में सोचते हैं।[121]

'नोई बोई जाए' में यह दर्शाया गया है कि तामोल-पान का प्रयोग, असमिया जाति की संस्कृति को दिशा प्रदान करती है। हर पर्व, त्योहार, उत्सव, शादी-व्याह, रीति-रिवाज़ को संपूर्ण बनाने में तामोल-पान का व्यवहार मंगलमय माना जाता है। विवाह एक सामाजिक गठबंधन है जो संसार चक्र को आगे ले जाता है। असमिया समाज में शादी-व्याह के अवसरों पर तामोल-पान भेंट किया जाता है। इसी के माध्यम से, विवाह का प्रस्ताव भी रखा जाता है। उदाहरणस्वरूप, बाखर के माता-पिता ने तामोल-पान के जरिए कैतकी के पिता के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा।[122]असमिया रीति के तहत, विवाह के समय यह रिवाज़ है कि घर की बड़ी बेटी और वर पक्ष के बड़े बेटे का विवाह एकसाथ सम्पन्न नहीं किया जा सकता।[123]

इसके अलावा, शादी-ब्याह के अवसरों पर केले के पेड़ लगाए जाने का रिवाज़ है। ऐसी मान्यता है कि जिस तरह केले के पेड़ निरंतर तीव्र गति से बढ़ते जाते है, ठीक उसी प्रकार वंश-परिवार भी लगातार बढ़ता रहे।[124]

असमिया समाज मूलतः कृषि प्रधान है, जिसके कारण उसे वर्षा पर निर्भर करना पड़ता है। अतः समय पर वर्षा न होने या फिर सूखा पड़ने पर, ग्रामीण जन इन्द्र देव को प्रसन्न करने के लिए "मेढ़क की शादी" का आयोजन करते हैं । इस रिवाज़ के तहत ग्रामीण औरतें मेढ़क की शादी बिल्कुल उसी ढंग से करती है जैसे मनुष्यों की जाती है। इस अवसर पर वे मेढ़क और मेघ देवता को आधार बनाकर लोकगीत भी गाती है -

" मेघ करे एगा-गुमा

भेकुलीरे विया

आजि प्रभु रक्षा करा
सूरज मुखे बाका।
भेकूलीर वियालोई आहे इन्द्रदेव
बताह वरसुनत तिति,
स्वर्गर अपेचरी नामि आहिसे
भेकूलीर विया सुनि।"[125]

असमिया ग्रामीण समाज के अधिकतर घरों में 'मुगा' नामक कीड़ा पाला जाता है। अतः यह रिवाज़ है कि मुगा पालने वाले व्यक्ति को एक महीने का व्रत रखना पड़ता है। इस दौरान वह दाड़ी-चूल नहीं काटते तथा तेल एवं खटाई का उपयोग भी नहीं करते।[126] इसी प्रकार पौष महीने में, घरों में नए धान के गुच्छे (लखिमी) लाए जाते हैं। अतः इस रीति का विशेष ध्यान रखा जाता है कि लखिमी को घर लाते समय किसी से बात नहीं करनी चाहिए। लखिमी को बिहु से एक दिन पहले ही 'देहरी' में रखा जाता है।[127]

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अध्ययन के पश्चात् यह कहा जा सकता है है कि ग्रामीण जीवन में रीति-रिवाज संबंधी अनेक छोटी-मोटी बातें प्रचलित है। हर गांव के सांस्कृतिक वातावरण के अनुसार इनमें थोड़ा बहुत अंतर भी पाया जाता है। लेकिन इन सब के पीछे की चेतना बराबर सी प्रतीत होती है। इन्द्र देव को प्रसन्न करने के लिए जहाँ 'मैला आंचल' में 'जाट-जटिट्न' का खेल खेला जाता है, वहीं 'नोई बोई जाए' में 'मेढक की शादी' का रिवाज़ प्रचलित है। जिस प्रकार 'सागर, लहरें और मनुष्य' में लड़की बेचे जाने की प्रथा है, उसी प्रकार 'कईनार मूल्य' में भी गुमबा को बेचे जाने का वर्णन मिलता है। शादी-ब्याह के अवसरों पर अन्य रीति-रिवाज़ों के साथ, हास-परिहास, गाली-गलोच का रिवाज 'आधा गांव' में वर्णित है, वहीं 'नोई बोई जाए' में भी शादी के समय जोरा नाम (हास-परिहास का गीत) गाने का रिवाज़ मौज़ूद है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दोनों संस्कृतियों में भिन्नता होते हुए भी, कुछ रीति-रिवाज़ों में समानता मौज़ूद है।

इन समानताओं के अतिरिक्त कुछ रीति-रिवाज़ों में असमानता के भी दर्शन होते है। 'रंगमिलीर हांही' में शराब से अतिथि का सत्कार किया जाता है। यह उनकी संस्कृति का अभिन्न अंग है। जन्म, विवाह, मृत्यु इन तीनों अवसरों पर शराब का सेवन अनिवार्य माना जाता है। 'कब तक पुकारूँ' में नटों द्वारा शराब पीने का वर्णन तो है, परतुं वह उनकी संस्कृति का अंग नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत इच्छा है।

असमिया समाज में जहाँ तामोल-पान का प्रयोग सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्रिया-कलापों के लिए किया जाता है, वहीं हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में इस तरह के कोई संकेत नहीं मिलते। हाँ, इतना अवश्य है कि लोग खाने की रूचि अनुसार इसका सेवन करते हैं।

धार्मिक चेतना

भारतीय ग्रामीण अंचलों में धर्म के सनातन तत्त्वों के प्रति अटूट श्रद्धा विद्यमान है। अंचलों के अधिकतर लोग आस्थावादी है। उनका सम्पूर्ण जीवन धार्मिक विचारों से प्रेरित एवं परिचालित होता है। आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के अभाव और प्राकृतिक साधनों पर निर्भरता के कारण, अंचल के लोगों में पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदि पर अटूट विश्वास है। इसी कारण अनेक देवी-देवताओं, भूत-प्रेत व जादु-टोना, भाग्यवाद आदि में भी ग्रामीणों की असीम आस्था बनी रहती है। वस्तुतः यह धार्मिक आस्था सिद्धांतों के प्रति नहीं बल्कि रूढ़िगत आचारों के प्रति हैं जिसकी आंचलिक उपन्यासों में सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। इस संदर्भ में डॉ० राजकुमारी सिंह का कहना है कि - "भारतीय ग्रामीण अंचलों में अनेक प्राचीन आस्थाएँ अब भी अपने प्राचीन रूपों में विद्यमान हैं। आंचलिक उपन्यासकारों ने प्रत्येक अंचल को अपने नैसर्गिक अवस्था में चित्रित किया है। वस्तुतः यह धर्म व संस्कृति के आधार पर वास्तविक आस्था व अंधविश्वास पूर्ण जीवन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।"[128]

अतः यह स्पष्ट है कि कृषक समाज पर धर्म का गहन प्रभाव है। धर्म उनके व्यवस्थित जीवन का मार्ग प्रशस्त करता है तथा उनमें अलौकिक शक्ति के प्रति विश्वास जगाता है। उनके जीवन का प्रत्येक हिस्सा धर्म के रंग में रंगा हुआ है। अवतारवाद, नियतिवाद, कर्मवाद आदि में उनका अटूट विश्वास है। जड़ परम्पराओं, मूढ़विश्वासों तथा गतिहीन मान्यताओं ने ग्रामीण समाज को जकड़ रखा है।

लोकविश्वास

भारतीय ग्रामीण जनता का धार्मिक विश्वास है कि धर्म मनुष्य में सत् और असत् की धारणा जगाकर उनकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक है। ग्रामीण समझता है कि उसे कोई अज्ञात, अनादि, अन्नत शक्ति संचालित कर रही है। ग्रामीण समाज में अशिक्षा तथा अज्ञान के कारण रूढ़ सत्यों की स्वीकृति होती है। ग्रामीण जीवन के अधिकांश कार्यों में लोक-विश्वास का बड़ा महत्व होता है। उसका सारा जीवन लोक-विश्वासों से भरा होता है जो उसे जीवन के आखिरी पड़ाव तक जकड़े रखता है।

ग्रामीण अंचलों में अज्ञानता, अशिक्षा के कारण लोगों में अंधविश्वास की भावना पनपती है। 'मैला

आंचल' के मेरीगंज गांव के लोग भी अंधविश्वास की बेड़ियों से जकड़े हुए है। वे वहम्, मान्यताएँ एवं अंधविश्वास के कुचक्र में अपना जीवन यापन कर रहे है। मठ के महंथ रामगुसाई की चिलम की आग से जब बीजक जल गया तो उन्होंने रोते हुए रामचरण से कहा - " रामचरन, साहेब करोध कीहिन हैं, दंड भोगना पड़ेगा। अमंगल होगा।"[129] उन दिनों गांव में हैजा फैला हुआ था, जिसका शिकार पहले मठ के एक साधु हुआ। उस साधु ने देह त्यागा तो महंथ साहब बीमार पड़े और उनकी सेवा करत करते रामचरन भी। महंथ साहब ने शाम को और रामचरण का सवेरे स्वर्गवास हो गया। अधंविश्वासी ग्रामीण जनों ने इसे बीजक जलने का परिणाम माना।

अंधविश्वासों एवं अज्ञान पर आधारित मान्यताओं के बल पर अंचलबासियों का जीवन संचालित होता है। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की कन्या कमला का कहीं भी विवाह तय नहीं हो पाता था। तीन बार कमला के विवाह के प्रयत्न किए गए परंतु कसी - न- किसी दुर्घटना के कारण विवाह न हो सका। पहली बार लड़के की माँ मर गयी, दूसरी बार दूल्हे के घर में आग लग गई और तीसरी बार दूल्हे की ही मौत हो गई। इस संबंध में मेरीगंज के लोगों का मानना है कि कमला मैया नहीं चाहती कि कमला का विवाह हो क्योंकि वह स्वयं भी कुंवारी थी।[130]

मिथ्या अंधविश्वासों के कारण कभी-कभी अंचलवासियों को अपने प्राणों की बलि देनी पड़ती है। विधवा पार्वती की माँ के गांववालों का दृढ़ं विश्वास है कि वह डायन है। चिचाय की माँ कहती है कि - " पारवती की माँ थीं। डाइन है। तीन कुल में एक को भी नहीं छोड़ा। सबको खा गई। पहले भतार को, इसके बाद देबर-देबरानी, बेटा-बेटी, सबको खा गई। अब एक नाती है, उसको भी चबा रही है।"[131] गैनू भैंसवार का मर जाना भी डायन के कारण माना जाता है - " जितिया परब की रात में कितनी बार लोगों ने इसको कोठी के जंगल के पास गोदी में बच्चा लेकर, नंगा नाचते देखा है। गेनू भैंसवार ने एक बार पकड़ने की कोशिश की थी। ऐसा झरका बान मारा कि गेनू के सारे देह में फफोले आए। दूसरे ही दिन गैनू मर गया। ..... "[132] डाक्टर प्रशांत जब गणेश का इलाज करने के लिए पारबती के माँ के घर जाता है, तब गांव की औरतें कहती है - " इस डाक्टर को काल ने घेरा है सायद।"[133] से सभी बातें वहम् और अंधविश्वास का सूचक है।

डाक्टर प्रशांत को मेरीगंज के लोगों के लोकविश्वासों से जूझना पड़ता है। लोगों को यह विश्वास है कि हैजा और मलेरिया जैसी जानलेवा बीमारियाँ, डॉ० प्रशांत की चिकित्सा का परिणाम है। इसी कारण

जातेखी काका का कहना है कि - " डाक्टर लोग ही रोग फेलाते हैं, सुई भोंककर देह में ज़हर दे देते है, आदमी हमेंशा के लिए कमज़ोर हो जाता है, हैजा के समय कूपों में दवा डाल देते हैं, गाँव - का - गाँव हैजा से समाप्त हो जाता है। कालाबुख़ार का नाम पहले लोगों ने कभी सुना था ? पूरब मुलुक कामरू कमिच्छा हासाम से कालाबुखार वालो का लहु शीशी में बंद करके यही लोग ले आए थे। आजकाल घर-पर काला बुखार फैला रहता है।"[134] इसी अंधविश्वास के कारण जब गांव में हैजा फेलता है तो कोई गांववाला सूई लगाने नहीं आता। कुओं में दवा डालते समय भी लोग दल बनाकर इसका विरोध करते है और कहते है - "चालाकी रहने दो। डाक्टर कूपों में दवा डालकर सारे गांव में हैज़ा फैलाना चाहता है। खूब समझते है।" [135]

शीआ मुसलमानों के जीवन पर आधारित आंचलिक उपन्यास 'आधा गांव' में भी ग्रामीण जनों के लोक विश्वासों का प्रमाण मिलता है। गंगौली ग्राम में इमामबड़े के संबंध में लोगों का विश्वास है कि - " हर जुमे (शुक्रबार) की रात को इसमें जिन्नात मजलिस करते है। इसलिए शाम के बाद कोई इधर से गुजरता ही नहीं था। लेकिन मोहरेम के चाँद के मानी यह होते है कि इमाम हुसैन कर्बला से हिन्दुस्तान आ गयें हैं और इमामबाड़ा जिन्नातों के हाथ से निकलकर आदमियों कब्ज़ें में आ गया है।"[136] इसी तरह गोरी दादी का विवरण देते हुए लेखक का कहना है कि - " दोपहर में तो कोई पीली कोठी का रूख ही नहीं करता था, क्योंकि मशहुर था कि गोरी दादी पर किसी जोगी का साया था । .... वह अधेड़ उम्र का एक दाढ़ी वाला था जो गोरी दादी की पट्टी पर कुहनियाँ टिकाये ज़मीन पर उकडूँ बैठा हुआ था।" [137]

करनटों की जीवन विसंगतियों को चित्रित करने वाला आंचलिक उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' में नटों के लोकविश्वासों का वर्णन मिलता है। ग्रामीण लोग रोटी को भगवान और भूखा पेट रहने को अपशगुन मानते है। इसी विश्वास के चलते मृत्यु शैया पर पड़ी प्यारी को कजरी ने कसम दिलाकर रोटियाँ खिलाई क्योंकि रोटी का अनादर अपशगुन होता है। लेखक के शब्दों में - " गांववालों में 'ले रोटी खाय ले' की बात इतनी अधिक होती है कि रोग में भी बराबर खाए जाते है। उनका ख्याल होता है कि भूखा पेट डालना बुरा होता है। न जाने यह ख्याल कितनी जाने ले डालता हैं।" [138]

मोतीझरे जैसी नाजुक बीमारी में भी हमारे अंधविश्वासी अंचलवासी झाड़े व ताबीज़ में आस्था रखते हैं, 'कब तक पुकारूँ' में बूढ़ी रामा के नाती के मोतीझरा हो गया था। वैद्य ने दवा दी परंतु कोई

फायदा नहीं हुआ। अतः वह सुखराम से कहती है कि - " सयाने ने कल झाड़ा था। ताबीज़ दिया है। बांध चुकी हुँ।"[139] इतने पर भी जब बात न बनी तो अधेड़ उम्र की रूपो ने खिरनी वाले बाबा की धूनी की राख मलने को कहा जिससे बुखार छू मंतर हो जाएगा।[140] इस अंधविश्वास के कारण ग्रामीणवासी का डाक्टर व अंग्रेजी दवाईयों के प्रति विश्वास नहीं रहता और वे बीमारी के क्षणों में झाड़-फूंक, ताबीज़ के चुंगल में फँसे रहते है।

'अलग अलग वैतरणी' में भी, ग्रामीण समाज में सदियों से चले आ रहे लोकविश्वासों की भरमार है। ग्रामीण जनों का ऐसा मानना है कि यदि रामनवमी के अवसर पर बाँझ और निपूती औरतों की भीड़ देवी-मंदिर की देहरी पर माथा झुकाये और आशीर्वाद मांगे तो उनकी मनोकामना पूरी होगी तथा देवी माँ का प्रताप उनपर सदैव बना रहेगा। शिवप्रसाद सिंह जी का इस संबंध में कहना है कि - " उधर सूरज की लाल किरणें अँजुरी-भर जवाकुसुम के फूल बिखराकर देवीधाम की देहरी पर शीशा नवातीं, इधर औरतों की भीड़ द्वार पर खड़ी होकर 'मैया' से आशीश की भीख मांगतीःखोलो ना, खोल दो माँ, अपने इन वज्र किवाड़ों को खोलकर, एक बार बाहर भी देखों, तुम्हारे सेवकों की भीड़ लगी है।"[141]

भारतीय ग्रामीण अंचलों में अज्ञानता, अशिक्षा, निर्धनता के परिणामस्वरुप कई प्रकार के अंधविश्वास अब भी जीवित है। इनका अंधविश्वास इतना पक्का होता है कि एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को विरासत में देके जाती है। 'कपिली परिया साधु' में वर्णित है कि जब तीव्र ज्वर और सांस फूलने के कारण रुपाइ के चाचा की मृत्यु हो जाती है, तब अनपढ़ गांववाले यह समझते है कि उनकी मृत्यु भूत के प्रकोप से हुई है। रुपाइ के चाचा को पहले से ही सांस फूलने की बीमारी थी और कपिली नदी में देर तक तैरने के कारण उन्हें तीव्र ज्वर की शिकायत होती है। लेकिन अंधविश्वासी ग्रामीणवासी झाड़-फूक करते है। सूखी लाल मिर्च को आग में सेंककर उसका धुआँ चारों ओर फैलाते है। उनका ऐसा मानना है कि ऐसा करने से भूत चला जाएगा। वे इस बात में भी विश्वास रखते है कि यदि लोहा साथ में रखा जाए तो भूत-प्रेत निकट नहीं आते।[142]

'रंगमिलीर हाँही' में रंगबंग तेरांग ने यह दर्शाया है कि कारबी समाज के लोग अंधविश्वास की बेड़ियों में जकड़े हुए है। कारबी समाज के लोगों की यह धारणा है कि यदि कोई उनकी धार्मिक मान्यताओ को अपमानित करेंगा तो उसे देवता का प्रकोप झेलना पड़ेगा। इस बात का उदाहरण देते हुए वे कहते है कि जब टीका पहाड़ पर, मुर साहब के आने के कुछ साल बाद बगा साहब ने 'बि-चिक्री'

के पत्थर से बने बांध को गोली से उड़ाने की चेष्टा की तो, उन्हें परिणामस्वरुप शेर का शिकार बनना पड़ा। कारबी जन ऐसा मानते है कि बगा साहब ने उनकी मान्यताओं का अपमान किया था, फलस्वरुप उन्हें 'बि-चिक्रबी' देवता का प्रकोप सहना पड़ा। वह स्वंय तो मरा ही, साथ ही आस-पास के कई गांवो में भी निरंतर शेर का आंतक छाया रहा। इस अंधविश्वास का परिणाम यह हुआ है कि लिंडकप ने अपने पुरोहित देगंजाक को उस जगह भेजकर, देवता की पूजा - अर्चना की और लंगड़ी गांव को पवित्र किया।[143]

इसके अलावा कारबी जनमानस की ऐसी मान्यता है कि किसी गाँव के 'शारथे' के अमानुषिक अत्याचार के प्रतिवादस्वरुप,जिरसंग के जवान लड़के - लड़कियों ने ऊँचे पहाड़ से एक-एक करके छलांग लगाकर आत्महत्या की थी। फलस्वरुप यही मरे हुए लोग बंदर में रुपांतरित हो गए।[144]

ग्रामीण जनमानस की अपनी-अपनी मान्यताएँ होती है। यही मान्यताएँ समय के साथ अंधविश्वास में रुपातंरित हो जाती है। 'नोई बोई जाए' में अंधविश्वास के कई रुप दिखाई देते है। ग्रामीण जन नाहर के पत्तों में मंत्र लिखकर घर के दीवार के किसी कोने पर टांग देते है। कारण, वे ऐसा मानते है कि ऐसा करने से - " आंधी, तूफ़ान, बिजली, वज्रपात से खेतों को कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा।"[145]ग्रामीण जनों में यह अंधविश्वास की भावना फैली हुई है कि, भादो महीने में यदि किसी काली गाय का बछ्ड़ा होता है तो उसके दुध का सेवन नीची जात का कोई भी व्यक्ति नहीं कर सकता। यदि ऐसा हुआ तो उसकी सात पुश्ते नरक की भागीदार होगीं।[146] इसके अलावा, लोगों में यह अंधविश्वास है कि 'गोरु बिहु' के दिन, यदि गाय अपनी गौशाला में सोती रहे तो बाढ़की संभावना कम होती है और खड़ी रहें तो बाढ़ अधिक आने की संभावना रहती है।[147]

अंधविश्वासों ने ग्रामीण जानों को जकड़ रखा है। अतः उनका ऐसा विश्वास है कि बह्यपतिवार को किसी को भी पैसे नहीं देना चाहिए। कारण वह लक्ष्मीजी की स्तुति का दिन होता है।ऐसा माना जाता है कि इस दिन पैसे देने से लक्ष्मी जी रुष्ट हो जाएगी और उनकी कृपा गृहस्थ पर से समाप्त हो जाएगी। इसी कारण जब बाखर भगीरथ के घर पैसे मांगने जाता है, तब उसकी माँ बृह्यपतिवार का दिन होने के कारण पैसे देना अशुभ मानती है।[148]

हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अंचल के लोगों के बीच अंधविश्वास की भावना प्रबल है। इसका मुख्य कारण उनकी अशिक्षा तथा अज्ञानता है, जिसका चित्रण उपन्यासकारों ने किया है। कुलाचार, व्रत, व अंधविश्वासों के श्रद्धापूर्वक

पालन को ही अपना धर्म समझने वाले ग्रामीणों में परिवर्तन के लिए आग्रह व साहस की कमी होती है जो उनकी प्रगति में बाधक है। उनके विचार से परम्परागत धार्मिक व सामाजिक विश्वासों का उल्लंघन पाप है और पाप का प्रायश्चित होना ही चाहिए।

अधंविश्वास के संबंध में हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में पर्याप्त समानता है। लोगों को डाक्टर से अधिक विश्वास झांड़-फूक, ओझा, आदि पर करते है। 'मैला आंचल' में जोतखी जी की धारणा है कि डाक्टर लोग ही रोग फैलाते है और काला बुखार उन्हीं की देन है। अनेक बार ग्रामीण अंधविश्वासी शारीरिक पीड़ाओं का डाक्टर से उपचार न कराकर दैवी विश्वासों द्वारा अपना सत्यानाश करते रहते हैं। 'कब तक पुकारूँ' में प्यारी का अंत इसी अंधविश्वास के कारण हुआ। इसी तरह 'कपिली परिया साधु' में भी रुपाय के चाचा की मृत्यु का प्रबल कारण अंधविश्वास ही था। अतः यह कहा जा सकता है कि अंधविश्वास की भावना प्रत्येक समाज में पाई जाती है जिसके मूल में अज्ञानता, शिक्षा का अभाव है।

रीति रिवाज

ग्रामीण अंचलों में धर्म से जुड़े हुए रीति - रिवाज़ों की भरमार है। रीति - रिवाज़ों को अलग करके ग्राम जीवन को परिकल्पना नहीं की जा सकती। ये ग्राम - जीवन के अभिन्न अंग है। परम्परा से प्रचलित इन विश्वासों में समाज के अनुकूल एवं प्रतिकूल तत्त्व निहित है। इन रीति-रिवाजों के द्वारा ही ग्रामीण अपनी परम्परा को जीवित रखता है तथा कोई भी कार्य रीति के अनुसार नहीं होता तो वह संदेह प्रकट करता है, जिसके कारण अंधश्रद्धा पैदा होती है।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकारों ने ग्रामीण अंचलों में व्याप्त धार्मिक रीति - रिवाज़ों का विस्तृत वर्णन किया है। 'मैला आंचल' के मेरीगंज गांव का मठ धार्मिकता का प्रधान केन्द्र है। जहाँ पर भण्डारा, कथा-कीर्तन आदि होते रहते है। सुबह सुबह प्रातकी गाना मठ का रिवाज़ है। अतः मठ के महन्थ साहब माघ में ठिठुरते हुए भोर में प्रातकी गाते है। प्रातकी के पश्चात् सतसंग में शिष्यों को उपदेश देते है, प्रश्नों के उत्तर देते हैं, अज्ञान अंधकार को अपनी वाणी से दुर करते है। प्रातकी या बीजक में कोई सम्मिलित हो या नहीं, सत्संग में भाग लेना अनिवार्य है।[149]

ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए ग्रामीण लोग देवी-देवताओं तथा पीर- पैगम्बरों की पूजा करते है। इसी रिवाज़ का पालन करते हुए तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद कालीथान के सामने आने पर

श्रद्धापूर्वक सिर पर टोपी रखकर काली माँ को प्रणाम करते हैं।[150] इसी प्रकार खेलावन सिंह की पत्नी अपनी बेटे की मंगल कामना के लिए पीर बाबा से प्रार्थना करती हैं। रेणु के शब्दों में - " जिन पीर बाबा के दरघा पर घर नहीं है, वहाँ एक झोपड़ी बनाने के लिए तीन साल से कह रही थी, आखिर नहीं बनाए।...... दुहाई, बाबा जिन पीर ! भूल-चुक माफ़ करो। मेरे बच्चा का मति फेर दो महतमा ! सिरनी और बद्धी चढ़ाऊँगी, एक भर गाँजा दूँगी।"[151]

धर्म हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। ग्रामीण अंचलों में रहनेवाले लोग विपत्ति को टालने के लिए सब देवी - देवताओं को एक साथ मानने लगते है। इसी रीति का अनुसरण 'कब तक पुकारुँ' का सुखराम नट भी करता है। जब रात में प्यारी को बुरा सपना आता है तो सुखराम नट सोचता है कि देवता नाराज़ हो गए है, कोई संकट आनेवाला है। अतः वह सभी देवी - देवताओं के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए कहता है कि - " मैं हनुमान जी पर दीपक चढ़ाऊँगा। महादेवजी पर बेलपत्तर चढ़ाऊँगा। पीर के मजार पर दिया चढ़ाऊँगा। ईदगाह की चीटियों को बूरा डालूगाँ। तू कहेगी तो पंडित को सीधा भी दे आऊँगा। भगवान कसम ! ठाकुर जी के मंदिर में जाकर परार्थना करुँगा।"[152]

'आधा गाँव' में ग्रामीण मुसलमानों की धार्मिकता को मोहर्रम के माध्यम से रेखांकित किया गया है। मोहर्रम के दिन ताजियों का जुलूस निकलता है तो गंगौली ग्राम के निवासी जाति व धर्म के भेदभाव को भुलाकर विश्वास के साथ इसमें शरीफ़ होते है और अपनी आस्था व्यक्त करते है।

"औरतें बच्चों को बड़े ताज़ियें के नीचे से निकालतीं। मन्नते मानतीं। ज़ारी पढ़ती और शरबत चढ़ातीं। ये औरते......... गाँव की राक़िने, जुलाहिनें, अहीरनें और चमाइनें होती थी।"[153]

शीआ मुसलमान ढाई महीने का मोहर्रम मनाते है। अतः यह रिवाज़ है कि मोहर्रम के ढाई महीनों में वे खुशी का कोई काम नहीं करते। अगर किसी कारण से कोई हंस भी पड़ता है तो बुजर्ग लोग उसे डाँट-डपट देते हैं। मोहर्रम में धनिया भूनकर और गरी भूनकर उसमें छालियाँ मिला ली जाती है। उन दिनों पान न खाने का रिवाज़ है।[154]

'सागर, लहरें और मनुष्य' में बरसोवा के कोलियों के धार्मिक रीति- रिवाज़ों का वर्णन मिलता है। कोलियों के जीवन में सागर धार्मिक शक्ति की भूमिका निभाता है। कोली समाज खण्डाला देवता की पूजा-अर्चना करता है। समुद्र में तूफ़ान आने पर कभी -कभी मछलीमारों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता है। जो लोग बच जाते है या जिनके आदमी सही सलामत समुद्र से लौट आते है उनके घरों में

सत्यनारायण की कथा होती है, भोजन कराया जाता है, उत्सव मनाया जाता है। समुद्र देवता की धूम-धाम से पूजा की जाती है।[155] यही उनकी रीति और रिवाज़ है जिसका पालन वे श्रद्धा से करते है। सागर उनके जीवन के आर्थिक जगत का आधार है। कोलियों के जीवन में सागर के स्थान के संबंध में डॉ० सुषमा धवन का मत है कि - "सागर उस विराट शक्ति का प्रतीक है जो मछलीमारों के जीवन को संचालित करती है और जिसकी वे देवता के समान पूजा करते है। उनके दृष्टिकोण को ढालने में सागर का गहरा हाथ है।"[156]

असमिया आंचलिक उपन्यासों में भी धार्मिक रीति-रिवाजों का विस्तृत वर्णन मिलता है। 'मिरि जियरी' में वर्णित है कि मिरि लोग कई प्रकार के देवी-देवताओं में विश्वास रखते हैं। इसी कारण वे चरग पूजा, देऊपूजा, मारंगघर भकत सेवा आदि धार्मिक क्रियाओं का और उनसे संबंधित रीति-रिवाज़ों का पालन करते है। 'चरग पूजा' का आयोजन कोई भी मिरि व्यक्ति कर सकता है। यह पूजा गृहस्थ एवं उसके परिवार की मंगल कामना के उद्देश्य से की जाती है। इस पूजा के अंतर्गत मेघ, बिजली, चन्द्र, सूर्य, तारे, मिट्टी, पानी आदि प्रकृति के देवताओं को मद (शराब) सुऊर और मुर्गी अर्पित करते हुए पूजा जाता है।[157]

मिरि जाति के लोगों के सामुहिक प्रार्थना घर का नाम 'मरंग घर' है। यहाँ पर राति सेवा पंथ के भकत, आम जनता और केसा पंथ के भकत मिलकर प्रार्थना करते है। अधिकतर वृद्ध मिरि 'राति सेवा' पंथ के भकत है और वे केसा पंथ तथा आम जनता से पृथक होकर बैठते हैं। राति सेवा पंथ के मुखिया को साधु कहते है और केसा पंथ के पुरोहित को 'देऊधाई' या 'मिबूयाँ' कहते हैं। गांव के मरंगघर में उपस्थित अन्य लोग इन भकतों के आगे नतमस्तक होकर उनका आशीर्वाद लेते है और भकत जन श्रीगुरु शंकर देव, माधव देव का नाम का स्मरण करते हुए, इन्हें आशीर्वाद देते हैं। सभी भक्त ज़न सामूहिक तौर कीर्तन करते है जिसे 'सिया गोआ' कहते है।-

" मरा नदीर पार प्रभु जीवोई आसे रोई ओई
जीवोई आसे रोई-
देखा देखा बंधु सब मोर भेलर विलाई ओई भेलर विलोई।[158]

मिरि जाति के लोग 'जुरर पूजा' का भी पालन करते है। यह मिरि समाज की सामूहिक सबाह होती है। यह पूजा विधिपूर्वक नराछिगा बिहु के दिन, गांव में माता निकलने पर या फिर महामारी फैलने

पर की जाती है। इस पूजा में प्रधान देवताओं को मद, सुऊर, मुर्गी देकर सतुंष्ट किया जाता है।[159] मिरि जन अन्य देवी-देवताओं के साथ, देऊधाई की भी पूजा करते हैं। वे ऐसा मानते है कि देऊधाई को माध्यम बनाकर उनके देवी-देवता उन्हें आने वाले भविष्य से अवगत कराते हैं।[160]

'कईनार मूल्य' में आदि समाज के धार्मिक परिवेश का थोड़ा बहुत विवरण अवश्य मिलता है। इस जाति के लोग दँयि-पल (चन्द्र-सूर्य) इष्ट देवता की पूजा अर्चना करते है। कारगुम भी अपनी कामनाओं की पूर्ति हेतु दँयि-पल देवता पर विश्वास करता है। उन्हें अपने सुख-दुख का साथी मानता है।[161]

नवकांत बरूआ कृत 'कपिली परिया साधु' में इस बात के संकेत मिलते है कि गांव के लोग कृष्ण की पूजा-अर्चना करते है-

" गोविन्द राम मुरारी मुकुंद राम मुरारी
अनंत कोटि ब्रह्ममांडर हरि अधिकारी।"[162]

ग्रामीणवासियों को धर्म में पूरी आस्था है। किसी कार्य की सिद्धि हेतु पूजा - पाठ, कीर्तन - भजन करना, सत्यनारायण की कथा, भगवान के सम्मुख दीया जलाना, देवी माँ के सम्मुख बलि भेंट करना, ताबिज बाँधना आदि धार्मिक विश्वास एवं रीति-रिवाज़ माने जाते है। धीरसिहं को जब कई सालों तक संतान का सुख प्राप्त नहीं हुआ, तो उसने और उसकी पत्नी रंगीली ने संतान प्राप्ति हेतु इन धार्मिक क्रिया - कलापों का सहारा लिया।[163] असमिया समाज में दीक्षा ग्रहण करना आवश्यक माना जाता है। रूपाइ भी दीक्षा ग्रहण करने हेतु तिलक गोसाई के पास जाता है। दीक्षा ग्रहण करना असमिया समाज में परिपक्वता की निशानी मानी जाती है। ऐसा माना जाता है कि दीक्षा ग्रहण करनेवाले व्यक्ति का जीवन धार्मिक दृष्टि से संस्कारित तथा संपूर्ण बन जाता है।[164]

'रंगमिलीर हाँही' में कारबी समाज के लोगों की धार्मिक रीति-रिवाजों का विस्तृत विवरण मिलता है। कारबी समाज में चरग् पूजा अर्थात् (चजून पूजा) का विशेष स्थान है। यह पूजा पूर्णिमा के दिन सम्पन्न की जाती है। चजून पूजा देवताओं की पूजा है। इसमें छोटी - बड़ी, कई प्रकार से पूजा की वेदी स्थापित की जाती है। चजून पूजा में 'हाराता' देवता, आरनि (सूर्य) देवता, वारिथे देवता, चार देवता की पूर्जा - अर्चना की जाती है। पूजारी चावल से बने आटे (पिठागुरी) को पूजा की वेदी पर छिड़कर उसे पवित्र करता है और फिर प्रधान देवता वारिथे का ध्यान करते हुए मंत्र का उच्चारण करता है -

एहे - म हेम हेम आर - नाम

आरनाम के थे आरनि के थे

बारिथे आसो बारिए आश

तोमालोई प्रणाम।[165]

इसके बाद, प्रधान देवता वारिथ के समक्ष सुऊर की बलि दी जाती है। सुऊर की बलि देना चजून पूजा का महत्वपूर्ण अंग है। सुऊर के कलेजे को देखकर ही पुजारी, गृहस्थ के समृद्ध जीवन के बारे में उसे अवगत करता है। अन्य देवताओं को मुर्गी की बलि दी जाती है। हाराता देवता को चढ़ाई गई मुर्गी की स्थिति देखकर, गृहस्थ की खेती - बाड़ी में होनेवाली उन्नति का पाता लगाया जाता है। कारण, हाराता देवता मिट्टी की उपजाऊपन को नष्ट नहीं होने देते। अतः इन देवता को प्रसन्न करने का अर्थ है, गृहस्थ के जीवन में उन्नति के नए मार्ग खोलना। खेती का प्रांरभ करने से पहले यह पूजा की जाती है। गांव के मुखिया सारइक तेरांग ने इस पूजा का आयोजन गांववालों की मदद से की। वन साग ढूँढना, चजून पूजा का एक अंग है। मेहक हानथू एंव कचू - ढेकिया शाग एक अपरिहार्य चढ़ावा है। पूजा की समाप्ति के पश्चात् लोगों ने पहले देवता को शराब अर्पित किया और फिर स्वयं उसे ग्रहण किया। अनुष्ठान की समाप्ति के पश्चात् सभी लोगों ने मिलकर सामुहिक भोजन किया। यह पूजा तीन दिनों तक चलती है।[166]

इसी प्रकार, कारबी जनमानस फाल्गुन महीने के शुकलाष्टमी को बड़ा ही शुभ दिन मानते हैं। उनका मानना है कि इसी दिन कारबी राजा 'रंगहालिन्द्कपई' प्रत्येक वर्ष 'वोलकेटेर' अर्थात् राजकीय रंगकंर पूजा करते आए है। इस पूजा का तात्पर्य समग्र लंगड़ी (गांवों का समूह) की मंगल कामना से होता है।[167]

कारबी लोगों के गृह देवता का नाम हेमफू देवता है। सारइक के बेट्रे हेमाय की स्कूल यात्रा के प्रारंभ से पहले रिछवाचा ने हेमफू देवता के समक्ष राही चोआ (कुडंली देखना) पूजा की। इस अनुष्ठान के प्रारंभ में सर्वप्रथम दो केले के पत्तों के सिरे को ज़मीन पर रखकर पूजा की वेदी सजाई गई। चावल, पिठागुरी, तुलसी आदि से मंत्रों का उच्चारण करते हुए वेदी पर स्थापित देवता को यह अर्पित किया गया। नेवैध के रुप में एक मुर्गी देवता को अर्पित की गई। हेमाय की यात्रा और उसके जीवन के उद्देश्य के प्रति मंगल कामना करते हुए रिछवाचा ने मंत्रों का उच्चारण किया-

एहेम - एहेम हेम आरनाम !

जपेदाप आरनि

जेपदाप आदाप.......

चेदिप नांगथान पनरि

चेनाप नांगथान पनरि

एहेम - एहेम हेम आरनाम। [168]

'नोई बोई जाए' में गांव में होनेवाले धार्मिक अनुष्ठानों का विस्तृत विवरण मिलता है जिसमें प्रमुख है बर - सबाह अनुष्ठान। इस अनुष्ठान में लोग, दिन में प्रसाद के साथ जलपान भी ग्रहण करते है और रात में सामुहिक तौर पर भोजन करते हैं। इस दिन नामघर को साफ़ - सुथरा कर कीर्तन पाठ किया जाता है। कीर्तन का प्रांरभ 'प्रसंग नाम' से होता है। प्रसंग नाम गाने वाले व्यक्ति को 'आतोई' (पाठक) कहते है। प्रसंग नाम सम्पन्न होने के पश्चात् आतोई बरगीत और फिर 'घोषा' गाता है। घोषा गाने के तुरंत बाद कीर्तन की समाप्ति होती है और सभी लोग भगवान से अपनी मनोकामना की पूर्ति हेतु प्रार्थना करते है और साथ ही अपने दोषों के लिए क्षमा याचना माँगते हुए गाते है -

" अपराध विनाशन तजू नाम नारायण,

जानि नामे पशिलो शरण

अपराध क्षमा करि तुमि दयाशील हरि

मोक रक्षा करियो चरणे।" [169]

ग्रामीण अंचल में जब कभी चेचक निकलता है तो समस्त गांवबासी माता को सतुंष्ट करने के लिए 'सामूहिक आई सबाह' का आयोजन करते हैं। लोगों का ऐसा मानना है कि 'आई नाम' गाने से माता सतुंष्ट होकर पीड़ित को शीतलता प्रदान करती है। [170]

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि ग्रामीण लोग कई प्रकार के देवी-देवताओं और पीर-पैंगबर से संबंधित पूजा-पाठ व धार्मिक अनूष्ठान तथा उनसे जुड़े हुए रीति-रिवाजों का पालन करते हैं। ग्रामीण लोग भक्ति को मुक्ति का मार्ग मानते है। इसलिए जीवन में सुख एवं शांति के लिए देवी-देवताओं की शरण में जाते हैं। ग्रामीण जनता को अपने इष्ट देवताओं के प्रति अपार श्रद्धा एवं भक्ति की भावना है। अपनी वेदना, दुख, संकट आदि

की गाँठ उसके सम्मुख खोलते हैं। जब - जब समस्याएँ उत्पन्न होती है, तब - तब उनसे मुक्त होने के लिए दिल खोलकर वे प्रार्थना करते हैं, मिन्नत करते हैं। उनका विश्वास है कि उनके देवी-देवता उनकी वेदना को समझते है और उसका निर्वारण करेंगे। 'मैला आंचल' में प्रातः सुबह प्रातकी गाने का रिवाज़ है, तो 'आधा गांव' में मोहर्रम के दिनों में कोई भी खुशी का काम न करने का रिवाज़ है।

असमिया आंचलिक उपन्यासों में ग्रामीण जन इष्ट देवता की पूजा करते है और उन्हें प्रसन्न करने के लिए अन्य चढ़ावों के अतिरिक्त, सुऊर, मुर्गी भी चढ़ाया जाता है। 'रंगमिलीर हाँही', 'मिरि जियरी' उपन्यासों में यह संकेत मिलते है, परंतु हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में इस रिवाज़ का कोई उल्लेख नहीं मिलता। दोनों संस्कृतियों की पूजा विधियों और रीति - रिवाजों में पर्याप्त अंतर दिखाई देता है परंतु मूल भावना अपने इष्ट देव को प्रसन्न करके सब प्रकार की विपत्तियों से छुटकारा पाना है।

भूत-प्रेत, जादु-टोना

भारतीय ग्रामीण समाज भूत-प्रेत तथा अंधविश्वास में आस्था रखता है। भूत -प्रेत संबंधी अनेक काल्पनिक कहानियाँ ग्राम समाज में प्रचलित है। भूत-प्रेत संबंधी विश्वास ग्राम समाज में रूढ़ हो गया है। उससे समाज को मुक्त करना आसान कार्य भी नहीं है। अशिक्षित व अंधविश्वासी ग्रामीणों को भूत-प्रेत व चुड़ैलों में इतना अधिक विश्वास होता है कि साधारण से साधारण बीमारी का कारण भी भूत-प्रेत ही कल्पित कर लेते हैं।

'मैला आंचल' में भूत-प्रेत का विवरण मिलता है। 'भूतहा जंगल' जहाँ पर मेरी की क्रब है वहाँ लोग दिन में जाने से भी डरते हैं। उसके संबंध में अनेक कहानियाँ प्रचलित है। लोगों का मानना है कि - " ततमा टोले का नंदलाल एक बार ईंट लाने गया था, ईंट में हाथ लगाते ही खत्म हो गया था। जंगल से एक प्रेतनी निकली और नंदलाल को कोड़े से पीटने लगी - साँप के कोड़े से। नंदलाल वहीं ढेर हो गया। बंगुली की तरह उजली प्रेतनी।"[171]

मेरीगंज गांव के बालदेवजी को भूत-प्रेतों में न केवल दृढ़ विश्वास ही था वरन् उन्हें अपनी आँखों से भी देख चुके थे। उनका मानना है - "भैंस के पीछे-पीछे खैनी तम्बाकु मांगता है भूत। डाकिन का पांव उलटा होता है और वह पेड़ की डाल से लटककर झूलती है। भूत-प्रेत झूठ है ? तब कमला किनारे, कोठी के जंगल के पास में रात को जो भक्क से राकस जल उठता है, दौड़ता है और देखते ही देखते एक से दस हो जाता है सो क्या ?"[172]

डाक्टर और कमला के बीच 'जिन' को लेकर चर्चा होती है - " जिन? क्या जिन? जिन पर पीर का नाम है। वह कभी-कभी मन मोहने वाला रुप धरकर कुमारी और बेवा लड़कियों को भरमाता है। गरीब से गरीब को धनी बना देना उसकी चुटकी बजाने भर की बात है। जिस पर बिगड़े बरबाद कर दें, जिस पर ढेर उसे निहाल कर दें।"[173]

ग्रामीण जनों में यह धारणा है कि जादु-टोनों के माध्यम से किसी भी बीमारी, भूत-प्रेत या समस्या का समाधान किया जा सकता है। जादु-टोने में विश्वास रखने के कारण ही हीरु पार्वती की माँ को लाठियों से पीट कर मार डालता है। हीरु को जोतखी काका बताते है कि उसके बेटे की मृत्यु पार्वती की माँ के कारण हुई है और कहता है कि - " करसामाँ है। डाइन का करसामाँ है। समझे हीरु। शुक्रवार को अमावस्या है। जिस पर तुम्हें संदेह हो, उसके पिछवाड़े में बैठे रइना। ठीक दो पहर रात को वह निकेलगी। उसका पीछा करना। वह तुम्हारे बच्चे को जिलाकर, तेल - फुलेल लगाकर, गोदी में लेकर जब नाचने लगेगी तो.........उस समय यदि उससे बच्चा छीन लो तो फिर उस बच्चे को कोई मार ही नहीं सकता। .... इद्रं का वज्र भी फूल हो जाएगा।"[174]पार्वती की माँ गणेश को लेकर जैसे ही घर के बाहर आती है हीरु उस पर हमला करता है और लाठी से पीट-पीटकर उसे मार देता है। इस प्रकार अंधविश्वास कभी-कभी मृत्यु का कारण भी बन जाता है।

इसी प्रकार मेरीगंज के ग्रामवासी खलासी जी को बहुत ही गुणवान और जादु - टोने की जानकारी रखनेवाले व्यक्ति के रुप में जानते और मानते है। रेणु का इस संबंध में कहना है कि - " खालासी जी बहुत गुनी आदमी है। पक्का ओझा हैं। चक्कर पूजते है। भूत-प्रेत को पेड़ में काँटी ठोंककर बस में करते है। बांझ-निपुत्तर को तुकताक कर देते है।"[175]

ग्रामीण अंचलों में जादु-टोना तथा वशीकरण द्वारा लोग अपनी इच्छापूर्ति करवाते है। भूत-प्रेत के उपद्रववालों को प्रेत मुक्ति के लिए कभी-कभी टोनहार के द्वारा तन्त्र-मन्त्र करवाने की प्रथा भी गाँवों में प्रचलित है। कभी-कभी बच्चा होने के लिए घरों में आग लगाने का टोटका किया जाता है। ऐसा विश्वास है, यदि बांझ स्त्री सात शनिवार अलग-अलग स्थानों पर आग लगाती है तो उसके हो बच्चा हो जाता है। 'कब तक पुकारुँ' में निरोती वामन के घर में चुपचाप आग लग गई और उसकी औरत को पुलिस ने हिरासत में ले लिया। ग्रामीण जनों का मानना था कि उसने कोई जादु-टोना किया है क्योंकि उसके कोई बच्चा नहीं हो रहा था। सनीचर का दिन था। आग लगी तो यह कहा गया कि इसने बस्ती

को जला देने को आग लगाई थी। लोगों में यह अंधविश्वास फैला हुआ है कि जो इस तरह सात सनीचर जगह-जगह आग लगाती है, उसके बच्चा हो जाता है।[176] यहाँ हालांकि प्यारी ने आग लगवाई पर यही समझा गया कि निरोती बामन की स्त्री ने ही आग लगाई है क्योंकि वह निःस्तान थी।

इसी तरह चंदन मेहतर भी जादु-टोने की कुछ करामातें जानता था। चंदन प्रसिद्ध टोनेबाज़ था और मरघट तो उसका घर समझा जाता था। उससे गाँव के लोग भी डरते थे। भूतों का ठेका मेहतर और धोबियों के हाथ में ही होता था। जादु टोनों का सहारा लेकर वह अज्ञानी तथा अंधविश्वासी लोगों से पैसे ऐंठता था। सुखराम भी उसके झांसे में आ जाता है, और दरोगा से बदला लेने की सोचता है। चंदन उसे पचास रुपए लाने को कहता है। सुखराम चोरी कर पचास रुपए लाता है। रुपए लेकर चंदन और सुखराम रात के अंधेरे में चामड़ पर आते है। चंदन ने चामड़ पर दीपक चढ़ाया, मुर्गी बांधा और कहा दरोगा पर हांडी छोड़ता हुँ वह तत्काल मर जाएगा और हांडी लौटेगी तो तुरंत मुर्गा काट दूँगा, नहीं तो हांडी छोड़ने वाले पर आकर फटती है और वह मर जाता है। चन्दन के इस कुकत्य का पता लगते ही सभी गांववाले उसे लाठिया लेकर वहाँ पहुँच गए, परंतु इनके आने से पहले ही वे दोनों भाग निकले। इस प्रकार टोना टोटका करने वाले भोले-भाले ग्रामीणों को अपने जाल में फँसा लेते है और उनसे पैसे ऐंठते है।[177]

मंत्रों के उच्चारण द्वारा सांप का विष उतारे जाने की प्रथा सर्दियों से चली आ रही है। बहुत से ओझा, तांत्रिक साँप का विष उतारना जानते है।'कब तक पुकारूँ' में सूसन के माली को घास काटते समय काले साँप ने काट लिया और वह मुहँ से झाग गिराने लगा। गांव के बूढ़े गोरखा माली को बुलाया गया, जो साँप का विष उतारना जानता था। उसने थाली मंजवाकर माली की पीठ पर चिपकवा दी और पीठ को देखकर मंत्र पढ़ने लगा। थाली स्याह पड़ गई। इस प्रकार थाली को तीन बार माली की पीठ से चिपकाया गया और तीन बार वह ज़हर से काली पड़ गई। चौथी बार चिपकाने पर हल्की स्याही आयी और माली ने आँखे खोल दीं। इस प्रकार अधिकतर ग्रामीण भगवान और भाग्य पर बहुत अधिक भरोसा करते है और अंधविश्वासों में जकड़े रहते है।[178]

वशीकरण और जादु-टोने का उल्लेख 'आधा गांव' में भी मिलता है। जुमुर्रुद के द्वारा गुज्जन मियाँ पर किए टोना-टोटका के बारे में यों कहा है - " वह बड़ी कजूंस थी, मगर बड़ी खुबसूरत थीं। जुमुर्रुद को गंगौली की किसी औरत ने नहीं देखा था, मगर सभी का खयाल था कि उसने गुज्जन मियाँ

पर कोई टोना-टोटका कर दिया है, इसलिए गंगौली की तमाम औरतों को पक्का यकीन था कि वह बंगालिन हैं, हालाँकि वह बराबांकी की थीं।"[179]

असमिया आंचलिक उपन्यासों में भी भूत-प्रेत, जादु-टोने से जुड़ी कई घटनाओं का विवरण मिलता है। 'नोई बोई जाए' में वर्णित है कि रंगाय तांत्रिक के बिना ग्रामीण जनों के लिए तो दिन में ही रात है। उसके समान कोई दूसरा तांत्रिक मिलना तो मुश्किल ही है। उसे यह जानकारी रहती है कि कौन से भूत के क्या लक्षण है, वह कहाँ रहता है, वह क्या चाहता और खाता है। ग्रामीण जन उसके पास अपनी समस्याओं को लेकर जाते है।लोगों पर आने वाली विपत्तियों का समाधान अपनी तंत्र विद्या एवं जादु-टोने से करता है। वह बांझ औरत को अपनी तांत्रिक शक्तियों से गर्भवती बना देता है। पानी में मंत्र फूँककर प्रसव प्रक्रिया को सरल बना देता है। लोगों के घरों की चारदीवारों को भी अपनी तंत्र विद्या से सुरक्षित कर देता है जिसके फलस्वरुप भूत-प्रेत निकट नहीं आ पाते।[180]

रंगाय तांत्रिक भूत भगाने के लिए कई प्रकार की विधियाँ अपनाता है। कुछ भूतों को यदि अच्छा मांसाहारी खाना दिया जाए तो वह आसानी से भाग जाते हैं। इसी प्रकार कुछ भूतों को भगाने के लिए मार-पीट, झांड-फूँक का सहारा लिया जाता है और कुछ भूतों के नाक में तीखी मिर्ची डाल दी जाती है। जो भूत आंतकित होकर पीड़ित व्यक्ति को छोड़कर भाग जाते है ऐसे भूत रंगाय से बदला लेने की धमकी देकर जाते हैं।[181]

इसके अलावा, रंगाय तांत्रिक सांप के काटने पर मिट्टी के बर्तन में दूध भरकर मंत्र बोलता है, मंत्र फूँकते ही सफ़ेद दूध काला हो जाता है तथा रोगी ठीक हो जाता है।[182]

'कपिली परिया साधु' में गोसाई पुखुरी के बारे में लोगों में अंधविश्वास फैला हुआ है। ग्रामीण लोग 'गोसाई पुखुरी' के किनारे पर लगे फल-फूल, बांस के पेड़ों, तामोल तथा तलाब में पाई जाने वाली मछलियाँ, कछुएँ इत्यादि का भक्षण नहीं करते, क्योंकि लोगों में ऐसा अंधविश्वास फैला हुआ है कि वहाँ पर भूत-प्रेतों का निवास है।[183]

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् यह प्रमाणित होता है कि अंचलों के लोग भूत-प्रतों पर बहुत अधिक विश्वास करते हैं और उनसे डरते भी है। भूत-प्रेतों के प्रकोप से बचने के लिए वे जादु-टोना या तांत्रिक के द्वारा झाड़-फूँक आदि कराते हैं। ग्रामीणों को ओझा गुणियों पर अत्यधिक विश्वास होता है इसलिए ओझे-गुणी इस विश्वास की आड़ में

अंधविश्वास फैलाकर अपने स्वार्थ की सिद्धि करते है। प्रायः अनैतिक और अवैध कार्यों के लिए भी तंत्र-मंत्र का प्रयोग किया जाता है जैसे शत्रु को मरवाना, अवैध गर्भ गिराना आदि। कुछ मंत्रों के तो आश्चर्यजनक प्रभाव देखा गया है। 'कब तक पुकारुँ' में गोरख माली द्वारा मंत्रों के उच्चारण और तंत्र विद्या से सांप के जहर उतारे जाने का वर्णन है, वहीं 'नोई बोई जाए' में भी रंगाय तांत्रिक द्वारा ऐसा किए जाने का संकेत मिलता है।

हिन्दी के प्रायः सभी आंचलिक उपन्यासों में भूत-प्रेत, जादु-टोना, तंत्र-मंत्र आदि का उल्लेख मिलता है। इसके विपरीत असमिया आंचलिक उपन्यासों में 'नोई बोई जाए', 'कपिली परिया साधु' में ही भूत-प्रेत एवं जादु-टोने का वर्णन मिलता है।

रुढ़ियाँ, परम्पराएँ

साधानाओं से रुढ़ियाँ जन्म लेती है। अंचलों के साधारण लोग अपने सभी कार्य परम्परागत रुढ़ियों के अनुसार ही करते है। तदनुसार अनेक देवी - देवताओं पर विश्वास, शुभाशुभ - निर्धारण आदि उनके दैनिक जीवन का अंश बन गए है। आंचलिक उपन्यासों में कई देवी - देवताओं का चित्रण हुआ है जो समाज में भूत प्रेत के अतिरिक्त अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। भिन्न - भिन्न जातियों के अनुरुप इनके विभिन्न रुप पाए गये है। यह श्रद्धा व विश्वास के मुख्य स्त्रोत हैं जो धर्म व संस्कृति के द्योतक हैं।

अपनी इच्छाओं को पूरी करने के लिए ग्रामीण जन कई देवी देवताओं की मनौती करते हैं और पूजा तथा अनुष्ठान का आयोजन करते हैं। यह अंचल समाज में व्याप्त अंधविश्वास, परम्परावादिता तथा रुढ़िवादिता का द्योतक है। 'आधा गाँव' में सकीना लड़के के अरमान में सात लड़कियों की माँ बन चुकी थी। जब बच्ची पैदा होती तो फुस्सु मियां मन्नतें - मन्नतें मानकर और गण्डे - ताबीज़ बँधवाकर फिर कोशिश में लग जाते। इधर स्वयं सकीना ने भी 'अनगिनत मन्नतें मान रखी थीं। साधुओं - फकीरों पर न मालूम कितने पैसे खर्च कर चुकी थीं।[184] इस रुढ़िवादी परम्परा का परिणाम यह होता है कि कभी - कबार अंचलवासियों की आर्थिक स्थिति को भी प्रभावित करता है, परंतु ग्रामीण जन इसका दामन थामे रहना चाहते हैं।

मन्नत मानने से क्या फायदा होता है उसके बारे में 'आधा गाँव' का हुसैन खाँ बबुरमवा बो सो कहता है कि - " एकबार उनकी बीबी को साँप ने काट लिया था और किस तरह इन्होंने इस सामने

वाले इमाम चौक पर मन्नत मानी थी और किस मन्नत के मानते ही साँप का जहर खुद-व-खुद उतर गया था।[185] इस प्रकार मनौती के रुप में भेंट चढ़ाने तथा मनोकामना की पूर्ति होने से संबंधित अनेक घटनाएँ ग्राम-जीवन में सदा होती रहती है।

'मैला आंचल' में रुढ़िवादिता और अज्ञनता के कारण ही कलीमुद्दीपुर में नागर नदी के किनारे चोरघट्टा के पास साँहुड़ के पेड़ की डाली से लटकती हुई बावनदास की खद्दर की झोली के फीते को कोई दुखिया चेथरिया पीर समझकर मनौती करती है और अपने आंचल का एक खूँट फाड़कर बांध देती है। पीर देवता से मनोकामना पूर्ण होने पर नया चेथरा बाँधने का प्रण लेती है।[186]

मनौतियों के संबंध में गाँववालों की भावनाएँ 'अलग-अलग वैतरणी' में कुछ इस प्रकार की है - " अपना गांव भी मिसिर जी एक रसीला है। महावीर सामी कसम इसे ही घर फूँक कहते हैं। खाने को ठिकना नहीं पर पूजैया में बड़े बाजा।" करैता गांव के लोग अपनी स्थिति से बढ़-चढ़कर मनौतियाँ देते है। झब्बू उपाधिया के लड़के देवनाथ के डाक्टर बनने की मनोकामना सफल होने पर घर में पूजा रखवाई जाती है - " झब्बू बो भौजी ने मनौती मानी थी। जब लड़का डाक्टरी पास करके आ गया तो बैंड बाजा बज रहा है।"[187]

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि ग्रामीण अंचलवासी अपनी मन्नतें पूरी होने पर देवी-देवताओं के प्रति अभार व्यक्त करते हैं। सुखराम भी इस रीति का पालन करता है और संकट समाप्त होने पर देवताओं एवं पूर्वजों का स्मरण तथा उन्हें नमन् करते हुए कहता है - पुरखों। मैं पापी हुँ, अभागा हुँ, मैं तुम्हारी तरह जोग नहीं हूँ। मैं दीन, गरीब, नीच हूँ, मैं जात -कुजात हो गया हूँ, इसलिए जो तुमने मुझे छोड़ा था, वह मुझ तक कभी नहीं पहुँच सकता।........... पर तुमने मेरी रक्षा की है, तुमने मुझे बचाया है।[188]

हमारे अंचलों में ही नहीं, पूरे भारतवर्ष में नदियों को माँ मानने की परम्परा विद्यमान है। अंचलों में इसका प्रचलन कुछ अधिक मात्रा में पाया जाता है। 'मैला आंचल' में वर्णित है कि गांव के लोग कमला नदी को 'कमला मैया' पुकारते है। कमला मैया के माहात्म्य को प्रस्तुत करके ग्रामीण जनता की धार्मिकता के रुप एवं रुढ़िवादिता को चित्रित किया गया है। ग्रामीण जनों का मानना है कि कमला मैया ज़रुरत पड़ने पर सबकी मदद करती है। शादी-व्याह या श्राद्ध के भोज के अवसर पर, बर्तनों की जरुरत कमला मैया पूरी करती हैं। कमला-मैया को पान-सुपारी से निमंत्रित करना पड़ता है और कमला-मैया प्रसन्न होकर गृहस्थ को चाँदी के बर्तन देकर गृह-स्वामी के अनुष्ठान में योगदान देती है। परंतु भोज के बाद

बर्तन गिनकर पूरे लौटाने पड़ते है। एक बार जब किसी गृहस्थ ने कुछ बर्तन वापिस नहीं किये, तब से कमला मैया ने बर्तन देना बंद कर दिया। चोरी करने वाले गृहस्थ का पूरा परिवार शापवाश नष्ट हो गया।[189]

'आधा गांव' में भी वर्णित है कि गंगा नदी को हिन्दु मुस्लिम दोनों माँ मानते है। गंगा मैया जब रुठ जाती है अर्थात् गंगा में बाढ़ आ जाती है, तब मुसलमान अज़ान देने लगते है। हिन्दु गंगा पर चढ़ावे चढ़ाने लगते हैं कि रुठी हुई गंगा मैया मान जाय। जब गंगा का पानी उतर जाता है तो - " मुसलमान कहते है कि अज़ान का वार कभी खाली नहीं जाता, हिन्दु कहते है कि गंगा ने उनकी भेंट स्वीकार कर लीं।"[190]

अनेक बार रुढ़िवादी अंधविश्वासी ग्रामीण शारीरिक पीड़ाओं के लिए डाक्टर से उपचार करने के बाजाय ओझा या तांत्रिकों की मदद लेते है। 'सागर, लहरें और मनुष्य' में भी रुढ़िवादी परम्पराओं से जकड़े हुए ग्रामीण जन डाक्टर के इलाज से अधिक ओझा पर विश्वास रखते हैं। बाऊला के पेट में भीषण दर्द उठता है।यशंवत डाक्टर को बुलाकर उसका इलाज व दवा-दारु करता है। सोमा ने जब दवा की शीशी देखी तो बोली - " क्या यशंवत, डाक्टर कू क्यों दिखाया ? हम ओझा जान के पास से दवा ले आता।"[191] इस प्रकार स्पष्ट है कि डाक्टर की दवाईयों से ज्यादा लोगों को ओझा के तंत्र-मंत्रों पर अधिक विश्वास है। डाक्टर तो उनके लिए पैसे ऐंठने का माध्यम है।

इसी प्रकार 'अलग-अलग वैतरणी' में कल्पनाथ की नपुसंकता के कारण उसके और उसकी विवाहित पत्नी के संबंधों में निरंतर दरार पैदा होती जाती है। परंतु दुर्भाग्यवश सारा दोष उसकी पत्नी पर आता है। अतः इस विषय में गांव की सभी औरते एक साथ दुलहिन को कोसने लगती है और कहती है " ज़रुर न जरुर से दुलहिन में ही कोई ऐब है। कल्पू की माई, तू तानिक कवनों ओजा-सोखा से काहे नहीं दिखाती।

इसी प्रकार असमिया आंचलिक उपन्यासों में परम्परा से चले आ रहे अनेक विश्वासो का उल्लेख मिलता है। उनमें से अधिकांश रुढ़िगत विश्वास मात्र है। 'नोई बोई जाए' में भगीरथ फूकन अपनी इच्छा की पूर्ति होने के लिए मन्नत माँगता है। 'माघ बिहु' के सुअवसर पर भगीरथ फूकन अग्नि देव के समक्ष तामोल-पान अर्पित करते हुए यह मन्नत मांगता है कि उसका विवाह सुआगी के साथ, बिना किसी अवरोध के सम्पन्न हो जाए। लेखक के शब्दों में - " नहा-धोकर, तामोल-पान को मेजीं पर चढ़ाकर उसके सामने श्रद्धा से घुठने टेककर यह मन्नत मांगता है। है ! अग्निदेव मेरी लाज बचाओ। मेरी भैंस को जीत दिला

दो। भैंस की जीत ही, सुआगी के साथ मेरे आनेवाले भविष्य का निर्धारण करेंगी।"[193]

नदी को माँ मानते हुए, उसके प्रति श्रद्धा व्यक्त करने की पंरपरा असमिया आंचलिक उपन्यासों में भी व्याप्त है। 'मिरि जियरी' में मिरि समाज के सभी लोग सोवणशिरी नदी को माँ मानते हैऔर उसके प्रति गहरी आस्था व श्रद्धा व्यक्त करते है। लेखक के शब्दों में - " मिरि जाति के लोगों को यदि माँ सोवणशिरी नदी की शीतल हवा न मिले तो उनकी सांसे रुक जाती है। उसका पानी न मिलें तो, उनकी प्यास नहीं बुझती। माँ सोवणशिरी नदी में यदि नौका न चलाई जाए तो मन में अप्रसन्नता छा जाती है। यही कारण है कि मिरि जाति सोवणशिरी नदी के दोनों किनारों पर अपना बसेरा बनाते है।"[194]

'रंगमिलीर हाँही' में भी कारबी समाज के लिए नदी का स्थान माँ के समकक्ष है। कारबी समाज की जीवनदायिनी नदी का नाम बरापानी - कारबी लंगपी है। नदी के कलकल करके बहने की जो ध्वनि गूंजती है, वह लोगों को सुख प्रदान कराती है, तथा इनके जीवन नया अर्थ देती है। यह नदी उनके लिए सुख-दुख का साथी है। इस नदी का निर्मल स्पर्श घर-घर में खुशियों की बौछार लाता है और लोग अपने समस्त कष्टों को भूल जाते है।[195]

रूढ़ियों और परम्परा के बंधनों में जकड़े हुए आदि समाज के लोगों की ऐसी मान्यता है कि शादी-ब्याह के अवसरों पर मुर्गी के कलेजों की स्थिति देखकर ही शादी की शुभ तारीख तय की जाती है। 'कईनार मूल्य' में भी इस बात के संकेत मिलते है कि गुमबा का विवाह के दिन का निर्णय ठीक इसी तरह किया गया था।[196]

इसी प्रकार 'रंगमिलीर हाँही' में भी कारबी लोगों द्वारा मुर्गी की बलि देने की रूढ़िवादी परम्परा का चित्रण मिलता है। हेमाय को स्कूल भेजने से पहले हेमफू देवता के चरणों में मुर्गी की बलि चढ़ाई जाती है। इसके बाद मुर्गी की नाड़ी को धोकर उसकी परीक्षा की जाती है। कारबी लोगों का यह विश्वास ह कि मुर्गी की नाड़ी का परीक्षण करके ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जीवन में उन्नति होगा या नहीं। अतः रिछवाचा भी हेमाय के आनेवाले भविष्य का परीक्षण मुर्गी की नाड़ी देखकर करता है और बताता है कि वह आनेवाले जीवन में उन्नति करेगा।[197]कारबी जनमानस का ऐसा मानना है कि मुर्गी चिड़ियाँ कारबी लोगों के लिए रक्षा कवच है। मुर्गी की बलि देकर सब प्रकार की विपत्तियों से छुटकारा पाया जा सकता है। मुर्गी के ताज़े खुन से बुरे देवताओं के प्रकोप से मुक्ति प्राप्त की जा सकती हैं।[198]

ग्रामीण अंचलों में रहनेवाले अधिकांश लोग डाक्टर की चिकित्सा लेने के बजाय ओझा, तांत्रिक की सहायता लेते है। 'नोई बोई जाए' में यह वर्णित है कि जब नादुकी और सुआगी को बच्चा नहीं होता, तब वे रंगाय तांत्रिक के पास मदद के लिए जाते है। रंगाय तांत्रिक उन्हें बताता है कि किसी दोष के कारण वे गर्भधारण नहीं कर पा रही है। अतः दोष का खंडन करने के लिए वह मटके में पानी भरकर उसमें मंत्र फूँकता है तथा उस पानी से दोनों को नहाने की सलाह देता है। ऐसा करते ही उनका दोष दूर हो जाएगा और उनका गर्भ ठहर जाएगा।[199] रूढ़िवादी ग्रामीण जनों का विश्वास सदैव इनपर बना रहता है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि गांवों में शताब्दियों से अनेक विश्वास जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, रूढ़ियों के रूप में प्रचलित है। गाँव को गाँव बनाने वाले तत्त्वों में रूढ़ियों का प्रमुख स्थान है। इन रूढ़ियों एवं परंपराओं में से अधिकांश तो निरापद हैं और ग्राम-जीवन को सजग एवं सक्रिय बनाने में सहायक भी है। मन्नौती प्रसंग, बलि-प्रथा, शकुन-अपशकुन आदि पर ग्रामीणों को अत्यधिक विश्वास है। हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में यह देखा गया है कि अपनी मनोकामना सफल होने के लिए ग्रामीण देवी-देवताओं को कई प्रकार की मनौतियाँ करते है। ईश्वर को भेंट चढ़ाने, मंदिर दर्शन आदि की मनौतियाँ ग्रामीण जन अकसर करते आए हैं। इसके अलावा नदियों को माँ मानने की परम्परा भी ग्राम्य-जीवन में प्रचलित है। ग्रामीण अंचलों में गरीबी व अज्ञान के कारण डॉक्टर व अंग्रेजी दवाईयों में बहुत कम विश्वास होता है। बड़ी से बड़ी बीमारी का कारण भूत-प्रेत या देवी प्रकोप समझा जाता है जिसका इलाज झाँड़-फूँक व तन्तर-मंतर द्वारा होता है।

असमिया आंचलिक उपन्यासों 'रंगमिलीर हाँही' 'कईनार मूल्य' में देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए मन्नौती के रूप में सुऊर, मुर्गी की बलि चढ़ाने की प्रथा का वर्णन मिलता है। यह उनके धार्मिक क्रिया-कलापों का अभिन्न अंग है, इसके बिना उनके कार्य की सिद्धि नहीं होती। इसके विपरीत हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में हमें बलि प्रथा के संकेत नहीं मिलते।

निष्कर्ष

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में सांस्कृतिक धार्मिक चेतना का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक दृष्टि से उत्तर और पूर्व के अंचलों के जन-जीवन

में समानता के बहुत से अंश है और यह समानता हमारी राष्ट्रीय एकता का श्रेष्ठतम आधार है। सामाजिक चेतना को रूप देने के कार्य में प्रत्येक वर्ग को अपनी संस्कृति से मदद मिलती है। ग्रामीण कलाएँ, पर्व, त्योहार, रूढ़ियाँ, प्रथाएँ आदि विभिन्न तत्त्वों का सहयोग संस्कृति के आधार में विद्यमान हैं। दोनों भाषाओं के उपन्यासों में त्योहारों तथा उत्सवों के माध्यम से जन-जागरण एवं एकता के महत्तवपूर्ण संदेश दिए जाने वाले अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं। गीत, नृत्य जैसे लोक तत्त्व भारतीय अंचल की संस्कृति को विशिष्ट रूप देते आ रहे है। हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त ऐसे लोक तत्त्वों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अंचल चाहे उत्तर का हो, चाहे पूर्व का, संस्कृति का मूल उत्स समान है। इस संदर्भ में दोनों भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों में प्राप्त होनेवाले, विशिष्ट अवसरों पर गाए जाने वाले, लोक गीत ध्यान देने योग्य हैं। विभिन्न अंचलों में, विभिन्न संस्कृतियों में, पलने वाले लोगों के मानसिक भावों की समानता के साथ जीवन को देखने और समझने की वैविध्यपूर्ण दृष्टिकोण भी ऐसे लोक-गीतों में उपलब्ध होता है। इस प्रकार हम देखते है कि जन समाज के विकास के संदर्भ में उसको नई चिंतन-धाराओं से संस्कृति ही जोड़ती है। अतः कहीं कहीं नई-पुरानी संस्कृति के बीच के संघर्ष ने भी इन उपन्यासों में अभिव्यक्ति पाई है। नई युगीन चेतना एवं भावना की नई संवेदना ने मिलकर समसामयिक संस्कृति को रूप दिया है।

इसी प्रकार दोनों भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त धार्मिक चेतना के विश्लेषण से यह तथ्य हमारे सामने आता है कि गांव के सामाजिक जीवन पर धर्म का गहन प्रभाव है। धर्म इनके व्यवस्थित जीवन का मार्ग प्रशस्त करता है तथा उनमें अलौकिक शक्ति के प्रति विश्वास जगाता है। ग्राम्य-जीवन का कोई ऐसा अंग नहीं, जो धर्म के रंग में रंगा न हो। उनका पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक जीवन सभी कुछ धार्मिक भावना से परिचालित होता है। इसी कारण अनेक देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना, भाग्यवाद, भूत-प्रेत और जादु-टोना में भी ग्रामीणों की आस्था बनी रहती है। धर्म के नाम पर बलि देने की प्रथा के संकेत जहाँ असमियाँ आंचलिक उपन्यासों में प्राप्त होते हैं, वहीं हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में यह प्रथा विद्यमान नही हैं।

संदर्भ सूची

1. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम जीवन, ज्ञानचंद गुप्त , पृ - 208
2. अलग-अलग वैतरणी , शिवप्रसाद सिंह ,पृ - 1
3. वहीं, पृ - 3
4. मैला आंचल , फणीश्वरनाथ रेणु , पृ - 76
5. वहीं , पृ - 146
6. वहीं, पृ - 123
7. अलग-अलग वैतरणी , शिवप्रसाद सिंह ,पृ - 325
8. वहीं , पृ - 217
9. वहीं , पृ - 18-19
10. आधा गाँव , शिवप्रसाद सिंह ,पृ - 18
11. सागर, लहरें और मनुष्य , उदयशंकर भट्ट ,पृ - 123-124
12. वहीं , पृ - 178
13. मिरि जियरी , रजनीकांत बरदलै , पृ - 6
14. वहीं , पृ - 11
15. वहीं , पृ - 17
16. रंगमिलीर हाँही , रंगबंग तेरांग ,पृ - 167-170
17. नोई बोई जाए , लीला गोगोई, पृ - 31-32
18. वहीं, पृ - 65-66
19. वहीं, पृ - 71

   "बिहु आहे मनर मलि धुई, निका करिवलोई, नतून आशार नतून वषरत आग बाढ़ि जावलोई मनत बल दिबलोई। .... हुचौरी गाई राईजे आर्शीबाद दिये, नतून वषरत जेन मारि-मरक, खर-बानपानी, पोक-परूआ, धुमूहा-गाजनि निबारन करि पठारत धान, पूखुरीत माछ, बारीत तामोल-पान ऊपचि परे।"

20. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 104

21. वहीं, पृ - 149

22. वहीं ,पृ - 27

"आमार गाँवत डाँगर उत्सव चारिटा। बहागत हुचौरी-सबाह,आषारत लक्षिमी सबाह, आघोनत न-खोआ, फागुनत भाउना। सेईबेलि माज आघोनते-नखोआर योगार होईशिल। न-खोआ माने राजहुआ न-खोआ।"

23. मैला आंचल ,फणीश्वरनाथ रेणु ,पृ - 309

24. आधा गाँव, राहीमासूम रज़ा ,पृ - 169

25. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 396

26. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 26

27. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह,पृ - 69

28. वहीं, पृ - 450

29. नोई बोई जाए, लीला गोगोई ,पृ - 119

30. वहीं , पृ - 129

"न माहत केचाँ पिठोगुरि, एँवा गाखीर, पकाकल दि प्रसूती सवाह पातिले।"

31. वहीं ,पृ - 131

32. वहीं, पृ - 110

33. वहीं, पृ - 205

"सातदिनीया बिया, सादिनर आगते जोरन। बिया चकंलंगीया।........ जोरन खावलोई छुआलीघरत बहुत मानुह गोट खाईसिल। जीयरी छुआलीबोरे जोरा-नाम गाई जोकाईसिल।"

34. वहीं, पृ - 215

"हाथीर खोजत समाने जाव नोआरे बूलि गाड़ी केईखन आगवाढ़ि गोल।"

35. वहीं ,पृ - 216

36. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 149

"लाऊर पात्रत स्पर्श करा मानेई कन्या दिबलेई सम्मत हुआ।"

37. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 48

38. वहीं, पृ - 195

39. वहीं, पृ - 186

"...... भकते आशीर्वाद दिले, जीयार संग परि मरार संग लोबलोई महामृतक होई घरत थका सकलो प्रानीके दया करिवलोई।"

40. कपिली परिया साधु, नवकांत बरूआ, पृ - 47

41. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, पृ - 68

"शव दुति गांवर मानुहे लोई गोल। आरू मिरिर दा-दस्तुर मते तूलि नि क्रियाकलाप करिले।"

42. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 125

43. वहीं, पृ - 125

44. वहीं, पृ - 69

45. वहीं, पृ - 56

46. वहीं, पृ - 57

47. वहीं, पृ - 228

48. वहीं, पृ - 221

49. वहीं, पृ - 184

50. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 404

51. वहीं, पृ - 23

52. वहीं, पृ - 180

53. वहीं, पृ - 179

54. आधा गाँव, राहीमासूम रज़ा, पृ- 10

55. सागर, लहरें और मनुष्य , उदयशंकर भट्ट, पृ - 39

56. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 79

57. नोई बोई जाए, लीला गोगोई,पृ - 67

58. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 69

59. वहीं, पृ - 68

60. वहीं, पृ - 68

61. वहीं, पृ - 25

62. वहीं, पृ - 134

63. वहीं, पृ - 134

64. वहीं, पृ - 217

65. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 172

66. वहीं, पृ - 62

67. वहीं, पृ - 183

68. वहीं, पृ - 185

"एई गीतरे एफाकि गालेई आकाशत गाजनिर सृष्टि हय, दूफाकि गाले आकाश मेघाचन्न होई आहे आरू तिनि फाकि गीत गालेई वर्षा देवीये अश्रुर ढल लोई पृथिवीलोई नामि आहे।"

69. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, पृ - 19

70. वहीं, पृ - 8

71. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 69

72. वहीं, पृ - 58

73. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 132

74. वहीं, पृ - 170

75. कपिली परिया साधु, नवकांत बरूआ, पृ - 6

76. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 211

77. वहीं, पृ - 176

78. कब तक पूकारूँ,रांगेय राघव, पृ - 35

79. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 41

80. वहीं, पृ - 263

81. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 333

82. सागर, लहरें और मनुष्य ,उदयशंकर भट्ट, पृ - 33

83. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, पृ - 4

84. वहीं, पृ - 58

85. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, पृ - 21

86. कपिली परिया साधु, नवकांत वरूआ, पृ - 7

87. वहीं, पृ - 52

" सि खेती करे। दुगुन उत्साहोरे हाल वाय, कोर मारे।"

88. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 111

89. वहीं, पृ - 130

90. वहीं, पृ - 131

91. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 57

92. वहीं, पृ - 38

93. वहीं, पृ - 47

94. वहीं, पृ - 31

95. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 158

96. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 263

97. वहीं, पृ - 426

98. कब तक पुकारूँ , रांगेय राघव, पृ - 323

99. सागर, लहरें और मनुष्य, उदयशंकर भट्ट, पृ - 178

100. आधा गाँव, राहीमासूम रज़ा, पृ - 23

101. कपिली परिया साधु, नवकांत वरूआ, पृ - 78

102. वहीं, पृ - 36

103. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, पृ - 17

104. वहीं, पृ - 58

105. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, पृ - 28

106. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 10

107. वहीं, पृ - 19

"जन्म, विवाह, मृत्यु - एई त्रिकार्यर बाबे फटिका आरू लाऊपानी अपरिहार्य।"

108. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 27

109. वहीं, पृ - 42

110. सागर, लहरें और मनुष्य, उदयशंकर भट्ट, पृ - 99

111. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 180-181

112. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 265

113. आधा गाँव, राहीमासूम रज़ा, पृ - 24

114. वहीं, पृ - 168

115. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदल, पृ - 20

116. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, पृ - 14

117. वहीं, पृ - 10

118. वहीं, पृ - 26

119. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 9

120. वहीं, पृ - 63

121. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 81

122. वहीं, पृ - 160

123. वहीं, पृ - 192

124. वहीं, पृ - 110

125. वहीं, पृ - 146-147

126. वहीं, पृ - 105

127. वहीं, पृ - 30

128. हिन्दी-अंग्रेजी के आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, राजकुमारी सिंह, पृ - 245

129. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 44

130. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 55

131. वहीं, पृ - 96

132. वहीं, पृ - 97

133. वहीं, पृ - 99

134. वहीं, पृ - 18

135. वहीं, पृ - 140

136. आधा गाँव, राहीमासूम रज़ा, पृ - 38

137. वहीं, पृ - 28

138. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ - 286

139. वहीं, पृ - 74

140. वहीं, पृ - 74

141. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह,पृ - 10

142. कपिली परिया साधु, नवकांत वरूआ, पृ - 12

143. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 119

144. वहीं, पृ - 66

145. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 65-66

" धुमूहा बरसून, खर, बा-मारलि, **बिजूली-ढेरेकनिये जेन खेति** पठारत विघनि नघटाय।"

146. वहीं, पृ - 156

147. वहीं, पृ - 63

148. वहीं, पृ - 169

149. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 23

150. वहीं, पृ - 10

151. वहीं, पृ - 254

152. कब तक पुकारूँ , रांगेय राघव, पृ - 45

153. आधा गाँव, राहीमासूम रज़ा, पृ - 74

154. आधा गाँव, राहीमासूम रज़ा, पृ - 55(टिप्णी)

155. सागर, लहरें और मनुष्य, उदयशंकर भट्ट, पृ - 9

156. हिन्दी उपन्यास, सुषमा धवन, पृ - 148

157. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, पृ - 2

158. वहीं, पृ - 13

159. वहीं, पृ - 17

160. वहीं, पृ - 16

161. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, पृ - 62

162. कपिली परिया साधु, नवकांत वरूआ, पृ - 35

163. वहीं, पृ - 48

164. वहीं, पृ - 36-37

165. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 28-29

166. वहीं, पृ - 23-26

167. वहीं, पृ - 179

168. वहीं, पृ - 82-83

169. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 166

170. वहीं, पृ - 14

172. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 105

173. वहीं, पृ - 242

174. वहीं, पृ - 246

175. वहीं, पृ - 57

176. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ - 59

177. वहीं, पृ - 307-308

178. वहीं, पृ - 366-367

179. आधा गाँव, राहीमासूम रज़ा, पृ - 17

180. नोई बोई जाए, लीला गोगोइ, पृ - 55

181. वहीं, पृ - 152

182. वहीं, पृ - 110

183. कपिली परिया साधु, नवकांत वरूआ, पृ - 47

184. आधा गाँव, राहीमासूम रज़ा, पृ - 115

185. वहीं, पृ - 77

186. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 304

187. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 116

188. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ - 310

189. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 14

190. आधा गाँव, राहीमासूम रज़ा, पृ - 10-11

191. सागर, लहरें और मनुष्य, उदयशंकर भट्ट, पृ - 194

192. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 150

193. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 32

194. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, पृ - 3

195. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 2

196. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, पृ - 106

197. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 83

198. वहीं, पृ - 139

" कूकूरा चराई कारोबार रक्षा-कवच। कूकूरा एति उत्सर्गा करि विपदर परा मुफ्त होआर एईया कारबिसकलर चिराचरित प्रथा। कूकूरार केचाँ तेजेरे सेई अपदेवताबोरर अतृप्त दूर कराईसिल।"

199. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 109

पंचम अध्याय

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों की भाषा एवं शिल्प-विधान

पंचम अध्याय
हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों की भाषा एवं शिल्प विधान

भाषा-संरचना

भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने का सर्वाधिक सशक्त तथा व्यावहारिक माध्यम भाषा है। मानव का समस्त व्यवहार भाषा के माध्यम से ही होता है और चलता रहता है अर्थात् समाज की रचना भी इसी भाषा द्वारा हुई है और उसका संचालन भी भाषा द्वारा ही होता है। भाषा के बिना समाज बनता ही नहीं। काव्य तथा साहित्य सभी का समाहार संस्कृति के अंतर्गत हो जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि - साहित्य भाषा के माध्यम से संस्कृति का ही एक व्यक्त रूप है। या यूँ कहे कि भाषा ही संस्कृति की जननी भी है, माध्यम भी जिस देश की भाषा जितनी ही व्यापक एवं सशक्त होती है, उसकी संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार भी उतना ही व्यापक एवं सशक्त होता है। आंचलिक उपन्यास भी एक प्रकार का कथा-साहित्य है जो किसी अंचल-विशेष से सुसंबद्ध होता है। अंचल विशेष की स्थानीय रंगत को उभारने के लिए आंचलिक उपन्यासकार जिन लोकतत्त्वों का प्रयोग करता है, उनमें लोक-भाषा, बोलियों, उप-बोलियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। लोक-कहावतें, लोक-मुहावरे, लोक-गीत, लोक-शब्द तथा परिनिष्ठित भाषा के लोकोच्चरित रूप आदि मिलकर लोक भाषा का निर्माण करते हैं। इस प्रकार आंचलिक उपन्यासों की भाषा के सांस्कृतिक शब्दों ने हिन्दी शब्द-भंडार के लिए एक नया द्वार खोल दिया है। अतः स्पष्ट है कि भाषा हमारी सांस्कृतिक चेतना का ही एक प्रकट रूप होती है तथा संस्कृति और भाषा एक दूसरे की पूरक होती हैं।

लोकभाषा का प्रयोग

आंचलिकता को उभारने वाले अन्य तत्त्वों में भाषा का अपना एक विशेष स्थान है। यह भी कह सकते है कि आंचलिक उपन्यासों की पहचान उसकी विशिष्ट प्रकार की भाषा है। आंचलिक उपन्यासकार एक द्रष्टा की तरह, अंचल की कथा-वर्णन करने के साथ ही अपने आंचलिक पात्रों में से एक बनकर उन्हीं की तरह अंचल-जीवन के सुख-दुख को भोगता है, उन्हीं की भाषा-बोली में सुख-दुख की उन भीगी हुई अनुभूतियों का वर्णन-विश्लेषण भी करता है। अंचल का मुख्य आधार लोकजीवन होने के कारण यहाँ की स्थानीय बोली में वहाँ की घटनाओं का ज्यों का त्यों वर्णन अंचल जीवन के यथार्थ

रूप का दर्शन करवाता है। यही कारण है कि अंचल बोली के शब्द समुह, मुहावरों, कहावतों तथा लोकगीतों की अभिव्यक्ति अद्‌भुत एवं कलात्मक बन पाई है।

"मैला आंचल" उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है - लोकभाषा का प्रयोग। इस उपन्यास में हमें प्रत्येक पात्र अपनी स्वाभाविक एवं सहज पृष्ठभूमि के साथ मौजूद दिखाई देता है और भाषा, पात्र, स्थान, स्थिति और कार्य के अनुसार बदलती चलती है। कोई भी पात्र दो संपूर्ण वाक्य मैथिली में नहीं बोलता जो उस अंचल की सहज भाषा है। सभी पात्र अपनी स्वाभाविक भाषा बोलते हैं जिसके लिए कथावाचक ने मैथिली के कुछ शब्दों, पदों, मुहावरों एवं कहावतों का यथायोग्य स्थानों पर प्रयुक्त किया है। उपन्यास में भाषा के जिन स्तरों पर अपनी सृजनशीलता की अभिव्यक्ति की है, उनमें लोकगीत व लोकसंगीत के पुनः सृजन का एक स्तर है। इस स्तर में त्योहारों, पर्वों का अपना रंग भी भाषा के माध्यम से आकार ग्रहण करता है। एक अन्य स्तर है - जन व्यवहार का। मिथिला अंचल के मेरीगंज गांव व आसपास के क्षेत्र में जन व्यवहार में जो भाषा आती है, लेखक ने उसे भी उपन्यास में यथार्थ रूप से अभिव्यक्ति दी है।

प्रस्तुत उपन्यास में पात्रों के पारस्परिक वार्त्तालाप में सर्वत्र आंचलिक भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है। आधुनिक सभ्यता और शिक्षा के निकटतम होने वाला पात्र डॉ० प्रशांत हिन्दी के परिष्कृत एवं संस्कृतनिष्ठ रूपों का प्रयोग करता है। बाबू विश्वनाथप्रसाद भी हिन्दी के परिनिष्ठित रूपों का इस्तेमाल करते हैं। इसके विपरीत रामपियारी, रमजूदास की पत्नी की भाषा में वहीं दूरी है जो आधुनिक जीवन से उन्हें पृथक सिद्ध करती है। दो ग्रामीण स्त्रियों (फुलिया की माँ और रमजूदास की स्त्री, में वाद-विवाद हो रहा है -

"अरे, हाँ-हाँ, बेटा-बेटी केकरो, घीढारी करे मंगरो।चालनी कहे सूई से कि तेरी पेंदी में छेद। हाथ में कंगना तो चमका रही हो, खलासी को एक पुरिया सिंदुर नहीं जुटता है।"[1]

भाषा का एक अन्य उदाहरण देखिए जिसमें सुमरितदास और एक ग्रामीण के बीच वार्त्तालाप हो रहा है -

सुमरितदास फिसफिसाकर कहता है, " कलिया जेहल से भाग गया है। इसीलिए मलेटरी आया है। ..... खबरदार ? सुसलिट पाटी का नाम भी नहीं लेना। पूछे तो कहना, हम लोग काँगरेस में है। कालीचरन से कोई रिस्ता मत बताना। .... समझे ? लाल झंडा जिसके घर से निकलेगा तुरंत

गिरिफफ हो जाएगा ?[2]

इन संवादों में ही लोकभाषा की जीवतंता प्रमाणित हो जाती है। इसमें स्थानीय भाषा के शाब्दिक प्रयोग से भाषा के प्रवाह में जीवतंता और सरसता के साथ आंचलिकता का रंग भी आ गया है। यह भाषा न तो साहित्यिक हिन्दी से दूर है, न इसमें किसी प्रकार की दुर्बोधता है। 'मैला आचंल' के भाषा-शिल्प के आकर्षण का मूल कारण है - लोक भाषा का अधिकतम और सार्थक प्रयोग।

'आधा गाँव' उपन्यास के सभी पात्र जो गंगौली के आसपास के हैं, भोजपुरी उर्दु बोलते हैं और वे लोग जो ख़ड़ीबोली उर्दु बोलते हैं वे सामान्य लोगों द्वारा पसंद नहीं किए जाते। ग्रामीण लोग इसका मज़ाक बनाते हैं और उनकी आलोचना करते हैं। इस संबंध में कथावाचक मासूम कहता है कि - " मुझे कक्का वाली दास्तान ज्यादा अच्छी लगती थी, मुमकिन है इसकी वजह यह हो कि वह यह दास्तान लखनऊ की धुली-धुलाई उर्दु में नहीं सुनाया करते थे, बल्कि भोजपुरी उर्दु में सुनाया करते थे।"[3]

इस उपन्यास में भाषा के तीन अलग-अलग रूप दिखायी देते है। पहली, अशिक्षित पात्र विशुद्ध आंचलिक भाषा का प्रयोग करते है, दुसरा पढ़े-लिखे ग्रामीण उर्दु-मिश्रित आंचलिक भाषा का प्रयोग करते है और तीसरा लेखक की भाषा भी उर्दु-मिश्रित हिन्दी है। पात्रों की शिक्षा-दीक्षा, संस्कार, वातावरण से ही उनके मानसिक स्तर का निर्माण होता है और अपने मानसिक स्तर के अनुकूल ही उसकी बोली और व्यवहार भी होता है। ग्रामीण अनपढ़ पात्रों की भाषा विशुद्ध आंचलिक हैं -

"कलकत्ते में खेत मिलि है ?"

कलकत्ते में खेत ना है।

"ई काहे ?"

शहर में खेत कहाँ होता है, साहब।

"ई काहे, भाई ? का गाज़ीपूर में खेत ना है ?"

"गाज़ियोपुर कउनो शहर में शहर है। कलकत्ते का एक-एक ठो मोहल्ला ओसे दुगना-तिगुना बड़ा होइहे।"

"एतना बड़ा त ना हो सकता।"[4]

उपन्यास में ऐसे पात्रों की संख्या अधिक है, इसलिए इस उपन्यास में आंचलिक भाषा को ही प्रधानता मिली है। गंगौली के पात्रों की भोजपुरी उर्दु की मांग स्वाभाविक है क्योंकि गांव के लोग अजनबी

भाषा पंसद नहीं कर सकते। शहर से लौटने वाले लोग जब कभी प्रभाव जमाने के लिए या आदत की वज़ह से खड़ी बोली बोलने लगते हैं तो गांव के लोग उन्हें 'पक्की झाड़ने' से मना करते हैं। फुन्नन मियां, जवाद मियां, हकीम साहब, मिगदाद तथा सभी महिला पात्र भोजपुरी उर्दु ही बोलते दिखाए गए है, जो खड़ी बोली उर्दु बोलने वालों का मज़ाक उड़ाते है। आंचलिक भाषा, उसके शब्दों और वाक्यों के अलावा गालियों का प्रयोग भी उन्मुक्तता के साथ इस उपन्यास में हुआ है जिनकी अभिधात्मक प्रतीति अश्लील हो सकती है परंतु मुहावरों के रूप में लेखक ने इन गालियों के द्वारा पात्रों के आवेश को रूपायित किया है जो जिदंगी की वास्तविकता को सही रूप में व्यक्त करती है।

'अलग-अलग वैतरणी' में उस अंचल की स्थानीय भाषा भोजपूरी का प्रयोग किया गया है। लेखक की भाषा की विशेषता यह है कि जब उनके पात्र बोलते है तब तो गांव की बोली में बोलते हैं लेकिन जब स्वंय लेखक को वर्णन करना होता है तो भाषा साहित्यिक हो जाती है। भाषा के माध्यम से वे पूरे, समग्र रूप में अंचल के वातावरण को हमारे सामने उपस्थित कर देते हैं। आंचलिक वातावरण के निर्माण तथा पात्रों के चरित्र-चित्रण को अधिक स्वाभाविक और प्रभावशाली बनाने के लिए आंचलिक भाषा के सारे उपादानों - लोकगीतों, लोकोक्तियों, मुहावरों तथा शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में ग्रामीण पात्रों का संवाद की भाषा में आंचलिकता का रंग स्पष्ट परिलक्षित होता है :-

" दुलहिन घर में आयी। दुलहिन के बारे में वंशी बो काकी के बिना पूछे ही सब बताया - " पढ़वैया लड़की है बहिनी जी। उल्टा पल्ला डाल के मचिया पर बैठी। हमने कहा - हे-हा, देखो ई पटना ना है। जइसन देश बइसन भेस। घुंघट काढ़ के रहना परी। हमारी बात सुनके हँसे लगी। एकदम लड़की है बहिन जी। मचिया से उतर के घुँघट काढ़ के कोने में बइठ गयी। हिरदा भरभरा गया। गुनसहुर कुल से भरी-पुरी है, हाँ। जोड़ की तोड़ लड़की मिल गयी। जइसे कल्पनाथ वइसे पतोह।"[5]

प्रस्तुत उपन्यास में भाषा का एक ही रूप और स्तर सर्वत्र कायम है। पात्रों के संवाद की भाषा में आंचलिकता का रंग अधिक है, वहीं लेखक की भाषा का स्तर सामान्य बोलचाल की है। लेखक ने न ही शब्दों को मनमाने ढंग से तोड़-मरोड़कर आंचलिक भाषा के रूप में ढालने की कोशिश की है और न ही अंग्रेजी के अनावश्यक शब्दों का प्रयोग किया है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि शिवप्रसाद सिंह ने ग्रामीण जीवन के स्पदंन को आंचलिक भाषा के माध्यम से पकड़ने का सार्थक प्रयास किया है।

'कब तक पुकारूँ' उपन्यास भाषा-शिल्प की दृष्टि से अन्य आंचलिक उपन्यास से काफ़ी पृथक है। भाषा विषय के अनुसार प्रभावशाली है। करनटों के जीवन की यथार्थ अनुभूतियों को गहराई से अंकित करने के लिए बज्रभाषा का प्रयोग किया गया है जो करनटों की भाषा के करीब है। इसके अंतर्गत देशज, तद्‌भव और विकृत शब्दों का प्रयोग बड़े परिश्रम से किया गया है। लेखक ने भाषागत बिम्वों, प्रतीकों तथा ध्वनियों के प्रयोग द्वारा भाषिक रचाव में नया अर्थ भरकर उसे गत्यात्मकता प्रदान की है और भाषा सौष्ठव को बढ़ाया है। जैसे घूपों के साथ बलात्कार का चित्र प्रतीक और बिंबात्मक भाषा का उदाहरण है - "अंधियारा और घना हो गया और कोई भी तारा जैस उसकी पर्तों को हटाने और काटने में असमर्थ हो गया। खेतों में हवा सनसनाने लगी। और दूर -दूर तक आकाश में भागती फिरती। यातना सी कर उठती। और फिर जैसे आत्मीयता की चीत्कार करती हुई रोने लगती। खेत हिलते, और कांप उठते। उनकी अपनी सत्ता आज लज्जा से डूब रही। कुएँ की उदासी निकलकर अब उसकी जगत पर पड़े चरस में भर गई और चरस से पानी की जगह विवशता गिर रही थीं। अब कौन उसे पिए ? कोई पक्षी नहीं उड़ता। कोई आवाज़ नहीं आती। और नीरवता जब स्थापित है तो समय अनंत हो गया है।"[6]

उपन्यास की भाषा आंचलिकता के स्वर में डूबी प्रामाणिक भाषा है। एक-एक शब्द और एक-एक वाक्य एक संपूर्ण बिंब बन जाता है। लोकजीवन से नयी-नयी उपमाएँ लेकर भाषा की व्यंज्कता का विस्तार किया गया है तथा भाषा के जरिए कथ्य का निर्वाह भी सफलतापूर्वक हुआ है।

'सागर, लहरें और मनुष्य' की भाषा का स्वरूप हमें आंचलिकता का बोध कराता है। लेखक ने कोलियों द्वारा संवादों में बंबईया हिन्दी का प्रयोग कराया है। बंबई के समुद्र तट पर बसे बरसोवा के जिन मछुओं के जीवनगत पहलुओं को इस उपन्यास में चित्रित किया गया है, उनकी भाषा है तो मराठी पर उसमें गुजराती और हिन्दी भाषा का गहरा प्रभाव है जिसके फलस्वरूप उसका स्वरूप बिल्कुल बदल-सा गया है। एक उदारहण देखिए जिसमें लेखक ने बंबईया हिन्दी का प्रयोग किया है -

"नाना ने पिया, हमकू बोला तो हम बी पिया, वंशी। ताड़ी तो पियेंगा। नई पियेंगा तो धन्दा कैसे करेंगा ?

"खुब धन्दा करताय। हर रोज़ ताड़ी पीताय। एई तेरा धन्दाय। मूरख," कहती हुई वह दाँत पीसने लगी, फिर बोली - " हम बोलताय खबरदार, आगे ताड़ी पिया तो हम घर से निकाल देयेंगा। हमको ऐसा आदमी नई पाहिजे। समझ ले विटठल, तेरे कू मार-मारकार ठीक करना होयेंगा। आज तू

समुद्र में जायेंगा, जागला कू नई जाने का।"[7]

भाषा के संबंध में डॉ० विनयमोहन शर्मा का मत उल्लेखनीय है। वे लिखते है - "........... बंबई के समुद्री किनारे पर रहनेवाले मछुओं के जीवन का चित्रण किया है और मछुओं से आपस में विकृत हिन्दी बंबइया हिन्दी - का प्रयोग कराया है। वास्तव में वहाँ के मछुओं की भाषा मराठी है, वे आपस में मराठी ही बोलते हैं, जब मराठीतर भाषी से बातचीत करते हैं, तब अवश्य बंबइया हिन्दी का प्रयोग करते हैं। लेखक ने मछुओं से आपस में विकृत हिन्दी का प्रयोग करवाया है, जिससे उसमें अस्वाभाविकता आ गई है।"[8]

नवकांत बरूआ कृत 'कपिली परिया साधु' में नगाँव ज़िले में बहने वाली कपिली नदी के किनारे बसे लोगों के जीवनगत पहलुओं को बड़े ही यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में स्थानीय भाषा असमिया का प्रयोग किया गया है। आंचलिक भाषा के विशिष्ट शब्दों, उनके आंचलिक उच्चारणों, हिन्दी के विकृत शब्दों का प्रयोग किया गया है। लेखक की भाषा की विशेषता है कि उनके पात्र अपनी स्थानीय बोली में बात करते है। लेखक की भाषा में सामान्य साहित्यिक भाषा का स्तर सदा एक-सा ही बना रहता है।

ग्रामीण पात्रों की भाषा में स्थानीय बोली के कुछ शब्द इस प्रकार से देखे जा सकते है-

"एह-जानो कार्चिन तेल आछेने नाई।"

"दोकानीये लेमतो जोकारि चाले। गाँवखनर माजत एकेताई लेम।"[9] लेखक ने उपन्यास में ग्रामीण पात्रों के जरिए हिन्दी के विकृत शब्दों का भी प्रयोग किया है।

"क्या हुआ बाच्चू ?"

"तोमलोक भात खायेगा नाई किय ? सि सिहँतर भाषारे कबर चेष्टा करे।

"आभि कोन पकायेगा - रातमे काम नेहि हाय-तब पकाके खायेगा।"

"तोमलोके जे ईमानबोर माछ धरेगा-कि करेगा सेई-बोर ? सि जाने माछबोर भाटिलोई जाय-जिलालोई जाय। तथापि सोधे।

"मछलिचब टौन जाता हाय - पाईकार आदमी ले जाता।"

"अ तोमालोक माछ बेचेगा - हामलोक माछ नाई बेचेगा। पठारमे माछ मारता आरू पईता भातका लगत पूरपूरेक खाता हाय। काछ पानेसे भोज देगा।"[10]

असमिया शब्दों के साथ, उपन्यास कें कुछ पात्र कामरूप बोली के शब्दों का भी प्रयोग करते दिखाई पड़ते है -

"सेईगलाहान कि हा ? हरिया कामरूपर मानुह।

नकूलदाना - रूपाईर माតटो भागरूआ।

"दिचोन बापाहारे, चबाऊँ चाट्‌र्टामान

"एईबोर खाले बोले कलेरा हय।

"कूनिनो कले हा ?"[11]

'मिरि जियरी' में मिरि जनजाति के जीवन यथार्थ को चित्रित किया गया है। उपन्यास की स्थानीय भाषा असमिया है। उपन्यास के पात्रों के कथोपकथनों में कहीं कहीं पर 'मिर्सिंग' बोली के शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे-'अपनत', 'कूकूरा काटिलो', 'लाअरी', 'जागेपाई' आदि। लेखक ने पात्रों की पृष्ठभूमि के अनुसार भाषा का प्रयोग नहीं किया। इस उपन्यास के भाषा-शिल्प की विशिष्टता बस इतनी सी है कि इसमें अचंल में बसनेवाली मिर्सिंग समाज के कुछ विशिष्ट शब्द, वस्तुओं, पात्रों, स्थानों तथा पर्व-त्योहारों और सामाजिक-धार्मिक प्रथाओं के नाम, इन अवसरों पर गाए जानेवाले लोकगीत, पहनेवाले वस्त्र एवं वाद्य-यंत्रों के आंचलिक नाम दिए गए है। ग्रामीण पात्रों की भाषा में स्थानीय बोली (मिर्सिंग) के कुछ शब्द इस प्रकार से है -

'हे प्रभु। कउकचोन आहे वषरलोई आमार खेती-बाति बारू हबने ?

देऊधाई - हब।"

डेका-गाभरू - "मेघे बिजूलीये आमाक एको अईनाई नकरिबने ?"

देऊधाई - "मोक भालकोई पूजा दिले एको हानि-विधिनिये नापाब।"

डेका-गाभरू - "गाँवत पानी लगा ज्वर नरिया नहबतो ?

देऊधाई - 'नहब। किंतु मोक भालकोई पूजा दिब लागिब।"[12]

लेखक की भाषा में कहीं-कहीं काव्यत्व और भावत्य शब्द भी आयें हैं -

"बेलि प्राय चाईटामान बाजिल। सूरूज देवताई लाहे-लाहे पश्चिम आकाशत ठाई ललेगे। रदर किरण सोवणशिरी नोइत परि जिलमिलाइचे। लोरा-छोआलीहाले अकलोई अकलोई बहि आसे। एनेते सिफाले हाबिर परा एटा भालुक उलाल। भालूकटो उलोआ मात्रेई लोरा- छुआली हालर जीव उड़ी गल। दुयों

आतुर होई दोर मारिले।"[13]

आंचलिक उपन्यासों की आंचलिकता की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कसौटी है, उसमें आंचलिक भाषा का प्रयोग। इस दृष्टि से 'कईनार मूल्य' उपन्यास में पात्रों के वात्तालापों में कहीं-कहीं आदि समाज के शब्दों, का प्रयोग किया है। जैसे-आपंग, गाले, केबांग, देरेत आदि। यहाँ पर यह कहना समीचीन होगा कि उपन्यास में आदि समाज के कुछ शब्दो, पात्रों के स्थानीय नाम के वर्णन में प्रयुक्त कुछ विशिष्ट आंचलिक शब्दों के अतिरिक्त, इस उपन्यास की भाषा, सामान्य वर्णनात्मकता लिए हुए असमिया है। लेखक की भाषा और पात्रों की भाषा एक-सी सपाट और असमिया है। आंचलिक परिवेश के रंग को गाढ़ा करने के लिए यत्र-तत्र तीन-चार लोकोक्तियों का प्रयोग दिखाई देता है।

ग्रामीण पात्रों के कथोपकथनों में आंचलिक शब्द ओर लोकोक्तियों का उदाहरण द्रष्टव्य है -
"कारगुम किवा कवलगीया आसे नेकि ? गाँवखनर बरगामे एटोक आपंग गिलि सुधिले।
"मोर कवलगीया एको नाई " - कारगुमे थिय होई कोले। "मिन्दाकहँतक मई बारे बारे कोई दिसो, याबा एतियाउ सिहँतर बोआरीयेक आरू सिंहँतर बोआरीयेक होईये थाकिब। पेलोआ थूइ आकोउ नोसोमाय।"[14]
लुम्मेर दाई ने आंचलिक शब्दों, वाक्यों के अंर्थ पृष्ठ के नीचे फुटनोट में दिए है जिससे पाठक के रसास्वादन में बाधा न उत्पन्न हों और वे कृति को भली-भांति समझ सकें।

'नोई बोई जाए' का भाषिक संरचना-शिल्प आंचलिक यथार्थ के संश्लिष्ट प्रभाव को उसके आंतरिक तथा बाह्म, संपूर्ण अच्छे - बुरे भाव और चित्र छवियों के साथ अभिव्यंजित करने में समर्थ है। लीला गोगोई के भाषा-शिल्प की सबसे प्रमुख विशेषता है, सरलता, सीधापन और इतिवृत्तात्मक वर्णनात्मकता। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने स्थानीय भाषा असमिया का प्रयोग किया है। चाहे पात्रों के वार्त्तालाप की भाषा हो, चाहे लेखक के वर्णन-विश्लेषण की भाषा, उसके स्तर में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई देता। हिन्दी के तत्सम और तद्भव शब्दों के साथ, उर्दु के शब्दों और स्थानीय भाषा के शब्दों और मुहावरें के आधार पर जिस भाषा-शैली का निर्माण लीला गोगोई ने किया है, वह यथार्थवादी चित्रण के लिए सर्वथा उपयुक्त है। इस प्रकार लेखक ने नैरेटर की भाषा में अनेक ऐसे तत्त्वों का समावेश किया है जिससे ग्रामीण वातावरण मुखर हो सके और ग्रामीण लोगों का व्यक्तिगत निखर सकें। काफ़ी हद तक लेखक को इसमें सफलता प्राप्त हुई है।

इस उपन्यास की भाषा परिष्कृत ओर परिमार्जित असमिया है जिसमें हिन्दी, संस्कृत ओर उर्दु

के शब्द अपने तत्सम और तद्भव रूप में आए है :-

"कका, एटा लम्बा सांप (तद्भव) जंगघलरपरा आहि रास्तात उलालहि। सब लोरा क्लासर (अंग्रेजी) परा उलाई आहि हाल्ला करिबलोई धरिले। चौकीदारे (ऊर्दु) एडाल डंडा दी सांपतो मारि पेलाले। उसह, कि लम्बा ढेर मानुहे रास्तात खाड़ा होई चाई आचिल। मोई तार मुखालोई साई थाकिलो। आमि आलि, बाट, पथ, सर, पोति, बंकिया, लुंग जोत जि लागे तेनेकोईये कोईसिलों। आजिकालि सकलो रास्ता होल।"[15]

'रंगमिलीर हाँही' में रंगबंग तेरांग ने एक प्रकार की मिली-जुली भाषा का प्रयोग किया है जो कथावाचक के वर्णनों और सभी प्रकार के पात्रों की बातचीत में प्रयुक्त हुई है। सभी पात्र लगभग एक प्रकार की परिष्कृत भाषा बोलते है। परंतु कहीं-कहीं पर उपन्यासकार ने पात्रों के कथोपकथनों में क्षेत्रीय भाषा कारबी बोली की शब्दावलियों का प्रयोग किया है। जैसे-चवाक्, लांगखे-लांगपांग, हानथू, हामरेन, बंग आदि। उपन्यास में लेखक ने उदारता के साथ स्थानीय रंग का जीवंत चित्रण किया है। इस प्रकार स्थानीय शब्दों के प्रयोग से जहाँ स्थानीय रंग में वृद्धि हुई है, वहाँ सहज, स्वाभाविकता और यथार्थ चित्रण पाया जाता है। रंगबंग तेरांग जी ने कारबी गाँव और यहाँ के वासियों की बदलती हुई मानसिकता, संश्लिष्ट संवेदना और समस्याग्रस्त जीवनानुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए उस जन भाषा का प्रयोग किया हैं जिसमें अंचल की मिट्टी की सोंधी गंध बसी रहती है, जिसमें वहाँ के लोगों के आंतरिक भाव झलकते है। एक उदाहरण देखिए-

"रंगमिलीर गाँवर नतुन चामर लोरा-छुवाली सिहँत। चामे चामे लोरा-छुवालीबोर ईयातेई घिला-लादुम खेलि डागर हय। डेका होआर लगे लगे डेका-चांगत ऊठी जिरस करे केलंगदून - केलंगसापर होय। सिहँते जिरसंग चिलाय नतूनकोई गतानूगतिकभावे। जिरसगंर मूकलि आकाशर तलत गगना आरू पंछिर सूर बजाई जीवनर दायित्यबोध ग्रहण करे। जिंरसगर परिसमाप्ति सिहँत होय गाँवर सारवाछा, रिछवाछा, फेरांगके। जिरसंग होल कारबी समाज जीवनर मूल सोपान गछजोपार शीतल छां,काषर डेका-चांग आरू रंगमिलि - एई तिनिउरे अविखंडित रूप होल रंगमिलिर गाँवखन, रंगमिलिर समाजखन।"[16]

लोकजीवन तथा आंचलिक प्रकृति के सुक्ष्म निरीक्षण से प्राप्त कुछ अनुकूल और अछूती उपमाएँ इस उपन्यास की भाषा-संरचना में विशेष महत्व रखती है -

"रातिर रंगमिलिखनो लाहे लाहे नीरव होई आहिल। गाँवर ओत-तोत कूकूरर भूक-भूकनि। जिरसंगर

'तेरांग' घरर बाँही, गगनार सुरो लाहे लाहे नीरब होई आहिबलेई धरिले। हुदूर मातत रातितो जयाल होई आहिल। बेर्ठालांगसोर चारिउफाले जोनर कोमल पोहरे छाति धरिले। जोनर पोहरत जिलमिलाई ऊठा कारबी लंगपिर शान्त जलस्त्रोत रंगमिलिक सावटि मरम जनाई बोई याब धरिले-नीरबे निश्चूप प्रकृतिर बूकूत जोनर पोहर आरू बरपानीर अविशांत सोंते प्रकाश करि थाकिल गतिर कथा, सचेतन गतिर कथा।"[17]

प्रस्तुत उपन्यास में असमिया भाषा के अतिरिक्त क्षेत्रीय भाषा कारबी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। परतुं स्थानीय बोली से संबंधित मुहावरों एवं लोकोक्तियों का अभाव पाया गया है। लेखक ने प्रायः हर पृष्ठ के नीचे फुटनोट में आंचलिक शब्दों, वाक्यों का अर्थ दिया है जिसके फलस्वरूप भाषा आंचलिकता के बोझ से दबकर अपनी सहज प्रेषणीयता खो न दें।

शब्द भंडार

आंचलिक उपन्यासों में व्यवहृत शब्द-भंडार से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि शब्द का वास्तविक स्वरूप क्या है। वाक्य रचना के स्तर पर शब्द (सार्थक) अर्थ और ध्वनि के संयोग से निर्मित एक स्वतंत्र इकाई है। इस संबंध में कामताप्रसाद गुरू ने कहा है - "एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं - जैसे लड़का, मैं, धीरे, परंतु आदि।"[18]शब्दों के महत्व पर विचार करते हुए लेखक कामताप्रसाद गुरू का कहना है कि - "शब्द भाषा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई होते हैं। ये भाषा की जीवनी शक्ति हैं। इनके बिना भाषा भाषा की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सकती है, क्योंकि भाषा शब्दात्मक हैं।"[19]

अतः यह स्पष्ट है कि शब्दों के अभाव में भाषा की कल्पना नहीं की जा सकती। शब्द और उसके अर्थ से ही भाषा का निर्माण होता है, इसलिए शब्दों के अभाव में अर्थ का प्रशन ही नहीं उठता। शब्द और अर्थ भाषा के दो महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। शब्दों की उपयुक्त विशिष्टताओं के कारण ही हम बोल-चाल में प्रायः भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग करते हैं। यदि हम इनका ठीक-ठाक उपयोग न करें तो भाषा में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाय और संभवतः हमारी बात कोई न समझ सकें। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्रत्येक नया शब्द एक नये विचार का चित्र होता है, जिसके सहारे भाषा की गाड़ी चलती है।

भाषा के लिए शब्दों की उपयुक्त महत्ता को देखते हुए हम कह सकते हैं कि इस दृष्टि से आंचलिक उपन्यासों में प्रयुक्त विभिन्न बोलियों के शब्दों का परिनिष्ठित हिन्दी के लिए अत्यधिक महत्त्व

है। 'शब्द भंडार प्रयोग अभिव्यक्ति अथवा शैली की दृष्टि से हिन्दी बोलियों में बहुत कुछ ऐसा धन पड़ा है जिससे हमारी सामान्य हिन्दी भाषा अधिक सम्पन्न हो सकती है।"[20]

रेणु के 'मैला आंचल' में मैथिली, भोजपुरी, अंग्रेजी, उर्दु के शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है, पर स्थानीय बोली की प्रकृति और स्थानीय उच्चारण प्रक्रिया की विशेष्टताओं के कारण इन सबका रूप एक ही सांच में ढलकर आंचलिक रूप बन गया है। प्रस्तुत उपन्यास में मुख्यतः तीन प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है -

देशज शब्दाली - गमकौआ, कीहिस, छापी, झोंटा, पिल्ही, माथा, चुक्कड़, हिड़िस, मंधाता आदि।

अंग्रेजी शब्दावली - सिविल सर्जन, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट, चैयरमेन, आंफिसर, फेलियर, कन्फर्म आदि।

उर्दु,फारसी,संस्कृत के तत्सम-तद्भव रूप - आफताब, जहालत, महारूम, निसाफ, वेदांत, भौतिकवाद, सोपक्षवाद आदि।

रेणु ने 'मेला आंचल' के भाषा-शिल्प में अत्यंत सृजनात्मकता का परिचय दिया है। उनके भाषा प्रयोग में विविधता व जीवतंता है। भाषा-शिल्प की सृजनात्मकता के कारण 'मैला आंचल' में सरसता भी आई है।

शिवप्रसादसिंह जी ने 'अलग-अलग वैतरणी' में आंचलिक भाषा के विशिष्ट शब्दों को उनके आंचलिक उच्चारणों से साथ प्रकट किया है। प्रस्तुत उपन्यास में भी मुख्यतः तीन प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया गया है-

देशज शब्द - कोताही, नेवता, चटक, धराऊ आदि।

अंग्रेजी के शब्द - इन्टरव्यू, स्कूल, फेल, पास, स्टेशन, लाइन, आर्डर, ट्यूशन आदि।

अरबी-फारसी-उर्दु के शब्द - नालायकी, गुलाम, खानदानी, पुश्तैनी, खस्सी, दिलफरेब, कसरत आदि।

'आधा गाँव' उपन्यास में भाषा का जो स्वरूप है, वह उर्दु-हिन्दी और भोजपूरी भाषा है। 'आधा गाँव' की संरचना हिन्दी के दुसरे उपन्यासों से नितांत भिन्न है। अतः लेखक ने भाषिक रचाव में विविध प्रकार के शब्दों का प्रयोग करते हुए शीआ मुसलमानों के जीवन यथार्थ को अभिव्यक्त किया है।

देशज शब्द - कहत्यू, टेंटुआ, बुकनी, बुझाताड़ी, महत्तर, दोहथ्थड़, मुस्कियात आदि।

उर्दु के शब्द - ताल्लुकात, तनहाई, कैफियत, खलीफ़ा, शहादत, तिजारत, ख्वाब, मुन्तशिर आदि।

अंग्रेजी शब्द - यूनिवर्सिटी, स्कुल, वोट, होमियोपैथी, इनफ़ार्मर, कान्सटेबल, कवार्टर आदि।

'कब तक पुकारुँ' में भाषा की नयी अर्थवत्ता को अभिव्यक्त किया गया है। लोकजीवन से नयी-नयी उपमाएँ लेकर भाषा की व्यंजकता का विस्तार किया गया है। भाषा को सशक्त बनाने के लिए विविध प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया गया है -

स्थानीय शब्द - ढलुआ, फाड, मशक, दुबाई, कटखनी, सीरक, कढ़ीखार आदि।

उर्दु के शब्द - कमबख्त, तैखाने, दौलत, दिल्लगी, मालदार, ठेकेदार आदि।

अंग्रेजी के शब्द - गाउन, पोलिटिकल एजेंट, वाइसराय, क्लर्क, थर्मामीटर आदि।

इसी प्रकार 'सागर, लहरें और मनुष्य' की भाषा में भी आंचलिकता का पुट लाने के लिए स्थानीय बोली के अलावा कई अन्य प्रकार के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जैसे-

स्थानीय शब्द - ताड़ी, होड़ी, सुकाणु, मड, खात्री, माहिती

उर्दु के शब्द - हुकूमत, कमज़ोर, बेहोश, हमउम्र, बदमाश, बैचेन आदि।

अंग्रेज़ी के शब्द - मैनेज़र, किडंरगार्टन, पफ, पाऊडर, फस्ट ऐड, रेस्टोरेन्ट, बाथरूम आदि।

नवकांत वरूआ ने 'कपिली परिया साधु' में अपनी भाषिक संरचना को कहीं भी बोझिल, अस्वाभाविक, कृत्रिम और किलष्ट नहीं बनने दिया हैं, यही इनके भाषिक संरचना-शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता है। प्रस्तुत उपन्यास में कई प्रकार के शब्दों का प्रयोग कर, शब्द भंडार में वृद्धि करने का प्रयास किया है।

असमिया के शब्द - पूहकर, दोमाही, दलंग, चरतीया, नाम ढका, भेटि ऊचन, कलाघूमटि आदि।

अंग्रेजी के शब्द - वालिटियर, पिकेटिंग, स्कूल, जेल, वॉडर, स्टेशन आदि।

अरबी-फारसी के शब्द - वकील, हाबिलदार, सिपाही, चाबूक आदि।

आंचलिक पात्रों के वार्त्तालाप के प्रसंग में आंचलिक बोली के शब्द तथा तत्सम-तद्भव शब्दों के लोकोच्चरित रूप अधिक दिखायी देते है :- कान, मानुह, इसकूलर, घरत, भोज, मृत्यु आदि। नवकांत बरूआ के शब्द-युग्म भी बड़े स्वाभाविक बन पड़े है जो वार्तालाप को जीवंत बना देते है जैसे-लेम-सेम, लर्न्ठन-चर्न्ठन, आरिया-चारिया आदि।

'मिरि जियरी' के भाषा-शिल्प की सबसे प्रमुख विशेषता है सरलता, सीधापन। चाहे पात्रों के वार्त्तालाप की भाषा हो, चाहे लेखक के वर्णन-विश्लेषण की भाषा, दोनों का स्तर समान है। स्थानीयता की अभिव्यक्ति के लिए मिसिंग बोली के शब्दों के अतिरिक्त कई अन्य प्रकारों के शब्दों का प्रयोग किया

गया है -

मिसिगं शब्द - आपंग, चेनेंगा, कनेंग, निका, अपनत

असमिया के शब्द - धँपात, बताह, पारग, बुकूल, एसिकि आई-बोपाई, एपूरा, कान्दिले आदि।

अंग्रेजी के शब्द - कोट, मेजिस्ट्रेट, रेभिनिऊ आदि।

अरबी-फारसी के शब्द - सेलाम (सलाम), आमोला, केरानी (किरानी) फौज़दारी, कागज़, हाकिम, मुल्ला (महिला) देवानी (दीवानी) आदि।

'कईनार मूल्य' की भाषा में भी आंचलिकता के रगं को उज़ागर करने के लिए स्थानीय बोली के शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों के भी विविध रूप दिखाई पड़ते है -

आदि समाज के शब्द - गाले (पांरपरिक महिला के वस्त्र), केबांग (विचार सभा) बरगाम (गांव का मुखिया), यावा (लड़की)

असमिया के शब्द - आबेलि (शाम), भितरते (अंदर), सरूकालर (छौटे में), खरि (लकड़ी), आउकान (ध्यान न देना), पूहि (पालना)

अंग्रेजी के शब्द - स्कूल, डिप्टी कमिशनार, हास्पताल, हारमोनियम।

आरबी-फारसी के शब्द - कलिजा (कलेजा), बेमार (बीमार), हज़ार, मेज़, हिसाप (हिसाब), किताप (किताब) आदि।

तत्सम-तद्भव के लोकोच्चारित रूप - राति (रात), अपमान, हाथ, अनुसरण, खामी, विया (विवाह), गाँवलेई (गाँव) आदि।

'रंगमिलीर हाँही' में रंगबंग तेरांग ने स्थानीय बोली के प्रयोग द्वारा रंगमिली गाँव की यथार्थ की अभिव्यक्ति में बड़ी सहायता की है। लेखक ने आंचलिक भाषा के लोकगीतों, वाक्यों और कथनों का तो इन्होंने पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है परतुं अंग्रेजी हिन्दी शब्दों के विकृत रूप, एवं लोकोच्चरित रूप के प्रयोग में बहुत संयम दिखाई पड़ता है। उपन्यास में क्षेत्रीय भाषा कारबी के अलावा अन्य शब्दों का प्रयोग किया है :-

कारबी के शब्द - नंग (सहेली), हांगफारला (अतिथि गृह), पह (पगड़ी), फंगरंग आंगसू (एक प्रकार का फूल)

अंग्रेजी के शब्द - खीष्टियानर (क्रिस्टीयन), इस्कूल (स्कूल), वृटिश (ब्रिटिश), डिसम्बर (दिसंबर), गर्वनर।

असमिया के शब्द - अलप (थोड़ा), चकूर (आखँ), कानि (अफ़ीम) रदत (धूप), जिलिकि (चमकना), आँतरि (हटजाना)।

तत्सम -तद्भव के शब्द - साँप, कार्य, कर्म, गाँव, सौभाग्य, नृत्य आदि।

इसी प्रकार 'नोई बोई जाए' में हिन्दी के तत्सम और तद्भव शब्दों के बीच-बीच में स्थानीय भाषा के शब्द और मुहावरों तथा अंग्रेजी के शब्दों के लोकोच्चरित रूप देकर भाषा-शैली का निर्माण लीला गोगोई ने किया है, वह यथार्थवादी चित्रण के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं।

असमिया के शब्द - आलसुआ (बहुत प्यारा) लाल काल (गहरी नीदं) रमलियावलोई (चहचहाने), भूईकँप (भूकंप), बतर (मौसम) जोनाक (चाँदनी)

अंग्रेजी के शब्द - कांग्रेसी, हाईस्कूल, रेडियो, अंग्रेज़, कार्ड, वोट, क्लास

अरबी-फारसी के शब्द - रोज़ा, नमाज़, अदालत, सरकारी, चौकीदार, चाकर, तरकारी, तारीख, दाखिल आदि।

तत्सम -तद्भव के शब्द - अंधकार, घी, दाँत, अग्नि, शिक्षा, काम, विद्या, साँप

इसके अतिरिक्त लीला-गोगोई ने शब्द-युग्म का बड़े ही स्वाभाविक ढंग से प्रयोग किया है, जो वार्तालाप को जीवतं बना देते है जैसे-माटी-बाड़ी, चाबी-कार्ठि, काँही-बाटि, शाक-पाचलि नेदेखा-नूसुना आदि।

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ

भाषा भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने का साधन है। हम अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से कहने के लिए मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं। इनकी सहायता से गंभीर भावों को भी बहुत सहज तथा सरल ढंग से अभिव्यक्त किया जा सकता है। 'मुहावरा' शब्द अरबी भाषा का है, जिसका अर्थ है - बातचीत करना अथवा प्रश्न का उत्तर देना। वस्तुतः शब्दों का ऐसा समुच्चय मुहावरा है जो अपने साधारण अर्थ को छोड़कर किसी विशिष्ट अर्थ को प्रकट करें। मुहावरे अपने प्रचलन के कारण समाज में रूढ़ हो जाते हैं, यही कारण है कि लोग उस भाषा को असानी से समझ लेते है - जो मुहावरा युक्त होती है। "मुहावरे किसी भाषा का परम उत्कृष्ट और ओजपूर्ण प्रयोग होते है, इसलिए उनके द्वारा

अल्प प्रयास में ही अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाती है।"[21] इस प्रकार मुहावरे भाषा की ओजस्विनी शक्ति की वृद्धि में अत्यंत सहायक होते हैं।

'लोकोक्तियाँ या कहावतें' लोक अनुभव का परिणाम होती है। इसे लोक की उक्ति कहा गया है। इसकी उत्पत्ति के लिए विशेष व्यक्ति, स्थान अथवा काल का निर्देश नहीं किया जा सकता। लोकोक्तियाँ स्वयं सिद्ध होती है। मुहावरों की भांति ही भाषा की सौंदर्यवृद्धि एवं समृद्धि में लोकोक्तियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। कितुं कहावतों और मुहावरों में कुछ सूक्ष्म अंतर देखे जा सकते हैं। लोकोक्ति पूर्ण वाक्य है, जबकि मुहावरा खंड वाक्य है। पूर्ण वाक्य होने के कारण लोकोक्ति का प्रयोग स्वतंत्र एवं अपने आप में पूर्ण इकाई के रूप में होता है जबकि मुहावरा किसी वाक्य का अंश बनकर रह जाता है। लोकोक्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता जबकि मुहावरों में वाक्य के अनुसार परिवर्तन होता है। लोकोक्ति किसी बात के समर्थन अथवा खंडन के लिए प्रयुक्त की जाती है, जबकि मुहावरा वाक्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि कहावतों का रूप सदैव स्थिर रहता है तथा सदैव वाक्य होने के कारण शाब्दिक कलेवर की सृष्टि से भी ये मुहावरों की अपेक्षा अधिक शब्दों वाली होती है।

रेणु ने 'मैला आंचल' में आंचलिक भाषा के मुहावरों तथा उक्तियों का बड़ा स्वाभाविक प्रयोग यत्र-तत्र किया है - अंधों में काना बनकर लीडरी करना, कूप बेंग होना, आंचल मैला करना, कुबेर का भंडार होना, छट्ठी का दूद याद करा देना। इसी प्रकार उपन्यास में प्रयुक्त कुछ कहावतों का उदाहरण देखिए - जहाँ मेल वहाँ सरग है, दो भैसों की लड़ाई दूब के सिर आफत, सभी काशी चले जाए तो पत्तर कोन चाटे ? धान न बोले, बोले भूसा टन।

शिवप्रसादसिंह ने 'अलग-अलग वैतरणी' में भी लोकजीवन से नयी-नयी उपमाएँ, लोकोक्तियाँ ओर मुहावरे लेकर संश्लिष्ट अनुभूतियों की सशक्त अभिव्यक्ति की है - देसी चिरई मरहठी बोली, बिना बान के चन्नन से माथ पिराता है, नानी के आगे ननिहाल का बखान, मेहर न लड़िका, चले दुबारिका, बाट जोहना, हिरदा भर-भर जाना, कान काटना,गाल बजाना, बदन में आग लगना आदि मुहावरे और लोकोक्तियाँ उपन्यास को प्रभावशाली बनाती है और वहाँ के आंचलिक परिवेश को सजीव करती है।

'आधा गांव' में भी मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग आंचलिकता के परिवेश को जीवंत बनाने के लिए किया गया है - आँखे खुलना, बगुला भगत, दरिया में रहकर मगरमच्छ से बैर,

घूटने टेकना, खून खौलना, कानी के हाथी का डुबाव होइहे, काम आना, दिन फिरना, हाथ डालना, नमक पर नाज होना आदि। इसी प्रकार 'कब तक पुकारूँ' में भी मुहावरों और लोकोक्तियो का प्रयोग से भाषा में नयी ताज़गी आ गयी है - 'जुआ के डर से क्या लंहगा छोड़ा जाए, सूत न पौनी, कोरी से लाठा-लाठी, गाड़ी देख के लाड़ी के पाँव फूलने लगते हैं, जंगल की लकड़ी, सिर झुकाना, आँखे नीची करना, दाँतों तले उंगली दबाना, मुँह फेरना आदि।

'सागर, लहरें और मनुष्य' में भी लेखक ने भाषा-संरचना में आंचलिक शब्द-मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ का प्रयोग किया है - आँखे चढ़ना, बगले झाँकना, बेसिर-पैर की हाँकना, हाथ का मैल, चींटा तो गुड़ को पाकर दौड़ेगा ही, ताली दोनों हाथों से बजना, खून का-सा घूँट पीना, चार पैसा दो तो मीठा बोलेगा, वैसे बात करो तो खाने दौड़ेगा आदि।

असमिया आंचलिक उपन्यासों में 'नोई बोई जाए' में लोकोक्तियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। लेखक की कुछ उपमाएँ और लोकोक्तियाँ तो बड़ी अर्थगर्भित और भाव-व्यंजक बन पड़ी है जिससे आंचलिक परिवेश में सजीवता आ गयी है - समाने-समाने करिबा काज, हारिले-जिकीले नाई लाज,जी तुलिलो जोआईलोई, पो तुतिलो बोआरीलोई, जात भालेई मात भाल, बंगहे मंगह खाय, बंगह नहले पेलनि जाय, एक तिरीर पोई लोदोर-पोदोर, दुई तिरीर पोई गाँतुआ एन्दुर, जूईशाल नष्ट करे जेऊरार खरि, घर नष्ट करे डकरीया बूढ़ी आदि।

इसी प्रकार 'कईनार मूल्य' में लुम्मेर दाई ने मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग अपने आंचलिक परिवेश को ध्यान में रखकर किया है। आदि समाज में प्रचलित ये लोकोक्तियाँ वहाँ के जीवन यथार्थ को अभिव्यक्ति करती है - पेलोआ थूइ आकोउ नोसोमाय, बताहत उराबलगीया कथा, तिरूता जाति होल बताहत ऊरि फूरा सरा पात, माकर पेतरपरा उलोआ नाई आदि। इसी प्रकार 'कपिली परिया साधु' में भी लोकोक्तियों का प्रयोग मिलता है जैसे- पढ़े, पढ़ाई बोऐ पान, ई तिनिये निश्चिते आन।

शिल्प-विधान

अंचलकेन्द्रित कथावस्तु

आंचलिक उपन्यासों का कथानक अपने अंचल से ही संबंधित होता है। कथानक का पूर्ण विकास इसी अंचल में होता है। 'मैला आंचल' के कथानक का आंचलिक परिवेश पूर्णिया जिले का मेरीगंज गांव है। उपन्यास की सम्पूर्ण घटनाओं की श्रृंखला प्रारंभ से लेकर अंत तक इस अचंल से संबंधित है।

'मैला आंचल' में रेणु ने आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक और राजनीतिक-हर तरह की समस्याओं से ग्रस्त बिहार के पूर्णिया जिले का 'मेरीगज़' गांव का प्रभावशाली चित्रण किया है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति और परिवेश का ही प्रभाव है कि कालाज़ार और मलेरिया जैसी भंयकर बीमारियाँ यहाँ अड्डा जमाये रहती है। 'मैला आंचल' किसी एक व्यक्ति अथवा परिवार की कहानी नहीं हैं, वह पूरे गांव की कहानी है। सभी परिवारों, सभी टोलों की कथा को एक सूत्र में बांधती है। गांव के तीन प्रमुख दल है - कायस्थ, राजपूत और यादव। मठ के महंत है सेवादास, उनका चेला रामदास है और कोठारिन लक्ष्मी है। जोतखी है पुरातन-पंथी और दवा-दारू के नितांत विरोधी भी। इसके अतिरिक्त संथाल है जो बस्ती से दूर अलग रहते हैं - मैला आंचल का कथानक अनेक कथाओं में बिखरा हुआ है जिसे डॉ० प्रशांत और कमला की मुख्य कथा से जोड़ा गया है। डॉ० प्रशांत, कमला-ममता की कथा के अतिरिक्त अन्य उल्लेखनीय कथाएँ है बालदेव, कोठारिन लक्ष्मी, कालीचरन और मंगलादेवी की इन कथाओं का भी पर्याप्त विस्तार हुआ है। अनेक छोटे-छोटे प्रसंग भी हैं।

आर्थिक विपन्नता, जातिगत भेदभाव, राजनैतिक व्याभिचार, भौगोलिक या प्राकृतिक प्रकोप, धार्मिक आडम्बरता आदि के अतिरिक्त इस आंचलिक समाज की दुसरी बीमारी है - यौन संबंध। ऐसा प्रतीत होता है कि सारा का सारा मेरीगंज गांव किसी-न-किसी रूप में इस अनैतिकता में लिप्त है। 'मैला आंचल' के कथानक निर्माण में अंचलीय राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा प्राकृतिक समस्याओं की ऐसी सघन और संश्लिष्ट बनावट है कि इसके एक एक धागे को अलग करना आसान कार्य नहीं है। ये सभी समस्याएँ अंचल-जीवन से संबंधित है और इनका चित्रण और विश्लेषण जिस आत्मीयता और अनुभव की प्रामाणिकता के साथ उपन्यास में हुआ है, वह आंचलिक कथानक की अपनी विशेषता हैं।

'अलग-अलग वैतरणी' में शिवप्रसादसिंह ने पूर्वी उत्तरप्रदेश के एक गांव 'करैता' के माध्यम से ग्राम्य जीवन की अनेक समस्याओं, बिखराव, स्वार्थ लिप्सा, सामुहिक जीवन का ह्रास आदि परिवर्तनों को उपन्यास में यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त किया है। लेखक ने करैता गांव के माध्यम से ही स्वतंत्र भारतीय गांवों की समग्रता को उज़ागर किया है। देवीधाम मेले का वास्तविक स्वरूप, भंयकर सूखे की स्थिति से उत्पन्न हुई ग्रामीण समस्याएँ इसकी कथावस्तु को आंचलिक स्वरूप प्रदान करती है। 'अलग-अलग वैतरणी' में कथानक की दृष्टि से अन्तसूत्रतापूर्ण बिखराव और दोहरी बुनावट स्पष्टता देखी जा सकती है। इसमें एक दर्जन परिवारों की पूरी-पूरी कहानियाँ जुड़ी हुई है। ध्यान देने की बात

है कि एक पूर्ण गांव और एक जिंदा ग्रामांचल बिखराव के साथ भरपूर कसाव देकर इस कृति में उपस्थित किया गया है। अंचल में नयी चेतना का प्रार्दुभाव विपिन, देवनाथ, मास्टर शशिकांत तथा स्वरूप भगत जैसे पात्रों द्वारा की गयी है। करैता गांव के प्रत्येक घर-परिवार और उसके दुखों और समस्याओं की अलग-अलग वैतरणियों की कथाएँ ही इस उपन्यास के कथानक की बुनावट में शामिल है। अलग-अलग वैतरणी,अलग-अलग नरक है जिसे निर्मित किया है भूतपूर्व ज़मीदारों ने, धर्म तथा समाज के पुराने ठेकेदारों ने, भ्रष्ट सरकारी अफ़सरों ने जिसके फलस्वरूप गांव की प्रगतिशील पीढ़ी छटपटा रही हैं।

करैता गांव के जीवन में अनेक वैतरणी बहने लगीं, जिन्हें पार करने का प्रयत्न गांव की जनता करती तो है, पर बीच में ही दम घुट जाने, हिम्मत हारने के कारण नगरों की ओर दौड़ती है। गांव में रहते वे हैं जो वहाँ रहना तो चाहते है, पर रह नहीं पाते। उपन्यास का कथानक कई आंचलिक समस्याओं, घटनाओं और दुर्घटनाओं को उसकी वास्तविकता के साथ चित्रांकित करता है।

आंचलिक उपन्यासों के इस क्रम में 'आधा गांव' की कथावस्तु गंगौली गांव में रहने वाले मुस्लिम सम्प्रदाय के जनजीवन की भीतरी-बाहरी सच्चाईयाँ, धार्मिक पांखड, अनैतिक योनाचार आदि को पूरी वास्तविकता के साथ उद्‌घाटित करता है। गंगौली के मुसलमान देश विभाजन की घटना या दुर्घटना द्वारा परिवर्तन की ऐसी दिशाओं के सामने आ खड़े हुए है जिन्हें वे स्वीकार नहीं कर पाते किंतु अस्वीकार करके भी उनका अस्तित्व संकट ग्रस्त हो जाता है। यह कहानी विभाजनपूर्व सांमतवादी माहौल से गुजरते हुए इस सामंतवादी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक ढाँचे के टूटने और उसके स्थानापन्न होते हुए स्वातन्त्र्योत्तर नए मुल्यों के आगमन की साक्षी है।

लेखक ने गंगोली के गतिहीन समाज द्वारा पाकिस्तान बनने की घटना को जिस रूप में ग्रहण कराया है, वह सारे अन्तविरोधों के साथ मानवीय प्रभावों को जन्म देती है। पाकिस्तान का निर्माण हुआ और कई परिवार टूट गए। हकीम सैयद अली कबीर को यह नहीं मालुम था कि पाकिस्तान का अर्थ हिन्दुओं और मुसलमानों को अलग करना नहीं बल्कि मिंया को बीबी से, बाप को बेटे से और भाई को बहिन से अलग करना है। पाकिस्तान इनके सामाजिक और वैयक्तिक दोनों ही अस्तित्वों को तोड़ते हुए पुराने पंरपरागत के बीत जाने और नवीन भौतिक सच्चाईयों के उनके स्थानापन्न हो जाने की वर्तमानता को धारण करता है। विभाजन की यह घटना भंयकर सामाजिक,राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक बदलाव लाती हैं गंगौली के समाज में। निराशा, अर्थहीनता तथा विवशता का भाव इस समाज को घेरता

है। परिवर्तन की इस आंधी में यह समाज अपनी जड़ों का कटना महसूस करता है। इन समस्याओं के अतिरिक्त उत्तर पट्टी तथा दक्षिण पटटी के आपसी तनाव, झगड़े, दलबन्दी, धर्म के पीछे छिपा हुआ अंहकार, हिन्दु-मुस्लिम एकता और वैमनस्य, आर्थिक तनावों के चलते पारिवारिक रिश्तों में दरार पड़ना तथा आज़ादी के बाद उत्पन्न ग्रामीण राजनीति का खोखलापन आदि कुछ प्रमुख आंचलिक समस्याएँ हैं, जिनके आधार पर इस उपन्यास की कथावस्तु का निर्माण हुआ है। 'आधा गांव' के कथानक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पूरा परिवेश, उसकी समस्याएँ और पात्र लेखक के समझे-बुझे और निकट से जाने-पहचाने है, जो आंचलिक उपन्यास की कथावस्तु की एक प्रमुख विशेषता है।

उदयशंकर भट्ट कृत 'सागर, लहरें और मनुष्य' का कथा क्षेत्र है - बरसोवा। 'बरसोवा का असली नाम बिसवा है। यह बंबई समुद्र तट के पूर्व-पश्चिम में मछलीमारों की बड़ी बस्ती है - 'अंधेरी' से पश्चिम की तरफ़ लगभग तीन-चार मील दूर। .... अंधेरी से आती एक लम्बी सड़क के किनारे पूर्व और पश्चिम में यह गांव बसा है। कुछ पक्के मकान, लेकिन अधिकतर कच्चे और छप्पर वाले। जब बबंई बसा नहीं था, तब बरसोवा एक बड़ा बंदरगाह था।...... पुर्तगालियों के जहाज़ यहाँ आकर लगा करते थे।[22] इस चित्रण से आभास होता है कि उपन्यास में अंचल को रूपायित करने का साधन, भौगोलिक वातावरण का यथार्थ चित्रण अंचल की समग्रता का चित्र प्रस्तुत करना है।

'सागर, लहरें और मनुष्य' की कथावस्तु बंबई समुद्र तट पर बसी मछुओं की बस्ती (बरसोवा) का अंचल है। यहाँ के निवासी कोली कहलाते है। इनमें स्त्री-पुरूष दोनों अर्थोपाजन के हेतु श्रम करते हैं। स्त्रियाँ स्वस्थ और सबल होती है। वे घर में राज्य करती है। विवाह के लिए लड़के वालों को लड़की के माता-पिता से अनुरोध करना पड़ता है। वे उन्हें रूपए भी देते हैं। इस जाति की लड़की रत्ना, थोड़ी बहुत पढ़ी-लिखी है। उसका अधकचरा व्यक्तित्व, अंचल के वातावरण से ऊब कर अभिजात समाज के सुख-वैभव में जा बसना चाहता है। अपनी ऊँची महत्वाकांक्षाओं के चलते ही उसे कई बार कई पुरूषों की भोग्या बनना पड़ता है। उपन्यास के कथानक की रचना मछुओं के आर्थिक-संघर्ष, सामाजिक व्यवस्था और पिछड़े समाज में पढ़ी-लिखी नारी की समस्या को लेकर हुई है। मछुओं की आर्थिक समस्या और कोली समाज में नारी समस्या-इन दोनों समस्याओं का स्वरूप विशिष्ट आंचलिक है और ये ही इस उपन्यास को आंचलिकता भी प्रदान करती है। लेखक ने एक उपेक्षित समाज को इतने निकट से देखने का प्रयास किया है। उसके एक-एक कोने को बड़ी सावधानी के साथ आँका है। कोली जाति के

सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पक्षों का सूक्ष्म अध्ययन, यथार्थ अंकन, इसमें पाया गया है जो अंचल को नई सामर्थ्य प्रदान करता है।

रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ' का कथानक राजस्थान के एक ग्रामीण क्षेत्र में करनट जाति के जीवन यथार्थ को प्रस्तुत करता है। करनट जरायमपेशा कहे जाते है। इनमें यौनसंबंधी कोई नैतिकता नहीं होती। इनमें मर्द, औरत को वेश्या बनाकर उसके द्वारा धन कमाते हैं। इनका खानाबदोश समाज घोर उत्पीड़ित है। समाज की उपेक्षित और तिरस्कृत यह खानाबदोश जाति हर तरह की आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक समस्याओं से ग्रस्त है। घोर अभावों से त्रस्त यह करनट समाज, खेल-तमाशा, नाच दिखाकर, खिलौने बनाकर,हिरण की खाल बेचकर, भीख मांगकर अपना जीवन यापन करते है। ये जड़ी बूटियाँ भी जानते हैं और इलाज भी करते हैं। करनट समाज में यौन व्यापार खुलकर चलता है। नारी एवं पुरूष के शारीरिक संबंध सामाजिकता और नैतिक दायरे से हटकर होते हैं। भंगी भी इन्हें अपने से नीचा मानकर उनकी पत्तल तक नहीं उठाते।

प्रस्तुत उपन्यास सामाजिक समालोचना को द्वन्द्वात्मक चेतना के माध्यम से व्यक्त करता है। उच्च जाति वालों के शोषण, पुलिस और दुसरे कर्मचारियों का भ्रष्टाचार तथा सामाजिक विषमता अपने उग्र रूप में हमारे सामने आती है। सुखराम इसी सामाजिक विषमता को लक्ष्य करते हुए कहता है कि - "ये दुनिया नरक है। हम गन्दे कीड़े है। तूने यह संसार ऐसा क्यों बनाया है जहाँ आदमी कटता है तो उसके लिए दर्द तक नहीं होता ? यहाँ पाप इतना बढ़ गया है कि गरीब और कमीना आदमी कोढ़ी बन-बनकर अपने पेट के लिए अपनी अच्छी देही को गन्दा बना लेता है। यहाँ एक-एक आदमी दबता है, पर हम तो कमीन हैं। वे बड़े लोग क्यों करते है ? ऐसा .... नट की छोरी पर जबानी आती है और गंदे आदमी उसे बेइज्जत करते हैं, फिर भी वह रंडी की तरह जिए जाती है। जिए जाती है। मर क्यों नहीं जाती ? हम सब मर क्यों नहीं जाते ?[23]

उपन्यास का कथानक नट जीवन की सारी विसंगतियों, आर्थिक संघर्षों, सामाजिक उपेक्षा, नैतिक-अनैतिक स्थितियाँ तथा उनके बीच उभरती हुई नयी चेतना को उद्घाटित करती है। उपन्यास की कथावस्तु का निर्माण इन्हीं आंचलिक समस्याओं की यथार्थ-भूमि पर हुआ है।

असमिया आंचलिक उपन्यासों में नवकांत बरूआ कृत 'कपिली परिया साधु' का कथानक नगांव ज़िले में प्रवाहित होनेवाली कपिली नदी के किनारे बसने वाले गांवों के ईर्द-गिर्द घूमता है। यह नदी

एक निर्जीव नदी न होकर मानवीय भावों एवं विकारों से मुक्त संवेदनयुक्त सजीव पात्र है। उपन्यास में कपिली नदी का मानवीकरण किया गया है और यह लोक जीवन का प्रतीक है। बाढ़ के समय कपिली का विध्वसंकारी रूप सामने आता है, जो इस अंचल के हरे भरे खेतों की मिट्टी को नुकसान पहुँचाता है, और यहाँ के निवासियों को हर तरह से तबाह कर देता है। लेकिन फिर भी वहाँ के निवासी कपिली का किनारा छोड़कर नहीं जाना चाहते क्योंकि - "कपिली नगाँव के लोगों के लिए सर्वस्व है। ..... किंतु कपिली के किनारे बसे लोग यह जानते है ..... कपिली उनके दुख की साथी है .... आनंद की भी साथी है। कपिली का पानी जहाँ एक ओर बाढ़ लाकर अनिष्ट करता है वहीं दूसरी ओर उनके खेतों को सिंचाई के लिए जल भी प्रदान करता है तथा इसका निर्मल जल लोगों की प्यास भी बुझाता है। कपिली नदी के सहारे ही उनका व्यापार भी चलता है। आज से ही नहीं बल्कि राजा के दिनों से।..... कपिली नदी, कपिली के किनारे बसे लोगों का जीवन है। कपिली एक जीवित नदी है ...... लोगों के जीवन और मृत्यु के साथ यह जीवित नदी तादात्मक स्थापित किए हुए है।"[24]

इन प्रमुख और स्थायी समस्या के अतिरिक्त इस अंचल की अन्य भी कई छोटी-बड़ी समस्याएँ हैं, जिनके तानेबाने से कथावस्तु की बुनावट हुई है, जैसे शिक्षा की समस्या, जात-पात की समस्या, देश की आज़ादी की समस्या आदि। इनमें देश की स्वतंत्रता की समस्या के अतिरिक्त सभी समस्याएँ क्षेत्रीय या आंचलिक ही है। इस अंचल में नयी जागृति तथा राजनीतिक चेतना का प्रवेश रूपाय द्वारा होता है जो स्थानीय पात्र है। उसके ह्रदय में क्रांति द्वारा देशोद्धार की प्रबल भावना विद्यमान है। कपिली परिया साधु एक आंचलिक उपन्यास है इसके संबंध में डॉ० लीला गोगोई का कहना है कि - "कपिली नदी के किनारे बसे लोगों के सुख-दुख, आशा-निराशा, आनंद और अश्रुओं का कारण कपिली नदी है। उपन्यास की कहानी का त्रासदीमूलक अतं भी कपिली नदी को केन्द्र में रखकर ही किया गया है। इसमें एक अंचल और उसके विशिष्ट समाज का वर्णन मिलता है जिसके कारण 'कपिली परिया साधु' को 'रिजनेल नावेल' या 'आंचलिक उपन्यास' की संज्ञा दी गई है।[25]

आंचलिक उपन्यासों की कथावस्तु में स्त्री-पुरूष प्रेम-संबंधों का वर्णन कुछ अधिक विस्तार और महत्व प्राप्त कर लेता है। 'मिरि जियरी' की कथावस्तु भी स्त्री-पुरूष के प्रेम-संबंधों पर आधारित है। जंकी और पानेई का प्रेम सरल, सीधा, और पवित्र है यह प्रेम ह्रदय की प्राकृत पुकार से उत्पन्न होता है। बिरिंची कुमार बरूआ के अनुसार - 'मिरि जियरी', जनजातीय जीवन को आधार बनाकर लिखा गया पहला

उपन्यास है।"

जंकी और पानेई का प्रेम आंचलिक प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है, जो बचपन में परस्पर आकर्षण से शुरू होता है और बाद में जीवन-संघर्ष की कठिन घड़ियों में प्रगाढ़ होता जाता है। पानेई और जंकी के प्रेम में गहराई और अकृत्रिमता है। पानेई जंकी से कहती है - "जंकी मैं तुम्हें पंसद करती हुँ तथा तुमसे प्रेम भी करती हूँ, हमेंशा तुम्हें अपने आँखों के सामने देखती हूँ।"[26] इसका उत्तर देते हुए जंकी कहता है कि- "जब तक ये जन्म रहेगा, तब तक मैं तुम्हें प्रेम करता रहूँगा। पानेई तुम मुझे छोड़ मत देना।"[27]प्रेम का यह आदर्श आंचलिक प्रवृत्ति और सहज आंचलिक प्रेम का आदर्श स्वरूप है। जंकी और पानेई का प्रेम गंधर्व-विवाह में परिणत तो होता है लेकिन पानेई के पिता के लालच के आगे दोनों सुखी जीवन की आस लिए ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। मृत्यु के पश्चात्, जब सोवणशिरी नदीं में गांववालों को उनकी लाश मिलती है,तो वे देखते है कि दोनों की लाश एक दूसरे से जुड़ी हुई है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि दोनों का प्रेम अपने नैसर्गिक रस से कठोर आंचलिक जीवन को आप्लावित करता है। बिरिंची कुमार बरूआ के अनुसार - 'मिरि जियरी', जनजातीय जीवन को आधार बनाकर लिखा गया पहला उपन्यास है।"[28]

लुम्मेर दाई कृत 'कईनार मूल्य' आदि समाज पर आधारित एक आंचलिक उपन्यास है। उपन्यास का कथानक आदि समाज में प्रचलित कुरीतियों, कुप्रथाओं, रीति-नीति को उज़ागर करता है। इसका कथानक लड़की खरीदने-बेचने की कुप्रथा के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है। उपन्यास में आदि समाज के पिछड़ेपन, अभिशप्त जीवन मुल्यों और कालांतर में मुखरित हुई जनचेतना के माध्यम से इस क्षेत्र में होनेवाले परिवर्तनों की आँधी, स्पष्ट तौर पर दृष्टिगोचर होती है। यदि उपन्यास के कथानक को ध्यान से देखें तो हम पायेंगे कि इसमें मानव शोषण की अनन्त कथाएँ है।

बाल-विवाह जैसी सामाजिक कुप्रथा का शिकार गुमबा, इस पुरानी कुरीति के विरूद्ध आवाज़ उठाती है। आदि समाज में लड़की के मूल्य ग्रहण करने की प्रथा है जिसके चलते गुमबा के पिता ने, उसके विवाह के मूल्यस्वरूप, वर पक्ष से कई प्रकार की मूल्यवान वस्तुएँ और नकद रूपए लिए। परंतु गुमबा बाल्य काल में किए गए इस विवाह का खंडन करती है जिसके परिणामस्वरूप उसे तरह-तरह के दंड का भागीदार बनना पड़ता हैं। उसकी स्थिति जानवरों से भी बदहत्तर बना दी जाती है। लेकिन इन विषम परिस्थितियों में भी वह अपने आत्मसम्मान के लिए लड़ती है और इस कुप्रथा के विरोध में खड़ी

हो जाती है।[29]

गुमबा के प्रयासों के चलते ही आदि समाज में नयी चेतना और बदली हुई मानसिकता का स्पष्ट और प्रखर रूप दिखाई देने लगता है। इस प्रमुख समस्या के अतिरिक्त इस अंचल की अन्य भी कई छोटी बड़ी समस्याएँ है, जिनके सहारे कथावस्तु का निर्माण हुआ है जैसे नारी के अस्तित्व का प्रश्न, शिक्षा की समस्या, पुरानी पीढ़ी की शोषण प्रणाली, आर्थिक समस्याएँ आदि। प्रस्तुत उपन्यास आदि समाज की विशिष्ट सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समस्याओं को लेकर लिखा गया है। आंचलिकता की अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने आंतरिक और बाह्य-सभी प्रकट-अप्रकट, दृश्यों और सच्चाईयों के साथ कथानक को बुना है।

रंगबंग तेरांग कृत 'रंगमिलीर हाँही' में कारबी जनसमुदाय के लोगों की संस्कृति, रीति-रिवाज़, आचार-विचार आदि का जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास की कथावस्तु रंगमिली गांव के लोगों की आर्थिक विपन्नता, अशिक्षा, अंधविश्वास, धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक प्रथाओं को यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त करती है।

लेखक ने कारबी समाज की विशिष्ट आंचलिक समस्याओं जैसे शिक्षा की समस्या, आवागमन की समस्या, खेती-बाड़ी की समस्या,अफ़ीम के नशे की समस्या आदि के आधार पर उपन्यास की कथावस्तु निर्मित की है। उपन्यास में गरीब, अशिक्षित और भोले-भाले कारबी लोगों के जीवनगत पहलुओं को दर्शाया गया है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि कारबी समाज 'अफीम के नशे' के कारण ही सभ्य समाज से पिछड़ा हुआ है। लेखक ने लिडंक नामक व्यक्ति का उदाहरण देते हुए इस तथ्य से अवगत कराया है कि अफीम का नशा किस प्रकार उसके घर को तहस-तहस कर देता है।"[30] घर की एक-एक वस्तु को, इस लत के कारण बेचना पड़ा और परिणाम यह हुआ कि आर्थिक विपन्नता ने उसके घर को चारों ओर से घेर लिया। गांव का मुखिया सारइक तेरांग रंगमिली को प्रगतिशील बनाने हेतु, वह शिक्षा की उपयोगिता से लोगों को अवगत कराने का प्रयास करता है।

उपन्यास की कथा मुख्य रूप से इन्हीं आंचलिक समस्याओं को लेकर रंगमिली गांव में भ्रमण करती है। कारबी लोगों की जीविका के साधन, उनके आचार-विचार एवं संस्कृति आदि की, कथा समेटे हुए उत्तरोत्तर विकसित होती है। इस दृष्टि से इसका कथानक विशुद्ध रूप से आंचलिक है। उपन्यास में स्थानीय रंगों को गाढ़ा करने के लिए प्राकृतिक और भौगोलिक परिस्थितियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका

निभाई है। कारबी समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को अभिव्यक्त करने में यहाँ के लोकगीत, लोकनृत्य, लोक-रीतियाँ, लोक-उत्सव आदि का यथार्थवादी चित्रण किया गया है।

लीला गोगोई कृत 'नोई बोई जाए' का कथानक सेदुंरीपाम गांव की आर्थिक, सामाजिक, नैतिक तथा राजनीतिक समस्याओं को पूरे यथार्थवादी परिवेश में अभिव्यक्त करता है। अंचल के जीवन की सारी समस्याएँ इस कथा का आधार है। बाढ़ और बीमारियों से अंचलवासियों की बर्बादी, आर्थिक संघर्ष, सामाजिक रूढ़ियाँ, गांधीजी के नेतृत्व में लड़ी गयी स्वतंत्रता की लड़ाई - ये सारी समस्याएँ इस उपन्यास की कथावस्तु के निर्माण में सहायक बनती है। स्वतंत्रता संग्राम को छोड़कर अन्य सभी समस्याएँ अंचल से ही संबंधित है।

उपन्यास का कथानक भगीरथ फूकन के आस-पास भ्रमण करता है। लेखक ने भगीरथ फुकन के माध्यम से असमिया समाज एवं संस्कृति का जैसा दिग्दर्शन कराया है, वैसा बहुत कम आंचलिक उपन्यासों में हुआ है। असमिया समाज की छोटी-बड़ी सभी घटनाओं के प्रमाणिक और यथार्थ चित्रण द्वारा आंचलिक परिवेश की सृष्टि की गई है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की नयी मानसिकता और प्रगतिशील चेतना, वर्तमान समस्याओं और परिस्थितियों में संघर्षरत दिखाई देती है। आज़ादी के पश्चात् गांवों की उतनी उन्नति नहीं हुई, जितनी होनी चाहिए थी। वर्तमान समय में गांव टूट रहे हैं। सामाजिक सभाओं का अभाव हो गया है। आपसी रिश्ते बदल रहे हैं। चाचा भतीजे में पहचान नहीं। सब स्वार्थी हो गए हैं। माता-पिता भी अपरिचित से लगते हैं। समाज में आनेवाले बदलाव को लक्ष्य करते हुए लेखक कहते है कि - "नदी की धारा निरंतर तीव्र गति से ऊपर से नीचे की ओर बहती रहती है। उसका विपरीत दिशा में बहना असंभव है। उसके दोनों किनारे धँसते जाते है, फिर भी नदी की धारा गतिशील है, अपने अस्तित्व को कायम रखती है। किनारे पर बसे लोग कभी न कभी तो मौत की आगोश में सो जाएगें। इन लोगों के साथ पुरानी परंपराएँ भी समाप्त हो जाऐगीं। नई पीढ़ी के नए लोग, नयी मान्यताओं के आधार पर एक नए समाज का गठन करेंगे।"[31]

प्रस्तुत उपन्यास में आंचलिक जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति के साथ हम इस तथ्य से भी अवगत होते है कि प्राचीन मूल्यों एवं पंरपराओं की टकराहट से नए सांस्कृतिक मूल्यों का उद्घाटन हो रहा है। अंचल वासियों के आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, उत्सव-त्योहार वहीं है किंतु परिस्थिति के अनुसार उनमें परिवर्तन की धूँधली रेखा प्रस्फुटित होती दिखाई दे रही है। प्राचीनता धीरे-धीरे टूट रही

है और नए जीवन-मूल्यों की स्थापना हो रही है।

पात्रों का चरित्र चित्रण

किसी भी उपन्यास के पात्रों का चरित्र-चित्रण ही उसकी मुख्य विशेषता है। सभी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण महत्वपूर्ण होते हैं, किंतु आंचलिक उपन्यासों में इसकी विशिष्ट स्थिति होती है। आंचलिक उपन्यासों में व्यक्ति चरित्र का पूर्ण अभाव है, क्योंकि यह उपन्यास के केन्द्र में रहनेवाले नायक की परम्परा से भिन्न है, इसलिए अंचल ही इन उपन्यासों का परम साध्य एवं नायक हैं। फिर भी आंचलिक उपन्यासों के पात्रों को उनके चरित्र-विश्लेषण की सुविधा के लिए तीन वर्गों - उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग में बाँटा जा सकता है।

रेणु के 'मैला आंचल' में असंख्य पात्रों के चरित्रों की सृष्टि की गई है। ये सभी पात्र मिलकर अंचल जीवन के विविध पहलुओं को उज़ागर करते हैं। अतः रेणु ने स्त्री-पुरूष, जमींदार-किसान, महाजन, नेता, डाक्टर, तहसीलदार, देशभक्त आदि विभिन्न वर्गों के पात्रों को लिया गया है। ये सभी पात्र मेरीगंज अंचल के यथार्थ को उज़ागर करते है। 'मैला आंचल' के डॉ० प्रशांत, कमला और तहसीलदार उच्चवर्गीय पात्र है। इस वर्ग के पात्रों की अपनी कुछ खास विशेषताएँ होती है जो इन्हें दूसरों से पृथक करती है। जैसे तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद सिंह, जो विचारों से प्रगतिशील है। अपनी पुरानी लीक-जड़ता-रूढ़िवादिता को त्यागकर अपने को युग के अनुकूल ढाल लेते हैं। अपनी रैयत के साथ अपने पूर्वजों की सी ज़ोर जबरदस्ती वह नहीं करते। रैयत उनसे खुश है। रैयत कहती है - "जो भी हो तहसीलदार के दिल में दया-धर्म है। बाकी मालिक लोग तो पिशाच हैं पिशाच।"[32]

इसी प्रकार डाक्टर प्रशांत भी मानवतावादी पात्र हैं जो विदेश जाने से इंकार कर भारत के पिछड़े भू-भाग में रहकर वहाँ के लोगों की सेवा करना चाहते है। उसके अंदर की 'मिट्टी और मनुष्य' से गहरी मुहब्बत, उसे ग्रामीणों के बीमार तन और बीमार मन के इलाज के लिए प्रेरित करती है। आंचलिक उपन्यासों में उच्च वर्गीय पात्रों की संख्या तो बहुत कम होती है परतुं मध्य और निम्नवर्ग के पात्रों की भीड़ दिखाई पड़ती है। 'मैला आंचल' का बावनदास, बालदेव, कालीचरन अपनी राजनीतिक क्रियाशीलता और देशभक्ति के कारण ही मध्यवर्गीय चरित्र से लगते हैं। इसके बाद निम्नवर्गीय आंचलिक पात्रों का पृथक अस्तित्व है। निम्नवर्गीय पात्रों में सेवादास, फुलिया, खलासी, रमजुदास की स्त्री आदि आते हैं। संक्षेप में रेणु के पात्र अपने गुण-दोष अपनी आंचलिकता विशेषताओं, अपनी स्वाभाविकता, सजीवता एवं

जीवंतता के द्वारा अंचल जीवन का सफल चित्रण करते हैं।

'अलग-अलग वैतरणी' तो महान चरित्रों का विराट 'अलबम' ही है जिसकी विशेषता हरेक चरित्र की अपनी अद्वितीयता में निहित है। इस विशिष्टता ने 'व्यक्ति' और 'टाइप' का भेद बहुत कुछ मिट जाता है। उच्चवर्गीय पात्रों में जैपालसिंह, विपिन, बुझारथ और कनिया आते हैं। लेकिन उच्च शिक्षा और सांमती संस्कारों के कारण विपिन का चरित्र अपने बड़े भाई बुझारथ से पृथक है। खलील मियां के शब्दों में, 'विपिन तो बिल्कुल दुसरे तरह के आदमी है।"[33] बुझारथ से एकदम भिन्न। वह उच्चवर्गीय पात्र होकर भी उच्चवर्ग के पांरपरिक चरित्र से सर्वथा भिन्न है। विपिन विचारों से प्रगतिशील है, करैता गांव की टूटती हुई जिदंगी को वह जोड़ना चाहता है परंतु गांव में व्याप्त गुण्डागर्दी, सामाजिक विसंगतियाँ, टूटन तथा घुटन के फलस्वरूप वह केवल मानसिक योजनाएँ ही बनाकर रह जाता है। इसी प्रकार मास्टर शशिकांत भी गांव में शिक्षा की उन्नति को लेकर प्रयास तो करता है परतुं गांव में निहित स्वार्थों का चक्र उसे गांव में रहने नहीं देता। वह लाचार होकर लौटता है - "सूरज की रोशनी में शशिकांत करैता आया था। आज वह रात के अँधेरे में अपने सारे हौसले लुटा कर लौट रहा है।"[34]

उपन्यास में जैपालसिंह और उनके परिवार के अन्य सदस्यों के अतिरिक्त शेष सभी पात्र मध्य और निम्नवर्ग के ही अंतर्गत आते हैं। जग्गन मिसिर, सुरजू सिंह, सुखदेव राम, हरिया, सरिया, खलील मियां, सुगनी, धनेसरी, पुष्पी, सरूप भगत, बीसू सुरजितवा, दयाल, जगेसर आदि मध्य और निम्नवर्गीय पात्र है। लेकिन इनमें से किसी एक का भी चरित्र अपने ही वर्ग के दुसरे पात्र की तरह नहीं है। इस उपन्यास के चरित्रों का विश्लेषण करते हुए लक्ष्मीकांत वर्मा कहते है कि - "मैं समझता हुँ कि पूरे उपन्यास में जितने भी छोटे-बड़े पात्र आए है सबकी सजीवता को शिवप्रसाद सिंह जी ने सफलता के साथ अंकित किया है। यदि सुगनी जैसे पात्र अपनी कृत्रिम सामाजिक विपन्नता के प्रतीक है तो उसी में विपिन और कनिया जैसे पात्र भी है। यदि नितांत टिपिकल ज़र्मींदार के लड़के की भांति बुझारथ का व्यक्तित्व है तो, नितांत रोमानी और सामंती व्यवस्था के अभिशाप को भोगने वाले दयाल और राजो भी है। यहीं नहीं जग्गन मिसिर, खलील मियाँ, झिनकू और घुरविनवा जैसे भी पात्र है। पटहनिया बो जैसी पात्र और धनेसरी बुढ़िया जैसा पात्र भी पूरी बनावट में अपने सहज अस्तित्व के साथ मौजूद है।"[35]

'आधा गांव' उपन्यास में पात्रों का हुजूम है, ये पात्र वर्ग पात्र भी हैं और विशिष्ट भी। पात्रों की भीड़ में कोई भी चेहरा पूरा दिखाई नहीं देता। इस संबंध में डॉ० ज्ञानचन्द गुप्त कहते है कि - "इस

बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आंचलिक उपन्यासों में प्रायः पात्रों की संख्या अधिक होती है, लेकिन इस उपन्यास ने पात्रों के संख्या-संबंधी सभी रिकार्डों को तोड़ दिया है। 'आधे गांव' की पूरी आबादी ही इस उपन्यास में उपस्थित है।"[36]

'आधा गांव' के ज़मींदार मियां लोग जो ज़मींदारी प्रथा समाप्त होने से पूर्व उच्चवर्ग के अन्तर्गत आते थे, वे लोग ज़मींदारी उन्मूलन के पश्चात् मध्यवर्ग-निम्नवर्ग की श्रेणी में आ गए। उच्चवर्ग के पात्रों का, परिस्थितियों के थपड़े खाते-खाते निम्न-मध्यवर्ग में आ जाने की प्रक्रिया में ही इनके चरित्रों का निर्माण हुआ है। हम्माद मियां, हकीम अली कबीर, सैय्यद अली कबीर, समाउद्दीन खाँ आदि उच्चवर्गीय पात्रों का एक मात्र सहारा जमींदारी ही थी, जिसे वे मज़हब की तरह मज़बूत मानते थे। वह भी उनकी इच्छा के विपरीत खत्म हो गई और उन्हें अपने घर में ही बेघरबार बना गई। प्रारंभ में अहंकारी, विलासी, खान-पान और शादी-व्याह में रक्त शुद्वता को महत्व देने वाले तथा कलमी संतानें पैदा करनेवाले ये सारे उच्चवर्गीय ज़मींदार मिंया, ज़मींदारी उन्मूलन और पाकिस्तान के निर्माण के बाद इस कदर बदल गए कि इनके वास्तविक रूप को पहचाना मुश्किल हो जाता है। प्रायः सभी पात्रों के चरित्र एक ही टाइप में ढले है और किसी में कोई व्यक्ति-वैशिष्ट्य नहीं। हाँ इतना अवश्य है कि फुन्नन मियां, सईदा, मिगदाद, अली कबीर और परूसराम के चरित्र ही वर्गीय चरित्र से थोड़ा हटकर हैं। इन सबके विपरीत परूसराम चमार एम.एल.ए बनते ही निम्नवर्ग से छलांग लगाकर मध्यवर्गीय में पहुँच जाता है। वह गंगौली के भूतपूर्व ज़मीदारों से सांठ-गांठ करके अपने ही वर्ग और जाति के लोगों से मुहँ फेर लेता है। ज़मींदार सैय्यद फुस्सू जूतों की दुकान खोलकर अपना जीवन निर्वाह करना पड़ता है। फुन्नन मियां को परूसराम से दोस्ती करके अपनी रोजी-रोटी चलानी पड़ती है।

'सागर, लहरें और मनुष्य' का विषय बरसोवा तट पर बसे 'कोली' कहे जानेवाले मछुआरों का पिछड़ा समाज है। प्रत्येक आंचलिक उपन्यास की तरह स्थानीय जिंदगी का स्वरूप बनाने वाले पात्रों का एक हुजूम है यहाँ भी। पुरानी जड़ता और स्थितिशीलता को धारण करने वाले विट्ठल और वंशी, आधुनिक शहरीपन की ओर आकर्षित उनकी बेटी रत्ना, कृत्रिम आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करता मिथ्याचारी और गैर ईमानदार माणिक, उसके विरूद्व अनपढ़, गंवार लेकिन ईमानदार और प्रामाणिक यशवंत। इन सबके अलावा हीरा, नाना, जागला, इट्ठा, दुर्गा, भीम सी, वर्लीकर आदि पात्रों के चरित्र मछुओं के सामान्य वर्गीय चरित्र से किसी भी प्रकार अलग नहीं है। जीवनोपार्जन हेतु सागर की लहरों

पर खेलना, मछली मारना, शराब पीना इत्यादि-यही है उनके जीवन का क्रम जिसमें गतिशीलता की कोई संभावना दिखाई नहीं देती।

विट्ठल का तो कोई अस्तित्व ही नहीं है, वह तो पूरी तरह पत्नी का गुलाम है, न कोई इच्छा है न अनिच्छा। वह शरीर से मज़बूत होते हुए भी दिमाग से खोखला है। अपनी पत्नी से डरता है और उसी के इशारों पर चलता हैं।....... ' तो हम कू पूछने से क्या ? जो जांगला लगे सो करेगा। वंशी कू कौन बोलेगा, अइसा करो अइसा मत करो बाबा।"[37] वंशी अपने पति विट्ठल के अलावा जागला के साथ भी शारीरिक संबंध स्थापित करती है, ताकि वह किसी और लड़की के चक्कर में पड़कर अपना अलग घर बसालें और फिर उससे मज़दूरी की मांग करें। उसकी बेटी रत्ना में भी भौतिक सुख-सुविधाओं की चाह अधिक है। फिर वह तो पढ़ी-लिखी भी है। वह मच्छीमारों के रहन-सहन, आचार-विचार से एकदम घृणा करने लगती है। उसकी यही सोच उसे माणिक के करीब लाती है। माणिक के चरित्र के माध्यम से एक अर्द्धशिक्षित, अर्द्धसभ्य और एक साधनविहीन निम्नवर्गीय युवक की महत्वकांक्षा की विफलता एवं सफलता का उल्लेख किया गया है।माणिक की महत्वकाक्षां ही रत्ना को कई पुरूषों की वासना का शिकार बना देती है। परतुं अंत में उसे डाक्टर पांडुरंग जैसे उदार व्यक्ति का साथ मिल जाता है।

इसी प्रकार यशंवत का चरित्र एक आदर्श प्रेमी और चरित्रवान व्यक्ति के रूप में हुआ है। प्रारंभ में उसका चरित्र एक वर्गीय चरित्र-सा ही है। पर धीरे-धीरे वह आदर्शवादी मार्ग अपनाते हुए ग्राम-सुधार में योग देता है और शिक्षा-प्रसाद तथा सफ़ाई के कार्यों में लग जाता है। सारिका, धीरूवाला तथा माणिक अनांचलिक पात्र है क्योंकि इनकी चारित्रिक विशेषताएँ इन्हें कोली समाज से अलग करती है।

'कब तक पुकारूँ' में रांगेय राघव ने नटों की आर्थिक शोषण, सामाजिक पतन को चित्रित किया है। उपन्यास राजस्थान और ब्रज की सीमा पर बसे गांव और वहाँ के लोगों के अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास, गरीबी और शोषण को उनके रीति-रिवाज़ों, परंपराओं के साथ सामने लाता है। इस उपन्यास में पात्रों की संख्या कम है और मुख्य-पात्र की संख्या तो और भी कम। सुखराम, प्यारी, कजरी, रूस्तम खाँ, बांके, नरेश, ठाकुर विक्रम सिंह, सूसन ही कुछ ऐसे ही पात्र हैं जो विरोधी परिस्थितियों को झेलते हुए भी वर्ग-चेतना को स्पष्ट करते हैं। प्यारी और कजरी का चरित्र भी, अपने वर्ग के विशिष्ट चरित्र से भिन्न किसी व्यक्ति-वैशिष्ट्य का आभास होने नहीं देता। वे भी सामान्य नटिनी की भांति रोजी-रोटी के लिए अपने शरीर का सौदा करना कोई बुरा नहीं समझती। प्यारी तो अपनी महत्वकांक्षा की पूर्ति हेतु रूस्तमखाँ

की रखेल बनकर रहती है और खुश भी होती है। नट जाति की स्त्रियों की भांति इनमें भी यौन संबंधी कोई नैतिकता नहीं है। इसी प्रकार उच्चवर्गीय पात्र ठाकुर विक्रम सिंह भले ही गांधीजी के सिद्धांतों से प्रभावित है परंतु अपने पुत्र नरेश से करनट की बेटी का वैवाहिक संबंध ग्राह्य नहीं है। परतुं चंदा की मृत्यु उनका ह्रदय परिवर्तन करा देती है और उन्हें अनुभव होता है कि 'मैंने गांधीजी की लाश में लात मार दी।'[38] सुखराम एक नट होते हुए भी आभिजात्य संस्कारों से युक्त है। उसका चरित्र नटों के वर्गीय चरित्र से भिन्न ही नहीं, बिल्कुल दुसरा है - उसके शरीर में असाधारण बल है और वह अदम्य साहसी है। अत्यंत कठोर परिस्थितियों में अपमानजनक जीवन व्यतीत करने पर भी उसके ह्रदय की कोमलता अक्षुण्ण है। उसका विद्रोह, साहस, निर्भीकता उसे अन्य नटों से पृथक बनाती है।

आंचलिक जीवन स्वयं में विशिष्ट होता है, अतः इसके पात्रों में भी विशिष्टता का आ जाना स्वाभाविक ही है। 'कपिली परिया साधु' में पात्रों की संख्या बहुत कम है। रूपाइ, धीरसिंह, रंगीली, सोनपाही, तिलक गोसाई, मिस्टर पिल्लई जैसे गिने-चुने पात्रों की ही चर्चा मिलती है। ये सभी पात्र किसी-न-किसी रूप में अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि भी है, और इनमें से अधिकांश पात्र टाइप न बनकर विशिष्ट व्यक्तित्व से सम्पन्न भी है। रूपाय एक ऐसा पात्र है जो अंचलीय विशेषताओं से सम्पन्न है, और आंचलिक जीवन तथा उसकी समस्याओं में उलझा हुआ है। अतः उसका चरित्र विशिष्ट वैयक्तिकता लिए हुए भी वर्गगत है। वह गांव की उन्नति हेतु पुराने स्कूल की मरम्मत करता है तथा गांव के लोगों को स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए प्रेरित करता है। गांधीजी की तरह खद्दर पहनता है, सूत काटता है और स्वदेशी वस्तुओं का स्वयं भी उपयोग करता है और गांववालों को भी यही संदेश देता है। "रूपाइ इन कपड़ों के अलावा दूसरे कपड़े नहीं पहनता। खाली समय में वह सूत काटता है तथा स्कूल घर के लिए आवश्यक सामग्री एकत्रित करनें के साथ ही अन्य कार्यों में भी हाथ बँटाता है।"[39]

इसी प्रकार तिलक गोंसाई भी एक ऐसा पात्र है जो अपना अलग वैशिष्ट्य रखते है। वह पूर्ण रूप से स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेते हैं, जेल जाते हैं। सत्याग्रह का अर्थ समझाते हुए कहते है कि सत्य के प्रति जिसके ह्रदय में आग्रह है, वहीं सत्याग्रही है। 'वंदे मातरम्' का उच्चारण करने मात्र से कोई सत्याग्रही नहीं बन जाता। वे भी लोगों को स्वदेशी अपनाकर, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने का संदेश देते है। मि. पिल्लई अनांचलिक पात्र है, इनके चरित्र की विशिष्टताएँ इन्हें असमिया समाज से भिन्न करती है। संक्षेप में ये सभी पात्र अपने गुण-दोषों के साथ ही आंचलिक विशेषताओं से युक्त है

और अपनी पृथक विशिष्टता रखते हैं।

'मिरि जियरी' उपन्यास में भी पात्रों की संख्या अधिक नहीं है और प्रमुख-पात्रों की संख्या तो और भी कम। उच्चवर्ग के पात्रों का तो कोई उल्लेख ही नहीं मिलता। उपन्यास की कथावस्तु में हमें आंचलिक प्रेम का सीधा, सरल और आडम्बर रहित रूप मिलता है। जंकी और पानेई, प्रेमी युगल स्वच्छ निर्मल और अकृत्रिम आंचलिक प्रेम के आदर्श मात्र है। जंकी और पानेई का प्रेम और वियोग, मिरि समाज के जीवनगत पहलुओं को लेकर चलता है। उपन्यास में जंकी और पानेई के प्रेम प्रसंगों द्वारा मिरि जीवन की संपूर्णता के यथार्थ रूप को उभारा गया है। इनके उल्लेख बिना अंचल -जीवन का एक अनिवार्य पक्ष अनदेखा ही रह जाता, जंकी और पानेई का प्रेम सोवणशिरी नदी के किनारे पल्लवित होता है। हास-परिहास, नित्य अपने बीच चलते-फिरते, हँसते-बोलते, नाचते गाते जंकी पानेई के प्रेम में अनुरक्त होता है और पानेई जंकी के प्रेम में। इस प्रेम को हम पवित्र रिश्ते के रूप में पाते हैं। उपन्यास के अन्य पात्रों में डालिमी, निरमा, तामेड, कमूद, रेबांग आदि आते है जो अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, वर्ग के विशिष्ट चरित्र से भिन्न किसी वैयक्तिकता या वर्ग भिन्नता का आभास होने नहीं देते। मिरि समाज के समस्त रीतियाँ और सभी गुण-दुर्गुण इनके जीवन पर भी हावी हैं।

जंकी और पानेई के चरित्र में धैर्य, सहनशीलता, साहस और प्रेम के लिए अटूट श्रद्धा है। इसी प्रेम के कारण वे अपने माता-पिता के विरूद्ध भागकर गंधर्व-विवाह कर लेते हैं। विषम परिस्थितियों में भी दोनों एक दूसरे के प्रेम को नहीं भुला पाते। प्रेम की यह दृढ़ता ही उन्हें एक मज़बूत डोर में बांधती है जिसके चलते वे मृत्यु का वरण भी हँसते-हँसते कर जाते हैं। सच्चे प्रेम का अवसान करूण ही होता है।

'कईनार मूल्य' उपन्यास में आदि समाज के जीवनगत पहलुओं को दर्शाया गया है और यह संकेत दिया गया है कि समय नित्य निरंतर परिवर्तनशील है। अतः समाज की उन्नति हेतु समयानुसार पंरपरागत नीति-नियमों में फेर-बदल करना अतिआवश्यक है, अन्यथा उस समाज का अस्तित्व खतेरे में पड़ सकता है। इस उपन्यास में भी पात्रों की भीड़ दिखाई नहीं पड़ती। उच्च वर्गीय पात्रों का अभाव है और मध्य एवं निम्नवर्गीय पात्र की संख्या भी काफ़ी कम है। गुमबा, कारगुम, मिजुंम, मिनसेन, मिनडाक, ढाकत आदि पात्रों का वर्णन ही उपन्यास में मिलता है। मुख्य पात्र के रूप में गुमबा और कारगुम के चरित्र का विश्लेषण किया गया है। गुमबा अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए भी विशिष्ट व्यक्तित्व से सम्पन्न

है। गुमबा में अदम्य साहस है जिसके बल पर बह बाल-विवाह जैसी कुप्रथा का विरोध करती हुई कहती है - "आदि समाज एक दिन इस तथ्य को समझ जाएगा कि अनज़ाने में किया जाने वाला यह बाल-विवाह अवैध है और तब यह समाज जब इतिहास के पन्नों को उलट कर देखेगा तो वह आत्मग्लानि से भर जाएगा।"[41]

गुमबा स्वयं भी बाल-विवाह का शिकार है, अतः वह इस कुप्रथा को अवैध मानते हुए, अपने ससुराल जाने से इंकार करती है। परिणामस्वरूप उसे तरह-तरह की शारीरिक मानसिक यातनाएँ सहनी पड़ती है। लेकिन गुमबा एक वीरागंना की भांति इन विषम परिस्थितियों का सामना करती है और अपने धैर्य और सहनशीलता के बल पर इस कुप्रथा के विरोध में खड़ी हो जाती है। अपनी प्रगतिशील विचारों तथा आर्दशों के कारण एक तरह से आदि समाज उसका विरोधी बन जाता है, पर अपने उद्देश्य के प्रति दृढ़ता, आदर्श के प्रति प्रतिबद्धता के फलस्वरूप वह परंपरागत नियमों को बदलने में सफल होती है। इसके विपरीत, कारगुम एक ऐसा आंचलिक पात्र है जो अपनी पुरानी रूढ़ियों, रीतियों, परंपराओं को सर्वस्व मानता है और इनमें बदलाव लाने से घबराता है। उपन्यास के प्रारंभ में वह एक कायर व्यक्ति के रूप में हमारे सामने आता है, परंतु अपनी बेटी गुमबा की दृढ़ता देखकर वह भी इस कुप्रथा से अपनी बेटी को मुक्त कराने हेतु 'बरगाम' की मदद लेता है। वह अपनी बेटी को आश्वासन देते हुए कहता है कि - "जब तक मैं जीवित हूँ, किसी में इतना साहस नहीं है कि तुझे तेरी सहमति के विरूद्ध कहीं भी ले जाया जा सकें।"[42] समयानुसार आंचलिक पात्रों में भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता की भावना दिखाई देने लगी है।

डॉ० लीला गोगोई कृत 'नोई बोई जाए' में असमिया समाज और संस्कृति को उसके यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया गया है। उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक है, परतुं मुख्य पात्रों की संख्या कम है। इस उपन्यास के सभी पात्रों का अपना-अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, पूरा हो या अधूरा। इस उपन्यास में लेखक का उद्देश्य संपूर्ण अंचल या गांव की बहुआयामी जीवन के हर अच्छे-बुरे पहलू को दिखाकर उसकी संपूर्णता को चित्रित करना है, इसलिए सामाजिक जीवन के हर पक्ष को उज़ागर करनेवाले पात्र आए है। ये पात्र अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि भी है, पर कुछ पात्रों में अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ भी उभरकर आयी है। भगीरथ फुकन, सुआगी, सोन, डॉ० विजन, मोलखू, रंगाय तांत्रिक आदि पात्र मध्य और निम्नवर्ग के ही है। लेकिन इनमें से किसी एक का भी चरित्र अपने ही वर्ग

के दूसरे पात्र की तरह नहीं है। लीला गोगोई ने उपन्यास के पात्रों को उनकी अच्छाइयों-बुराईयों, टूटन-घूटन और आशा-निराशा के साथ बड़े ही यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया है। इन सबके अलावा नादुकी, लयनी, जोगाय, बाखर, सोनाधर आदि पात्रों के चरित्र अपने वर्गीय चरित्र से किसी भी प्रकार से अलग नहीं है। इनका जीवनयापन अंचल के सामान्य लोगों की भांति ही चलता रहता है उसमें कुछ व्यक्तिगत विशिष्टता दिखाई नहीं पड़ती।

भगीरथ फुकन एक ऐसा आंचलिक पात्र है जिसके चरित्र में आत्मीयता साहस तथा विषम परिस्थितियों में डटकर खड़े रहने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उसकी पत्नी सुआगी भी जीवन के हर मोड़ पर, सुख-दुख के क्षणों में उनका साथ देती है। भगीरथ फुकन के ह्रदय में असमिया संस्कृति और परंपरां के प्रति अगाढ़ प्रेम है। वे, वर्तमान समय में, बदलते हुए जीवन मूल्यों को देखकर दुखी होते हैं, वे एक ऐसे समाज की उपेक्षा करते है जिसमें रिश्तों के बीच परस्पर आत्मीयता का भाव न हो। वे परिवर्तन को अनिवार्य मानते है, बशर्ते उसकी जड़े संस्कृति से जुड़ी होनी चाहिए। वह ऐसे समाज की कल्पना करते है जिसमें एक मनुष्य दुसरे मनुष्य से अर्थ के नाम पर, जाति के नाम पर कोई भेद न रखे। वे इसी परिवर्तित समाज को लक्ष्य करते हुए कहते है कि - "सभी मनुष्य एक है। सभी हाड़-मांस के बने हुए है। जीवन के अंतिम क्षणों में सभी को मृत्यु का वरण करना पड़ता है और यह शरीर पंचभूतों में विलीन हो जाएगा, यही जीवन का सत्य है। ..... प्राचीन समय के समाज में अमीर-गरीब के बीच कोई भेद-भाव नहीं था। हाथी गिरीया (जिसके पास हाथी है), माटिगिरिया (जिसके पास अधिक ज़मीन हो), अमीर गरीब सभी जन एक साथ एक ही मंदिर में बैठकर हरि भजन करते थे। एक ही शादी-व्याह के मंडप में सभी लोग बैठते थे और आनंद मनाते थे। सम्पति का लेखा-जोखा होता था, मनुष्यों का नहीं।"[43]

भगीरथ फुकन, अपनी वर्गीय पंरपरा से अलग हटकर अपने जीवन की राह बनाने वाले आदर्श पात्र के रूप में हमारे समक्ष आते है। अंचल जीवन को नयी दिशा देने में प्रकाश स्तँभ का काम करते है।

'रंगमिलीर हाँही' का विषय बरापानी नदी के किनारे बसे रंगमिली गांव के कारबी जनसमुदाय का पिछड़ा समाज है। उपन्यास में पात्रों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। सारिईक तेरांग, अमफू, हेमाय, हाबेसिक, लिडंक, चेंगतेरांग, कादम आदि कुछ पात्रों की चर्चा मिलती है। उच्चवर्गीय पात्रों का नितांत अभाव है। मध्य और निम्न वर्ग के पात्रों की संख्या अधिक है। क्योंकि अंचलीय या ग्रामीण समाज में

निम्नवर्गीय जनसामान्य ही अधिक संख्या में होते है, अतः इनमें वर्गगत चारित्रिक विशेषताएँ ही अधिक है। सारइक तेरांग एक ऐसा पात्र है जो आदर्शवादी और प्रगतिशील विचारों से सम्पन्न है। वह कारबी समाज के पिछड़ेपन को लेकर सदैव चिंतित रहता है और यह मानता है कि शिक्षा-दीक्षा के प्रभाव से ही कारबी समाज में उन्नति के नए द्वार खुल सकते है। वह अपने बेटे को शिक्षा की उपयोगिता समझाते हुए कहता है कि - "समय निरंतर बदल रहा है। जो व्यक्ति पढ़ाई-लिखाई नहीं करता, उसकी समाज में कोई पहचान नहीं होती। कष्ट करने से ही सुख की प्राप्ति होती है। बुरे दिन कभी भी आ सकते है। यदि नहीं पढ़ोगे तो खाने के लाले पड़ जाएगें।"[44]

इसी प्रकार अमफू, हेमाय, होबेसिक, चेंगंतेरांग आदि पात्र भी अपने वर्ग की चारित्रिक विशेषताओं की सीमित परिधि से निकलकर अपने-अपने चरित्रों की अलग-अलग छाप छोड़ जाते है। सारइक तेरांग अपनी इन्हीं व्यक्तिगत विशिष्टताओं के कारण कारबी समाज से काफ़ी अलग दिखाई देता है। उसका मानना है कि जब तक कारबी समाज युग की प्रगतिशील शक्तियों की ताकत का अंदाजा लगाकर अपनी पुरानी लीक और जड़ता-रूढ़िवादिता को छोड़कर, अपने को युग के अनुकुल ढाल नहीं लेते और बदलते हुए ज़माने के कदम से कदम मिलाकर नहीं चलते तब तक प्रगति नहीं कर सकता।

इसके विपरीत हाबेसिक एक ऐसा पात्र है जो कारबी समाज में परिवर्तन होने नहीं देना चाहता। वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति हेतु कारबी समाज को अशिक्षित, परंपरागत रूढ़ियों के बंधनों में जड़कर रखना चाहता है। वह सारइक के प्रगतिशील विचारों का खण्डन करता है और ग्रामीणों के अंदर अविश्वास और अंधविश्वास को बढ़ावा देता है। लेकिन सारइक तेरांग के प्रयासों से नवीन चेतना की लहर ग्रामीण जनों में दिखाई देने लगती है।

'रंगमिलीर हाँही' के चरित्र-निर्माण में एक और भी विशिष्टता मिलती है कि इसमें पात्रों के बहिरंग चित्रण में स्थानीय वेशभूषा तथा उनके रूपाकार में स्थानीय विशिष्टता दिखाई पड़ती है। सारइक तेरांग गांव का मुखियाँ है। उसके बहिरंग-चित्रण में स्थानीय वेशभूषा और अपने अंचल की मिट्टी की विशिष्ट गंध मिलती है। "उसके मुखमंडल पर पतली सी मुँछे है, बदन गठीला है, सिर पर पगड़ी बंधी हुई है। कानों में चांदी की 'नरिक' (बाली) पहनी है। शरीर के निचले हिस्से में फुलाम रिकंग (धोती) पहनी है और ऊपरी कंधे पर एक झोला लटकाए हुए है जिसे 'जामरंग' कहते है।"[45] कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रमुख पात्र सारइक तेरांग ही है और उसके चरित्र की आंतरिकता और बाह्य

को बड़ी कुशलता से उभारा गया है।

देशकाल-वातावरण :-

आंचलिक उपन्यासों में देशकाल और वातावरण तत्त्व सर्वोपरि है। साधारण उपन्यासों में देश का तात्पर्य स्थान से और काल का अर्थ समय से लिया गया है। आंचलिक उपन्यासों में देश या स्थान सीमित अंचल होता है। "इस तरह देश, काल और वातावरण परस्पर अतर्ग्रंथित है और तीनों मिलकर किसी क्षेत्र विशेष के जीवन को समग्र रूप में जानने के लिए व्यापक पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। लेकिन आंचलिक उपन्यासों में देशकाल एवं वातावरण का उपयोग पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, पुरो-भूमि के रूप में होता है। यहाँ देशकाल अथवा वातावरण की योजना कथा और पात्रों को यथार्थ भूमि प्रदान कर उनमें वास्तविक जीवन का बोध कराने के लिए ही नहीं की जाती है, बल्कि उसको चित्रित करना लेखक का उद्देश्य भी होता है।"[46]

भौगोलिक स्थिति आंचलिक उपन्यासों में विशेष उल्लेखनीय हैं क्योंकि सभी आंचलिक उपन्यासों में प्राकृतिक वातावरण अथवा नदियों के किनारों पर निवास करनेवाले जनजीवन को तो कहीं समुद्र तटीय प्रदेश के जीवन विवरण इन उपन्यासों का मुख्य विषय है, जैसे 'सागर, लहरें और मनुष्य' समुद्री मछुओं के जीवनगत पहलुओं को दर्शाता है। समुद्र ही बरसोवा के मछुओं की आजीविका का साधन है। इसलिए ये लोग खंडाला देवता की पूजा, नारियल पूर्णिमा के दिन बड़ी ही धूम-धाम से करते हैं। इनका खान-पान, वेश-भूषा, पर्व-त्योहार उनकी समस्याएँ सभी समुद्र से प्रभावित है और यही प्रमाणित करता है कि भौगोलिक परिवेश और प्राकृतिक वातावरण बहुत हद तक उस स्थान विशेष के जन-जीवन तथा सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण को नियंत्रित और प्रभावित करता है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रकृति के शांत, सौंदर्यपूर्ण और भीषण रूप का चित्रण यथार्थ के फलक पर किया गया है। समुद्र के तूफ़ान का वर्णन अंचल जीवन का सत्य है, प्रकृति के भीषण रूप का वर्णन करते हुए लेखक कहते है कि - "एक प्रलय-सा समुद्र में उठ रहा था। एक भीषण ध्वनि की दहाड़ से सारा समुद्र उमड़ रहा था। किनारे पर खड़े लोगों के पैरों, घुटनों से लहरें टकराई तो लोग और भी ऊपर आ गए। जब वहाँ भी पानी ने आ घेरा तो डर से चिल्लाते लोग अपने झोपड़ियों के पास आ खड़े हुए। समुद्र नट से आधे फर्लांग तक पानी ऊपर चढ़ आया था। अंहकारी पेड़ों का कहीं पता न था। सहमती लताएँ और घास की पत्तियाँ झुक गई। झोंपड़ियों के पास खड़े लोग उड़े जा रहे थे। उस अँधेरे में मालुम होता था सारी पृथ्वी डूब जाएगी।

हवा आँधी बन गई थी और आँधी झंझा। आकाश के एक किनारे से दूसरे किनारे तक गड़गड़ाहट के साथ बिजली कौंध जाती, उससे लगता जैसे समुद्र और आसमान एक हो गए हैं।"[47]

'मैला आंचल' में मेरीगंज गांव के भौगोलिक परिवेश के चित्रण में रेणु ने अपनी सुक्ष्म निरीक्षण एवं वर्णन-चित्रण कुशलता का अच्छा परिचय दिया है - "बूढ़ी कोसी के किनारे-किनारे बहुत दूर तक ताड़ और खजूर के पेड़ों से भरा हुआ जंगल है। इस अंचल के लोग इसे नवाबी तड़बन्ना कहते हैं। .... तड़बन्ना के बाद ही एक बड़ा मैदान है, जो नेपाल की तराई से शुरू होकर गंगाजी के किनारे खत्म हुआ है। लाखों एकड़ ज़मीन। बंध्या धरती का विशाल अंचल। इसमें दूब भी नहीं पनपती है। बीच में बालूचर और कहीं-कहीं बेर की झाड़ियाँ। कोस भर मैदान पार करने के बाद पूरब की ओर काला जंगल दिखायी पड़ता है। वहीं है मेरीगंज कोठी।"[48]

मेरीगंज की इस भौगोलिक स्थिति के वर्णन में ही इसके पिछड़ेपन के अनेक कारणों का संकेत मिलता है जैसे-मिट्टी में उपजाऊपन की कमी है, यातायात की सुविधाओं का अभाव है आदि। वातावरण के संश्लिष्ट यथार्थ को उभारने के लिए लेखक ने मेरीगंज की प्राकृतिक स्थिति का भी चित्रण किया है जिसमें उन्होंने गांव के पूरब में बहने वाली कमला नदी, उसके गढ़े और उनमें पननपने वाले कमल के फूल और मछलियों का वर्णन किया है। रेणु के प्राकृतिक चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता, उसके भौतिक रूप की अपेक्षा मानवीय संवेदना के वाहक के रूप में चित्रित होने में है। इनके अलावा प्रस्तुत उपन्यास में अंचल के समसामयिक सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण में यहाँ की राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण लेखक ने बड़ी ही तटस्थता के साथ किया है। इसके साथ ही मेरीगंज गांव की जाति-व्यवस्था, रीति-रिवाज़, आचार-विचार, लोकाचार, पर्व-त्योहार आदि भी सामाजिक वातावरण के विभिन्न पहलुओं के रूप में चित्रित किए गए हैं।

'आधा गांव' के लेखक का उद्देश्य गंगौली की कथा कहना नहीं, वरन् गंगौली में गुजरने वाले समय की कहानी कहना है अतः वह गंगौली के भौगोलिक और प्राकृतिक वातावरण से अधिक समय के प्रभाव में बनते-बिगड़ते सामाजिक संदर्भों की ओर आकर्षित है। लेकिन फिर भी गाज़ीपुर से गंगौली तक की यात्रा के दौरान, गंगोली की भौगोलिक स्थिति स्वतः स्पष्ट हो आयी है - "मसऊद गाज़ी के एक लड़के, नुरूद्दीन शहीद ने दो नदियाँ पार करके गाज़ीपुर से कोई बारह-चौदह मील दूर गंगौली को फतह किया।" ...... इस समाधि के अतिरिक्त गंगौली के सैय्यदों ने एक कर्बला भी बनवाया। यह कर्बला समाधि

के दक्षिण में है और खुद समाधि गंगौली के पूरब में है।"[49] गंगौली के सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण के यथार्थ चित्रण में या तो मोहर्रम की दस बैठकों की धूम है या फिर अनैतिक यौन संबंधों की। इसके साथ ही लेखक ने मुस्लिम पर्व त्योहारों के यथार्थ चित्रात्मक वर्णन, शादी-व्याह के रस्म रिवाज़ों तथा लोक-गीतों, लोकभाषा आदि के प्रयोग से वहाँ की विशिष्ट संस्कृति का परिचय दिया है।

'अलग-अलग वैतरणी' में लेखक ने प्राकृतिक परिवेश के चित्रणों द्वारा अपनी भावुकता को अभिव्यक्ति प्रदान की है, जो मानवीय संवेदनाओं को झंकृत कर देती है। सर्द ऋतु प्रारंभ होने से पहले गांव की जिंदगी किस प्रकार ग्रामीण जनों को प्रभावित करती है, इसका यथार्थ चित्र यहाँ उपस्थित है - 'नवम्बर के अंत तक करैता का सिवान पूरी तरह हरियाली की चादर में लिपट चुका था। यह हरियाली नाना मुद्राओं से भूखे और निराश लोगों को धीरज बँधाती। हल्का जाड़ा पड़ने लगा था। लोग गलियों के मोड़ के पास, जहाँ सूरज की किरणें सीधा रास्ता पाकर पहले ही उतर आतीं, धाम में बैठ जाते। जाड़े से काँपता तन धूप खाकर शिथिल हो जाता। पलकें तेज़ रोशनी के भार से आपो-आप मुँद जाती।"[50]

शिवप्रसाद सिंह ने करैता गाँव की सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण के चित्रण को समग्रता के साथ प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए आज़ादी के बाद वाली परिस्थितियों की सारी विकृतियों को संपूर्ण भारतीय ग्रामों तथा ग्रामीण सामाजिकता के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। करैता गांव की टूटती सांमतवादी धारणाओं और संस्कारों के साथ टूटती ग्राम्य-व्यवस्था की संस्थाओं और जनतंत्र के नए प्रयोगों के बीच जो तनाव है उसको उपन्यासकार ने वातावरण के द्वारा व्यक्त किया है। देश की स्वतंत्रता, जमींदारी-उन्मूलन, नयी पंचायती व्यवस्था तथा नयी चेतना की अच्छी-बुरी लहरों ने करैता गांव के सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण में बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन किए है। इसलिए लेखक ने हर प्रकार के पात्र जो गावों में सहज रूप में होते है, हर प्रकार की घटनायें, जो गांवों में सहज रूप में घटित होते है, चित्रित करके अपनी बात कहना चाही है। सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के अंकन में लेखकीय दृष्टि पैनी है।

'कब तक पुकारूँ' खानाबदोश नट जाति के जीवनगत पहलुओं को अभिव्यक्त करनेवाला नितांत अकेला उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में प्राकृतिक वातावरण का चित्रण सुक्ष्मातिसुक्ष्म विवरणों के साथ किया गया है। साँझ का दृश्य प्रकृति की दशा के चित्रण को रूपाइत करता है - "धीरे-धीरे सांझ आ गई। अँधेरा पहाड़ पर चुभ की मारता और हर बार एक चट्टान को ले रंगता। धीरे-धीरे सारा पहाड़

काला हो गया। उसके किनारे पहिले धुँधले से हुए, फिर धुआँ-धुआँ हो गया। जैसे बहुत घना अंधेरा छा रहा हो और तब डेरों और झोपड़ों में चूल्हे सुलगने उठे।"[51]

इसके अलावा उपन्यास में नटों की आर्थिक दुरव्यस्था, सामाजिक तिरस्कार, नैतिक मान्यताओं, अंधविश्वासों का तो चित्रण हुआ ही है, साथ ही उनके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का भी यथार्थ वर्णन हुआ है। उपन्यास राजस्थान और ब्रज की सीमा पर बसे गांव और वहाँ के लोगों के अज्ञान, अशिक्षा, गरीबी और शोषण को उनके रीति-रिवाज़ों परम्पराओं के साथ सामने लाता है। खुले आसमान के नीचे, झोपड़ियाँ खड़ी कर अस्थायी निवास करनेवाली इस खानाबदोश जाति के पास न तो आजीविका के लिए खेती होती है, न स्थायी व्यवसाय। अतः पेट की ज्वाला शांत करने के लिए ये लोग कभी-कभी चोरी करना, भीख मांगना, जंगली जानवारों का शिकार करना, खेल-तमाशे दिखाना आदि के अलावा अपनी स्त्रियों का देह व्यापार भी करते हैं। नटों के समाज में यौन-स्वछदंता अपनी चरम सीमा पर है। पुलिस और सरकारी कर्मचारी इन पर मनमाना अत्याचार करते हैं। भंगी भी इन्हें अपने से नीच समझकर इनका तिरस्कार करते हैं। इनका न ही कोई व्यक्तित्व है और न ही कोई अस्तित्व। वस्तुतः पेट की आग, आजीविका के साधनों का अभाव तथा उच्च वर्गों द्वारा सामाजिक तिरस्कार ही इन लोगों के अंदर सामाजिक नैतिक विकृतियों को जन्म देता है। लेखक ने एक विशिष्ट समुदाय के सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण को जीवतंता तथा यथार्थता के रूप में प्रकट किया है।

प्राकृतिक दृश्यों की योजना तथा उसके भीषण और मनोहारी रूपों का सूक्ष्म एवं विशद् चित्रण आंचलिक उपन्यासों की अपनी एक खास विशेषता है। आंचलिक उपन्यासों में प्राकृतिक वातावरण उपस्थित करने के लिए अंचल की प्रकृति के विभिन्न रूपों और उपादानों - वर्षा, नदी, पर्वत, खेत, बगीचे, संध्या, सुबह, विभिन्न ऋतुएँ आदि का चित्रण किया जाता है।

असमिया आंचलिक उपन्यास 'कपिली परिया साधु' में कपिली नदी के मनोरम और भीषण रूपों के अनेक चित्र मिलकर कपिली नदी के किनारे बसे नगाँव ज़िले के वातावरण को विशिष्ट आंचलिक स्वरूप प्रदान करते है। कपिली नदी के बाढ़ का पानी किस प्रकार लोगों के जीवन को प्रभावित करता है इसका वर्णन करते हुए लेखक कहते है कि - " कपिली में बाढ़ आती है। पठार पानी में डूब जाता है। पानी का स्तर बढ़ते-बढ़ते छाती तक पहुँच जाता है। सारे आंगन में पानी भर जाता है और सांप आंगन में तैरने लगते हैं। पानी का तेज़ बहाव रसोईघर में कई प्रकार की मछलियों को ले आती है। सुबह पानी

का स्तर घुठने तक और शाम छाती तक पहुँच जाता है। कच्चे मिट्टी से लिपी हुई दीवार दह जाती है। साथ ही, खर से बनी हुई घर की छत भी पानी में बह जाती है। पश्चिम नगांव एक अथाह समुद्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है, केवल दो-तीन गांव ही इस प्रकोप से बच पाते है। जीव-जन्तु भी बाढ़ के पानी में बह जाते हैं। अनाहार, बीमारी और बाढ़ का पानी मानव जीवन को नष्ट कर देते हैं।[52]

कपिली नदी का बाढ़ यहाँ की जीवन को मिटाने के अलावा संवारती भी है। - "धीरे-धीरे दिन बदलते है। कपिली नदी में आनेवाली बाढ़ के पानी का स्तर घटने लगता है। बाढ़ का पानी अपने साथ उर्वरा शक्ति लाती है फलस्वरूप 'शालि धान' की खेती फलने-फूलने लगती हैं। लोग अपना समस्त दुख-कष्ट भूल जाते हैं। उज़ड़े हुए गांव पुनः बसने लगते हैं।"[53]

'रंगमिलीर हाँही' में स्वच्छंद प्रकृति की गोद में बसे रंगमिली गांव की हरियाली, पहाड़ी मार्गो का उतार-चढ़ाव, फाल्गुन की सुंदर शाम, झूमखेती, बंसत ऋतु का आगमन, धान और लहराते हुए पेड़-पौधे, अमराईयाँ, हाच्छा नृत्य आदि के यथार्थ वर्णनों द्वारा इस अंचल के प्राकृतिक परिवेश का निर्माण किया गया है। एक उदाहरण देखिए - "सूरज की सुनहरी किरणों का स्पर्श टीका पहाड़ के पेड़-पौधों, वृक्ष-लताओं में नया जीवन भरता है। वृक्षों के डाल-डाल पर पंछियों के कोलाहल के स्वर से प्रकृति जगत में नयी चेतना का संचार हो रहा है। पंछियों के झुंड के झुण्ड दूर प्रांत की ओर उड़ गए। तोतों का एक झुण्ड रंगमिली गांव के ऊपर से पश्चिम के पहाड़ों की ओर चला गया।"[54]

प्रस्तुत उपन्यास में रंगमिली गांव के विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण को उपस्थित कर उसकी व्यापक पृष्ठभूमि में ग्रामीण समाज और सामाजिक जीवन के टूटन की प्रक्रिया को दिखाना ही लेखक का उद्देश्य है। अफ़ीम के नशे की लत ने कारबी समाज की जो दुर्गति की है उसे लेकर सारइक तेरांग चिंतित है और उसका मानना है कि - "अफ़ीम के नशे ने लोगों को आलसी बना दिया है। साथ ही, कालाज्वर के प्रकोप ने कारबी गांव को अस्त-व्यस्त कर दिया। रंगमिली गांव भी इस प्रकोप से बच नहीं पाया।..... रंगमिली के घर-घर में हाहाकार मच गया, सारइक तेरांग को ऐसा महसूस हुआ कि सारे अभिशापों ने उसे बिना कारणों से घेर लिया हो।"[55] इसके साथ ही, बाढ़ और सूखे की समस्या, खेती-बाड़ी की पुरानी पद्धति, आवागमन की असुविधा तथा अन्य प्रकार की प्राकृतिक विपत्तियों, राजनीतिक उपेक्षाओं एवं आर्थिक विपन्नताओं के कारण अशिक्षा, अंधविश्वास आदि के चित्रण के साथ, आंचलिक भाषा, वेशभूषा, पर्व-त्योहार, लोकगीत नृत्य आदि के यथार्थवादी चित्रण द्वारा सामाजिक और

सांस्कृतिक वातावरण अपने संपूर्ण आंतरिक और बाह्य पक्षों तथा पहलुओं के साथ चित्रित तथा रूपायित हुआ है।

'मिरि जियरी' उपन्यास में मिसिंग समाज की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है और इस संस्कृति का आंतरिक और बाह्य स्वरूप बड़े जीवंत और चित्रात्मक रूप में अभिव्यक्त किया गया है। लोकगीतो, लोक उत्सवों, रीति-रिवाज़ों, अंधविश्वासों तथा पर्व-त्योहारों के विस्तृत तथा चित्रात्मक वर्णन द्वारा इस अंचल का संपूर्ण सांस्कृतिक वातावरण उज़ागर हो गया है। जंकी और पानेई के प्रेम को आधार बनाकर, सामाजिक जीवन को अभिव्यक्त किया गया है। उपन्यास में इस बात के संकेत मिलते है कि मिरि समाज आर्थिक दृष्टि से विपन्न सामाजिक दृष्टि से हीन और उपेक्षित, नैतिकता की अवहेलना करता हुआ और मानसिक दृष्टि से टूटा हुआ निराश, हताशा और निरूपाय है। सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण के अंकन में लेखक ने शायद ही कोई ऐसा प्रसंग छोड़ा हो, जिसके चित्रण से गांव की सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण सजीव न हुआ हो।

'नोई बोई जाए' उपन्यास में अतीतकालिक और वर्तमानकालिक वातावरण का चित्रण किया गया है। लीला गोगोई ने अतीत से लेकर वर्तमान तक, सेंदुरीपाम गांव के वातावरण में होनेवाले आंतरिक और बाह्य परिवर्तनों को भी चित्रित करके समसामयिक वातावरण के प्रति अपनी प्रतिबद्धता का निर्वाह किया है। भगीरथ फुकन अपने अतीत अनुभव की कहानी सुनाते हुए देशव्यापी स्वतंत्रता आंदोलन का उल्लेख, तत्कालीन वातावरण की पूरी प्रांसगिकता के साथ अभिव्यक्त करने के अलावा अंचल को तबाह करनेवाली भंयकर बाढ़ तथा उसके बाद फैली महामारी, अंग्रेजों के द्वारा अंचलवासियों पर किए गए अत्याचार आदि का वर्णन भी तत्कालीन सामाजिक वातावरण के संदर्भ में करते है। लेकिन उपन्यास के अंतिम भाग में आधुनिक काल का सामाजिक वातावरण चित्रित हुआ है, सम्बंधों में तनाव और घुटन, राजनीतिक भ्रष्टाचार, जीवन-पद्धति में अंतर, तीज-त्योहारों एवं सामाजिक सभाओं का अभाव, महँगाई की समस्या, गांव टूटने की समस्या आदि आधुनिक वातावरण के ही अनिवार्य अंग है। लेखक ने परिवर्तित समाज को लक्ष्य करते हुए कहा है कि - "मैंने स्वयं अपनी आखों से देखा है। समाज का रूप निरंतर परिवर्तित हो रहा है। वस्तुओं के दाम बढ़ रहे है और मनुष्यों की अहमियत कम हो रही है। एक समय ऐसा था जब परिवार में नए मेहमान के आने पर समाज तथा परिवार के लोग हर्षोल्लास के साथ, उसका स्वागत करते थे। पहले समाज में मनुष्य को महत्व दिया जाता था परंतु आज यह भावना मिट

रही है।"[56]

'कईनार मूल्य' उपन्यास में सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण का लेखक ने बड़ी ही गहराई और आत्मीयता से अंकन किया है। लेखक ने इस बात का उल्लेख किया है कि लड़की खरीदने-बेचने की कुप्रथा, सामाजिक जीवन को खोखला करती जा रही हैं तथा रीति-रिवाज़ों के नाम पर लड़कियों के शोषण की प्रक्रिया निरंतर चली आ रही है। उपन्यास में आदि समाज एवं संस्कृति की सारी अच्छाईयाँ और बुराईयाँ, अंधविश्वास, पारंपरिक रीति नीति, गरीबी अशिक्षा का तो चित्रण हुआ ही है, साथ-ही-साथ सदियों पुरानी जर्जर नैतिक मान्यताओं के बोझ के नीचे दबा-कुचला यहाँ का समाज किस प्रकार अपनी विवशताओं में घुट-घुटकर जीता-मरता है, इसके चित्रण द्वारा सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण का भी विस्तृत वर्णन हुआ है। आंचलिक भाषा, उनके खान-पान, पात्रों के स्थानीय नाम, रीति रिवाज आदि के प्रयोग द्वारा इस वातावरण पर स्थानीयता का रंग और भी अधिक गहरा हो गया है।

निष्कर्ष

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों की भाषा एवं शिल्प विधान का अध्ययन करने के पश्चात् बहुत कुछ साम्य दिखाई पड़ता है। दोनों भाषाओं के रचनाकारों ने अपने प्रतिपाद्य को प्रामाणिक और प्रभावशाली बनाने के लिए स्थानीय बोली और उप-बोली तथा लोक व्यवहार में प्रचलित अन्य देशज शब्दों का प्रयोग किया है। इसके लिए उन्हें स्थानीय पात्र, घटना और घटना स्थल चुनने के अतिरिक्त लोक भाषा का प्रचुर मात्रा में उपयोग करना पड़ा जिसके कारण यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई, स्थानीय रंग उत्पन्न हुआ। हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में अंचल की भाषा का प्रयोग करने के कारण स्थानीय रंग उभर कर आया है।

इसके अतिरिक्त दोनों भाषाओं के उपन्यासकारों ने अंचल वैशिष्ट्य को उभारने के लिए आंचलिक भाषा का प्रयोग किया है। यह भाषा या बोली व्यक्ति विशेष की न रहकर समाज विशेष की रही है। अंचलवासियों के व्यवहार, उनके रीति-रिवाज़, मनोरंजन, उनकी लोककथाएँ, लोकगीतों में भाषा का सफल एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। लोकभाषा को समृद्ध करने के लिए स्थानीय बोली के शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग किया गया है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में मैथिली, भोजपुरी, बंगला, अंग्रेजी तथा उर्दु के शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। वहीं दूसरी ओर असमिया आंचलिक उपन्यासों में असमिया, बंगला, कारबी, मिसिंग, आदि तथा उर्दु, संस्कृत के तत्सम-तद्भव

शब्दरूपों का प्रयोग हुआ है परंतु स्थानीय बोली की प्रकृति और स्थानीय उच्चारण प्रक्रिया की विशिष्टताओं के कारण इन सबका रूप एक ही साँचे में ढलकर आंचलिक बन गया है। वातावरण में जीवंतता की प्रस्तुति के लिए जनपद बोलियों के साथ मुहावरे, लोकोक्तियों का प्रयोग, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में प्रचुर मात्रा में मिलती है। इसके विपरीत असमिया आंचलिक उपन्यासों 'नोई बोई जाए' 'कईनार मूल्य' में ही मुख्य रूप से मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

इसके साथ ही दोनों भाषाओं के शिल्प-विधान से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि उपन्यास का कथानक, पात्र या कोई प्रयोजन विशेष न होकर सीमित स्थान होता है, इसलिए इसका कथानक अंचल केन्द्रित होता है। इसी प्रकार आंचलिक उपन्यासों के पात्र भी अंचलीय विशेषताओं से सम्पन्न होते हैं, और आंचलिक जीवन तथा जीवनगत समस्याओं में समानता के कारण इनका स्वरूप विशिष्ट वैयक्तिकता लिए हुए भी वर्गगत होता है। पात्रों की संख्या अधिक होती है, इसलिए चरित्र चित्रण शिल्प की सर्वप्रथम विशेषता समूह-पात्र के चित्रण में है, क्योंकि इसमें व्यक्ति-विशेष की नहीं संपूर्ण अंचल के कहानी रहती है। असमिया आंचलिक उपन्यासों, में हिन्दी आंचलिक उपन्यासों की तुलना में पात्रों की संख्या कम है और मुख्य पात्रों की तो और भी कम है। परंतु मुख्य उद्देश्य अंचल के जीवन को अभिव्यक्त करना ही है। देशकाल व वातावरण को सजीव बनाने के लिए एक पूरे अंचल को उसकी संपूर्ण भौगोलिक और सामाजिक-सांस्कृतिक विशिष्टताओं के साथ प्रस्तुत किया गया है। जहाँ तक देशकाल व वातावरण का प्रयोग है दोनों भाषाओं के उपन्यासकारों ने अपने-अपने अंचल के प्राकृतिक, भौगोलिक एवं सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

संदर्भ सूची

1. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 59
2. वहीं, पृ - 280-81
3. आधा गाँव, राहीमासूम रज़ा, पृ - 52
4. वहीं, पृ - 264
5. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 146
6. कब तक पुकारूँ ,रांगेय राघव, पृ - 212
7. सागर, लहरें और मनुष्य , उदयशंकर भट्ट, पृ - 28
8. साहित्य शोध, समीक्षा, (निबंध संग्रह के निबंध, शिल्प की दृष्टि से कतिपय आधुनिकतम उपन्यास से उद्धृत) विनयमोहन शर्मा,पृ - 142
9. कपिली परिया साधु, नवकांत बरूआ, पृ - 10
10. वहीं, पृ - 6
11. वहीं, पृ - 15
12. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, पृ - 16
13. वहीं, पृ - 4
14. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, पृ - 47
15. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 262
16. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 15
17. वहीं, पृ - 11
18. हिन्दी व्याकरण,कामताप्रसाद गुरू, पृ - 53
19. वहीं, पृ -2-3
20. ग्रामीण हिन्दी बोलियाँ (प्रस्तावना), हरदेव बाहरी

21. मुहावरा मीमांसा,ओमप्रकाश गुप्त,पृ - 316

22. सागर, लहरें और मनुष्य , उदयशंकर भटट, पृ - 12

23. कब तक पुकारूँ , रांगेय राघव, पृ - 268

24. कपिली परिया साधु, नवकांत बरूआ, पृ - 2

25. आधुनिक असमिया साहित्यर परिचय, लीला गोगोई, पृ - 278-79

"कपिली परीया राईजर सुख-दुख, आशा-निराशा, आनंद शकुलोर कारण कपिली नोई। उपन्यासर कहानीर सकरून परिणतिऊ कपिलीक केन्द्र करिए घटिसे। एता अंचल आरू तार समाजर वर्णन पोआ जाए कारणे कपिली परीया साधुक रिजीओनेल नावेल बा आंचलिक उपन्यासर सारित थाई दीबअ पारी।"

26. Modern Assamese Literature, Birnchikumal Boruah, पृ - 74

"......................... and obviously the first assamese noval on tribal life."

27. मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, पृ - 19

"जंकी, तोक मोई भाल पाऊँ, तोक मई मरम करो ।"

28. वहीं, पृ - 19

"पानेई .... एई जनम थाके माने मईऊ तोके भाल पाम।"

29. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, पृ - 78

30. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 103

31. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 281

"नदी सोतँ कोबाल, सदाय भातिमूआ। ऊभतनि असंभव। खहनीयाई खहाई निया दूयों पारर माजत नोईखन बोई आसे; पानीबोर गोई आसे गोई थाकिव। तथापि एई आउपूरनि नोईखन निजर चिनाकि दि ज़ियाई थाकिव। पारर मानूहबोर मरि- हाजि नाईक्रिया हव, मानूहबोरर लगते पूरनि समलबोरे जहि-खहि जाव। नतूनमानूहबोरर मनो नतून; नतून समल चपाई-बूटोलि नतून समाज पातिब, पातिसे।

32. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 123

33. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 190

34. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 375

35. ज्ञानोदय, फरवरी 1968, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ - 140

36. आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प, ज्ञानचंद गुप्त, पृ - 71

37. सागर, लहरें और मनुष्य , उदयशंकर भट्ट, पृ - 13

38. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ - 446

39. कपिली परिया साधु, नवकांत बरूआ, पृ - 32

"रूपाये खेति-बातित मन दिले। कपिलीउ शांत। बूढ़ीमाके सूता काटे, रंगिलीये कापोर बय सेई कापोरर बाहिरे आन कापोर-कानि सि निपिन्धे। आजरि परत सिउ सूता काटे। स्कूलघरर लागतियाल काम काजबोरो करि दिये।"

40. वहीं, पृ - 25

"सत्य प्रति जार आग्रह तेऊँहे सत्याग्रही। 'वंदे मातरम्' बूलि जेलत परिलेई नहय।" ..... विलायती कापोर किय पिधिब नालागे सेई कथाउ गोसाँये बूजाई दिये।"

41. कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, पृ - 52

"सेईखन समाजे एदिन बूजि ऊठिव जे निजर अज्ञाते होआ वा केचूँआते होआ विया अवैध। आरू सेईखन समाजे तेतिया ईतिहास खूँचरि खूचरि आत्म-ग्लानित जर्जरित होब।"

42. वहीं, पृ - 103

43. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 265

"एके मानुह। तेज-मंगहेरे गढ़ा। शेषर दिनटोत एकेदरेई चकू मूदिब। एकेकूरा जूई, एकेदरेई दहिब। एके निचिना छाई-एगांर हब, दलियाई पेलाई थोई आहिब।............ ताहानि गांवत चहकी-दूखीयार समाजत फाँक नासिल। हाथीगरीया, माटिगरिया, बहरकी, टोकोना, हजूआ-बनूआ आटोजेई एकेटो नामघरत बहि हरिनाम गाईसिल, एकेखन रभातलीत बहि विया-सबाह खाईसिल। सम्पतिउ सरह-ताकर भाग आसिल, मानूह हिचापे सरू-बर नासिल।"

44. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 87

"दिन-काल सलनि होल। लिखा-पढ़ा नकरिले मानूह बोलाई खाबलेई कठिन होई परिलहि। आमार दिनबोर गोल। भयावह दिनबोर आहिब लागिसे। नपढ़िले भातमूठि कि करि खाबि

कष्टर माजेरेहे सूख-शांतिक लग पाबि।"

45. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 2

"दूकोसा पातल रंगचूआ गोफेरे गाँठलू मानूहजन मूरत चूलिर खोपा उलियाई मरा लाहारंगीया एरीया पागुरि। दुयोफाले उलमि थका कानर लतिर बहल फूटात रूपर नोरिक। पिन्धनत एखनि फूलाम रिकंग। ऊढंग आतिल गात जामरंग उलोमाई धीरे धीरे पाहारर परा नामि आहि ईगंहिन आबिर शिलचटात सारइक बहिलहि।"

46. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प-विधि, जवाहर सिंह, पृ - 176

47. सागर, लहरें और मनुष्य , उदयशंकर भट्ट, पृ - 8

48. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ - 12

49. आधा गाँव, राहीमासूम रज़ा, पृ - 13-14

50. अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ - 264

51. कब तक पुकारूँ ,रांगेय राघव, पृ - 425

52. कपिली परिया साधु, नवकांत बरूआ, पृ - 1

"कपिलीर पार बागरे। पठार बूर जाय। एकाँठू एकंकालकोई तामोल टेंगार बारीत एबूकूआ पानी हय। पानीये चोताल चोए-चोतालत टोरा साँपे किलविलाय। मजियात उज़ाय अहा काओई माछर लानि। रातिपूआ चोतालत एकाँठू-आबेलिकेई एबूकू-बेरर माटि पानीत चपराचपरे खहे। ...... पश्चिम नगांव एखन अथोई समुद्र होय माजे माजे उलाई थाके केईखनमान गाँव। गरू गाँय ऊटि जाय। मानूहे गोई आश्रय लय सेई द्वीपबोरत। मानूह मरे। पानीत-माटित-बेमारत- अनाहारत।"

53. वहीं, पृ -

"आको दिनबोर जाय। कपिली शुकाय। पलस पेलोआ पठारबोरत शालि धान हय। मानुहबोरे पाहरे। चेदेलि-भेदेलि होआ गांऊबोर ठन धरि ऊठे।"

54. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 22

"सूरूजर जिल्मिलीया सोनाली किरनत टीका पाहारर गच-लतिका बोर सार पाई ऊठिल। बिरिखर डाले डाले चराई-चिरिकतिर बिचित्र मातेरे प्रकृति जगत मूखरित हल। प्रकृति जेन

आका प्रानचचंल हई ऊठिल। जाक जाक चराई ऊरि गल-दूर प्रान्तलोई। एजाक भार्टो रंगमिलिर उपरेदि ऊरि गोल पश्चिमर पाहारबोरलोई।"

55. रंगमिलीर हाँही, रंगबंग तेरांग, पृ - 2-3

"कानि बरबिहे मानूहबोरक अकामिला करिले। लगते कोलाज्वरर प्रकोपे कारबि गाँवबोरक जोकारि थोई गल। रंगमिलि गांऊखनेउ ईयार परा मूक्ति नापाले।......... रंगमिलिर घरे घरे देखा दिले हाहाकार, गांवर सारबासा सारइकर उपरत एई समस्त अभिशापबोरे हेसाँ मारि धरिले येन अकारनतेई।"

56. नोई बोई जाए, लीला गोगोई, पृ - 256

"निजर चकूरेई देखिलों-समाजर रूप आरू रंग सलनि होईसे। वस्तुर दाम बाढ़िचे,मानूहर दाम कमिचे। एसमयत परियाललेई एति नतून केसुआ आहिले आटाये रंग पाईचिल, समाजे आदरि लोईसिल उत्सव पाति।समाजत मानूहर प्रयोजनई आसिल सबातोकेई डांगर। आज़ि सेई भाव सलनि होईसे।"

उपसंहार

उपसंहार

आंचलिक उपन्यासों के द्वारा एक निर्माणोन्मुखी साहित्य का जन्म हुआ। इनके जनवादी दृष्टिकोण ने लोकाश्रय की भावना को यथार्थ से जोड़कर नए-निर्माणोन्मुखी साहित्य का सृजन कर उपन्यास साहित्य को नई गतिशीलता और दिशा-बोध दिया। आंचलिक उपन्यासों क प्रादुर्भाव ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को नूतन क्षितिज प्रदान किये। स्थूल रूप से आंचलिकता के अंकुर प्रेमचंद के उपन्यासों में ग्राम्य समाज के यथार्थ एवं मर्मस्पर्शी चित्रण में ढूँढे जा सकते हैं। लेकिन मूल रूप सै आंचलिक उपन्यासों के स्वतंत्र अस्तित्व का समूचित विकास स्वातंत्र्योत्तर काल में ही हुआ। आंचलिक उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को नवीन दिशा प्रदान की है। यह दिशा प्रगतिशील जीवन-दृष्टि का परिचायक है। स्वतंत्रता के बाद समाज में नव जागृति आई, सचेत उपन्यासकारों का ध्यान सबसे पहले देश के उपेक्षित, तिरस्कृत, विस्मृत दूरवर्ती अंचल जातियों के जीवन की ओर गया। रामदरश मिश्र के अनुसार उपन्यासकारों ने अनुभवहीन सामान्य या विराट के पीछे न दौड़कर दूरवर्ती, अनुभव की सीमा में आने वाले अंचल विशेष को उपन्यास का क्षेत्र बनाया।

हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता का समावेश व्यक्तिवादी उपन्यासों की प्रतिक्रियास्वरूप हुआ। अंचल विशेष के सम्पूर्ण समाज के बृहत रूप को पाठकों के समक्ष रखने में सफल हुआ। या यूँ कहे कि व्यक्तिवादी साहित्य में आनेवाली जड़ता और स्थिरता की प्रतिक्रिया स्वरूप उपन्यासों की यह आंचलिकता नवीन युग चेतना की परिचायक है। आंचलिक उपन्यासों में भूमि-खण्ड विशेष के निवासियों के दैनिक व्यापारों, एवं नवीनता को दृष्टि में रखकर उनके जीवनक्रम का उद् घाटन कुछ इस प्रकार अंकित किया गया है कि उनकी बोली एवं व्यवहार द्वारा उनके सुख-दुख, जीवन संघर्ष तथा विचार साकार हो उठे। जनपद विशेष के लोकजीवन एवं संस्कृति की यथार्थ पृष्ठभूमि पर ही आंचलिक उपन्यासों की रचना हुई है।

आंचलिक शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फणीश्वरनाथ रेणु ने सन् 1954 में प्रकाशित, अपने उपन्यास 'मैला आंचल' की भूमिका में किया था। आंचलिकता के संबंध में हिन्दी और असमिया के कई विद्वानों एवं समीक्षकों ने अपने विचार प्रस्तुत किए है। हिन्दी के प्रमुख विद्वानों में - 'डॉ० रामदरश मिश्र', 'डॉ शिवप्रसाद सिंह', 'प० राजनाथ पाण्डेय', 'आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी' आदि सम्मिलित हैं। वहीं असमिया के प्रमुख विद्वानों में - 'डॉ० गोविन्द प्रसाद शर्मा', डॉ० 'प्रदीप कुमार

बरूआ', 'डॉ० शैलेन भराली' आदि का नाम उल्लेखनीय है। विभिन्न विद्वानों द्वारा आंचलिकता के संबंध में दी गई परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यासों में किसी विशिष्ट जनपद, भूमि भाग अथवा भू-प्रदेंश का बोध होता है जो अपनी स्थानीय, भौगोलिक अथवा प्राकृतिक विशेषताओं के कारण अन्य निकटवर्ती प्रदेशों से अलग दिखाई देता है। उसकी जलवायु एवं प्राकृतिक पार्श्वभूमि, लोगों का रहन-सहन, आचार-विचार, बोलचाल, वेश-भूषा यहाँ तक कि उसका सम्पूर्ण जन-जीवन अपने आप में एक इकाई बन जाता है।

आंचलिक उपन्यास भी एक प्रकार का उपन्यास ही है, अतः उपन्यास में विद्यमान तत्त्व एवं लक्षण आंचलिक उपन्यास में भी समान रूप से पाए जाते है। अंतर केवल इन उपन्यासों की अंचल केन्द्रित दृष्टि का है जो अंचल को ही उपन्यास के सभी तत्त्वों का केन्द्रबिन्दु बना देती है। हिन्दी और असमिया भाषाओं में जब सबसे पहले उपन्यास रचना प्रारंभ हुई थी तब से ही कृतियों में जाने-अनजाने तौर पर आंचलिक तत्त्वों का समावेश मिलता है। अंचल के सामान्य जीवन का वर्णन करते हुए उनकी अपनी संस्कृति का विश्लेषण करने के लिए आंचलिक तत्त्वों का प्रयोग, उपन्यासकारों के लिए अनिवार्य हो जाता है। हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से, दोनों भाषाओं के लेखकों ने अपने-अपने आंचलिक परिवेश के परिपेक्ष्य में सामान्य जन की, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक जीवन की समस्याओं का विश्लेषण किया है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक जीवन में, वर्तमान जीवन की जटिलतायें, विभिन्न संगतियों-विसंगतियों का यथार्थ चित्रण मिलता है। दोनों भाषाओं के आंचलिक उपन्यासकारों ने आधुनिक आंचलिक परिवेश के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए व्यक्ति के विविध संबंधों-वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक की विशद चर्चा की है। दोनों भाषाओं में चित्रित सामाजिक जीवन की तुलना द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि ग्रामीण जीवन में, परिवारों के बीच आंतरिक भेद बहुत कम पाया जाता है। सभी सदस्यों के विचार और जीवन के प्रति दृष्टिकोण में भी समानता पाई जाती है।

हिन्दी के 'अलग-अलग वैतरणी', 'सागर, लहरें और मनुष्य', 'आधा गाँव' और असमिया के 'नोई बोई जाए', 'कईनार मूल्य', 'रंगमिलीर हाँही' में परिवारों के बीच प्रेम, सोहार्द्र की भावना दिखाई देती है। परिवार द्वारा ही मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने का कार्य सम्पन्न होता है। घर

का वरिष्ठ सदस्य या मुखिया सदैव अपने घर-परिवार की एकता और अखण्डता बनाए रखने का प्रयास करता हुआ दिखाई देता है। जीवन में सुख-समृद्धि एवं ऐश्वर्य के लिए पारस्परिक सहयोग अनिवार्य है जो इन उपन्यासों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। शिक्षा के क्षेत्र में ग्रामीण अंचल काफी पिछड़े हुए है, शिक्षा के प्रति मिलि-जुली प्रक्रिया देखने मिलती है। एक तरफ़ गांव की बुर्जग पीढ़ी शिक्षा को अपनी परम्परा के खिलाफ़ मानते हैं। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों जैसे 'आधा गांव', 'सागर, लहरें और मनुष्य' में स्त्री शिक्षा के प्रति उदासीनता पाई जाती है। इसी प्रकार असमिया आंचलिक उपन्यास कईनार मूल्य की गुमबा को अपनी शिक्षा अधूरी छोड़नी पड़ती है। दुसरी तरफ गांव की प्रगतिशील पीढ़ी ग्रामीण इलाको में शिक्षा की स्थिति को में सुधार लाने का प्रयत्न करती है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों जैसे 'अलग-अलग वैतरणी' का शशिकांत और असमिया के 'कपिली परिया साधु' का रूपाय ऐसे ग्रामीण पात्र है जो शिक्षा की उपयोगिता से परिचित है और यह मानते है कि गांव की उन्नति हेतु शिक्षा का प्रसार-प्रचार आवश्यक है। ग्रामीण समाज जात-पात के बंधनों में जकड़ा हुआ है और बाल-विवाह की कुप्रथा समाज को पतन की ओर ले जाती है क्योंकि कालांतर में यह एक विकृति बन जाती है जो नए-नए समस्याएँ उत्पन्न करती हैं। नारी की स्थिति सर्वत्र दयनीय है वह पुरूष के हाथों का खिलौना है। हिन्दी के 'मैला-आंचल', 'अलग-अलग वैतरणी', 'कब तक पुकारूँ' आदि और असमिया के 'कईनार मूल्य', 'कपिली परिया साधु' आदि आंचलिक उपन्यास इसका प्रमाण है।

इसी प्रकार शहरी जीवन की तुलना द्वारा यह स्पष्ट होता है कि शहरी जीवन आडम्बरों से भरा हुआ है। हर तरफ़ संबंधों में तनाव के साथ, विच्छेद की। स्थिति विद्यमान है। समाज में विघटन हो रहा है जिसके फलस्वरूप संयुक्त परिवार टूट रहे है और लघु परिवारों का प्रचलन अधिक हो रहा है। इसके मूल्य में, मुख्य रूप से आर्थिक विषमता और पीढ़ियों में अंतर ही दिखाई पड़ता है। 'सागर, लहरें और मनुष्य' में रत्ना और उसके पति माणिक के बीच आर्थिक दबाब के चलते संबंधों में दरारें बढ़ती ही जाती है। वैसे ही असमिया आंचलिक उपन्यास 'नोई बोई जाए' में भी शहरी संस्कृति का कुप्रभाव भगीरथ फुकन और उसके बेटे विजन के बीच विच्छेद की कहानी कहता है। शहरी परिवेश शिक्षा की उपयोगिता को समझते हुए, उस पर बल देता है। जात-पात की प्रथा न के बराबर है। 'अलग-अलग वैतरणी' का विपिन और 'रंगमिलीर हाँही' का हेमाय उच्च शिक्षा हेतु

शहर जाते हैं क्योंकि वहाँ पर उच्च शिक्षा संस्थानों की भरमार के साथ-साथ रोज़गार के अवसर भी उपलब्ध होते हैं। आधुनिक परिवेश में नैतिक मूल्यों में गिरावट आने लगी है। आज हर कोई नैतिकता की अपनी परिभाषा स्थापित करने में लगा हुआ है। अंचल का जीवन चाहे ग्रामीण हो या शहरी, दोनों भाषाओं के उपन्यासकारों ने समसामयिक स्वरूप को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। हिन्दी के 'सागर, लहरें और मनुष्य' और असमिया के 'नोई बोई जाए' आंचलिक उपन्यासों में इस बात के संकेत मिलते है कि शहरी परिवेश में एक मनुष्य, दुसरे मनुष्य से आगे निकलने की होड़ में अपने नैतिक आदर्शों को सुरक्षित रखने में अक्षम है जिससे मानवीय संबंधों में उलझनें पैदा हो गई है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक जीवन का गहराई से विवेचन करने के पश्चात् बहुत कुछ साम्य परिलक्षित हुआ है। परंतु जैसा कि हम जानते है कि दोनों भिन्न भाषी संस्कृति है अतः थोड़ा बहुत वैषम्य भी दिखाई देता है। हिन्दी के सभी आंचलिक उपन्यासों में जात-पात की कट्टरता इतनी अधिक पाई जाती है कि जात-पात के बिना आदमी का कोई अस्तित्व नहीं समझा जाता। 'मैला आंचल' में डॉ० प्रशांत को गांव में प्रवेश करते ही जात-पात की कट्टरता का सामना करना पड़ता है।

वहीं असमिया के आंचलिक उपन्यासों जैसे 'रंगमिलीर हाँही', 'कईनार मूल्य', 'मिरि जियरी' में जातिगत प्रथा का कोई वर्णन ही नहीं मिलता है। 'नोई बोई जाए' और 'कपिली परिया साधु' में जात-पात से संबंधित थोड़ा बहुत विवरण मिलता है परंतु हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों जैसे कट्टरता नहीं मिलती।

हिन्दी के सभी आंचलिक उपन्यासों में जहाँ यौन संबंधों की बाढ़सी दिखाई पड़ती है वहीं, असमिया के किसी भी आंचलिक उपन्यास में अनैतिक संबंधों की चर्चा नहीं मिलती। इसी प्रकार 'मैला आंचल', 'अलग-अलग वैतरणी', 'सागर, लहरें और मनुष्य', 'कब तक पुकारूँ', 'आधा गाँव', सभी आंचलिक उपन्यासों में नारी की स्थिति दयनीय है, उसे लाचार समझकर उसका शारीरिक एवं मानसिक शोषण किया जाता है। इसके विपरीत असमिया के 'रंगमिलीर हाँही', 'नोई बोई जाए' आदि आंचलिक उपन्यासों में नारी की स्थिति अधिक उन्नत, सजग और हर स्थिति में संघर्षशील है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त राजनैतिक आर्थिक चेतना

के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि अंचलों के बीच अपने-अपने राजनैतिक प्रभाव के विस्तार के लिए, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संघर्ष चल रहा है। स्वाधीन भारत की जन-चेतना भी इससे प्रभावित हुई। यहाँ की प्रजातंत्र शासन प्रणाली के परिणामस्वरूप जनता में राजनैतिक जागरण उत्पन्न हुआ है। दोनों भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों में चित्रित राजनीतिक चेतना का एक और संदर्भ है- चुनाव। पंचायती चुनाव ही वस्तुतः अंचलों की राजनीति में संश्लिष्टता प्रदान करते हैं। पंचायती राज व्यवस्था ने अंचल के निवासियों को अधिकार-बोध एवं जागृति प्रदान की है। अंचल आज समाजवादी चेतना से अनुप्राणित हैं और सभी जन अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागृत भी है। अपने अर्जित अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए तथा नए-नए अधिकारों की प्राप्ति के लिए वे संघर्षरत भी है। आंचलिक परिवेश में उभरती विद्रोह वृत्ति के सशक्त स्तरों की भी अभिव्यक्ति हिन्दी के मैला आंचल, 'अलग-अलग वैतरणी', 'कब तक पुकारूँ', 'आधा गाँव', और असमिया के 'कईनार मूल्य', 'रंगमिलीर हाँही', 'नोई बोई जाए' आदि आंचलिक उपन्यासों में मिलती है।

इसी प्रकार दोनों भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों की तुलना द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि अंचलों की आर्थिक चेतना अधिकतर कृषि से सम्बद्ध रहती है। कृषि ही अंचल का मुख्य व्यवसाय है। भारत का ग्रामीण अंचल आर्थिक रूप से सबसे अधिक पिछड़ा व साधनहीन माना जाता है। ज़मींदारी कानून के पास हो जाने के बाद थी। स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। कृषकों की आर्थिक स्थिति, उनके अभाव ग्रस्त जीवन में सुधार लाने में विफल रही। भारतीय ग्रामीण समाज की सामान्य आर्थिक प्रवृत्तियों के साथ-साथ उसकी समस्याओं जैसे निर्धनता, बेरोज़गारी, बीमारी आदि का भी चित्रण हिन्दी के 'मैला आंचल', 'अलग-अलग वैतरणी', 'आधा-गाँव' और असमिया के 'नोई बोई जाए', 'रंगमिलीर हाँही' आदि आंचलिक उपन्यासों में मिलता है। निर्धनता के कारण ग्रामीण समाज में निराशा, दीनता, विवशता का वातावरण व्याप्त है। ग्रामीण कृषक दिनभर परिश्रम करता है परतुं वर्ष भर आर्थिक भार से चिंतित रहता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पशचात् भी ग्रामीण जनता को ऋण प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े सूदखोरों, महाजनों पर निर्भर करना पड़ता है जो उनकी आर्थिक दरिद्रता को और अधिक बढ़ा देते है। 'मैला आंचल' का तहसीलदार विश्वनाथ और रंगमिलीर हाँही का महाजन रामधन केयाँर इसका प्रमाण है। निर्धनता ने बेरोज़गारी को जन्म दिया है जिसके फलस्वरूप ग्रामीण जन नगरों की ओर उन्मुख होते जा रहे

हैं। 'अलग-अलग वैतरणी' का विपिन और 'नोई बोई जाए' का विजन इसका प्रमाण है।

इसके साथ ही, दोनों भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त राजनैतिक-आर्थिक चेतना में थोड़ा बहुत वैषम्य भी दिखाई देता है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में ज़मींदारी प्रथा से संबंधित घटनाओं का विवरण यत्र-तत्र मिलता है। जैसे 'मैला आंचल', 'आधा गांव', 'अलग-अलग वैतरणी'। इसके विपरीत असमिया आंचलिक उपन्यासों में जमींदारी प्रथा का कोई विवरण नहीं मिलता। राजनीति के वास्तविक स्वरूप के स्थान पर दूषित राजनीति का प्रवाह अंचल के जीवन को निगल गया है। परिणामस्वरूप पारस्परिक सौहार्द एवं एकता की अनुभूति ईर्ष्या और दलबंदी में बदल गई है। हिन्दी के अधिकांश आंचलिक उपन्यासों जैसे . →

'मैला आंचल', 'आधा गाँव', 'अलग-अलग वैतरणी' में भ्रष्ट राजनीति का घिनौना रूप दिखाई देता है। भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय राजनीतिक दलों व शक्तियों की कुंठित मानसिकता का विस्तृत विवरण इन उपन्यासों में मिलता है। इसके विपरीत असमिया आंचलिक उपन्यासों जैसे 'कपिली परिया साधु', 'नोई बोई जाए' में राजनीति का भ्रष्ट एवं उच्छृंखल स्वरूप कम मात्रा में दिखाई पड़ता है या यूँ कहे कि इन उपन्यासों में बिल्कुल सूक्ष्म मात्रा में राजनीति की चर्चा मिलती है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों जैसे 'मैला आंचल', 'आंधा गांव', 'अलग-अलग वैतरणी', 'कब तक पुकारूँ', 'सागर, लहरें और मनुष्य' में खेती से प्राप्त आय के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के व्यवसाय जैसे मछली पकड़ना, शहद बेचना, जानवरों की खाल बेचना, जूतों की दुकान खोलना तथा वैश्यावृत्ति में संलग्न होकर पैसे कमाने का काम भी करते हैं। इसके विपरीत असमिया ग्रामीण समाज का प्रमुख व्यवसाय खेती से प्राप्त होनेवाली आय ही है। 'रंगमिलीर हाँही' और 'कईनार मूल्य' में झूम खेती का वर्णन मिलता है। झूम खेती स्थान बदल-बदलकर की जाती है। परंतु हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में इस तरह की खेती पद्धति के कोई संकेत नहीं मिलते। आर्थिक आधार को सुदृढ़ बनाने के लिए कृषि कार्यों के अतिरिक्त मछली पकड़ना, शहद बेचना, आदि कामों का सहारा लिया जाता है।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त सांस्कृतिक पक्ष की तुलना द्वारा इस बात कि पुष्टि की गई है कि भारतीय संस्कृति का सच्चा स्वरूप आज हमें अंचलों में ही प्राप्त होता है। परंतु आधुनिक आंचलिक परिवेश में प्राचीन और नवीन मान्यताओं के बीच के संघर्ष

से नई संस्कृति का उदय हो रहा है। जिसके फलस्वरूप आंचलिक जीवन नवीन सांस्कृतिक तत्त्वों की नई-नई भंगिमाएँ प्राप्त कर रहा है। ग्रामीण अंचलों की संस्कृति में एक ओर जहाँ त्योहारों तथा उत्सवों से आंचलिक जन-जीवन की प्रक्रिया एवं अंचल-निवासियों की पंरपरागत धारणाओं में उपलब्ध विश्वास पर प्रकाश पड़ता है तो दूसरी ओर ऐसे तत्त्वों से उनके बीच स्थापित होने वाली एकता भी स्पष्ट होती है।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यास 'अलग अलग वैतरणी' में मेले का विस्तृत वर्णन मिलता है, इसके विपरीत असमिया आंचलिक उपन्यासों में मेले का कोई विवरण नहीं मिलता। परंतु इतना अवश्य है कि जिस दिन मकर सक्रांति का पर्व मनाया जाता है, ठीक उसी दिन असमिया समाज में माघ बिहु का पर्व हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है, दोनों भाषाओं के उपन्यासों में रीति-रिवाजों संबंधी अनेक छोटी-मोटी बातें प्रचलित है। इन्द्र देव को प्रसन्न करने के लिए जहाँ मैला आंचल में जाट-जट्टिन का खेल खेला जाता है, वहीं 'नोई बोई जाए' में मेढक की शादी का रिवाज़ प्रचलित है। 'रंगमिलीर हाँहीं' में अतिथि का सत्कार शराब से किए जाने का रिवाज़ है, वहीं हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। असमिया समाज में तामोल-पान को संस्कृति का अभिन्न अंग माना जाता है वहीं हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार लोक तत्त्वों की व्याप्ति आंचलिक उपन्यासों का एक सांस्कृतिक उपादान है क्योंकि आंचलिक जीवन के लोकगीतों, लोककथाओं एवं लोकनृत्यों में वहाँ का विशिष्ट भू-भाग अपनी समग्रता में सहज ही उद्घाटित हो जाता है। हिन्दी के 'मैला आंचल', 'अलग-अलग वैतरणी', 'आधा गांव' और असमिया के 'नोई बोई जाए', 'रंगमिलीर हाँहीं', 'मिरि जियरी' आंचलिक उपन्यासों में लोकगीत एवं लोक में वहां की विशिष्ट संस्कृति मुखरित हुई है।

दोनों भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त धार्मिक चेतना के विश्लेषण से यह तथ्य हमारे सामने आता है कि उत्तर एवं पूर्वोत्तर भारत के अंचलों की धार्मिक धारणाएँ ईश्वर-केन्द्रित हैं। हिन्दी और असमिया के किसी भी आंचलिक उपन्यासकार ने धर्म की उदात्तता की अवहेलना नहीं की है। लेकिन धर्म की आड़ में पनपने वाले आडम्बरों ,सांप्रदायिकता, रूढ़ियों पर, अंधविश्वास, भूत-प्रेतादि की परिकल्पना आदि धार्मिक विसंगगतियों की कटु आलोचना इनकी कृतियों में प्राप्त होती है। धर्म के नाम पर बलि देने की प्रथा असमिया के आंचलिक उपन्यासों में मिलती है, जैसे 'रंगमिली

हाँही', 'कईनार मूल्य' इसके विपरीत हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में इसकी चर्चा नहीं मिलती। इसी प्रकार मैला आंचल उपन्यास में धर्म के नाम पर, लक्ष्मी पर होने वाले शारीरिक शोषण का वर्णन, असमिया आंचलिक उपन्यासों में नहीं मिलता।

हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में भाषा एवं शिल्प विधान की तुलना द्वारा यह स्पष्ट होता है कि दोनों भाषाओं के उपन्यासकारों ने अंचल वैशिष्ट् य को उभारने के लिए स्थानीय बोली और उपबोली लोक शब्द, लोक भाषा तथा लोक व्यवहार में प्रचलित अन्य देशज शब्दों का प्रयोग किया हौ। इन्हीं कारणों से आंचलिक उपन्यासों में स्थानीय बोली का काफ़ी पुट होता है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों जैसे 'मैला आंचल', 'अलग-अलग वैतरणी', 'आधा गांव', 'सागर, लहरें और मनुष्य', 'कब तक पुकारूँ' में स्थानीय बोली (मैथिली, भौजपुरी) साथ साथ अँग्रेजी, उर्दु, संस्कृत के तत्सम-तद्भव शब्द रूपों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। इसी प्रकार असमिया आंचलिक उपन्यासों 'नोई बोई जाए', 'कपिली परिया साधु', 'कईनार मूल्य', 'रंगमिलीर हाँही', 'मिरि जियरी' में भी स्थानीय बोली (कारबी, मिर्सिंग, असमिया) के साथ उर्दु, अंग्रेजी, संस्कृत के तत्सम-तद्भव शब्दरूपों का प्रयोग हुआ है, परंतु स्थानीय बोली की प्रकृति और स्थानीय उच्चारण प्रक्रिया की विशिष्टताओं के कारण इन सबका रूप एक ही साँचे में ढलकर आंचलिक बन गया है। अंचल जीवन का सम्पूर्ण चित्रण करने के लिए तथा वहाँ के जन जीवन की समूची संवेदनात्मक तस्वीर, पूरी सहजता के साथ अंकित करने के लिए स्थानीय बोली, मुहावरें, लोकोक्ति, लोक-गीत आदि का प्रयोग दोनों भाषाओं के आंचलिक उपन्यासकारों ने किया है। हिन्दी के सभी आंचलिक उपन्यासों में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। कुछ प्रसिद्ध लोकोक्तियाँ और मुहावरें इस प्रकार से है - 'आंचल मैला करना', 'दो भैसों की लड़ाई दूब के सिर आफत' (मैला आंचल) 'जात भालेई, मात भाल,' 'जी तूलिलों जोआईलेई, पो तुलिलो बोआरीलेई' (नोई बोई जाए) इसके विपरीत असमिया आंचलिक उपन्यासों में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग केवल 'नोई बोई जाए' और 'कईनार मूल्य' उपन्यासों में ही हुआ है। हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासकारों ने पात्रों का वार्त्तालाप अधिकतर स्थानीय भाषा के शब्दों से ही कराया है। इस प्रकार जनपदीय शब्दों की बहुलता के कारण कहीं-कहीं अर्थ-बोध में भी क्लिष्टता आ जाती है जिससे बचने के लिए लेखकों ने कहीं-कहीं स्थानीय शब्दों के अर्थ भी साथ दे दिए है। बहुत से शब्द

ऐसे भी होते हैं जो अपने टेढ़ेपन के कारण अपने-अपने प्रंसगों में भी स्पष्ट नहीं हो पाते और परिणामस्वरूप पाठकों की जिज्ञासा या आंनद की वृत्ति में व्याघात पहुँचता है, किंतु यह भी सत्य है कि स्थानीय शब्दों, उच्चारणों एवं ध्वनियों तथा बोलियों का चित्रण पाठक को अंचल विशेष में विचरण की-सी अनुभुति कराने में सफल-हो जाता है।

इसी प्रकार दोनों भाषाओं के शिल्प-विधान के विश्लेषण के पश्चात् इस तथ्य की पुष्टि होती है कि आंचलिक उपन्यासों का कथानक अपने अंचल से ही संबंधित होता है और कथानक का पूर्ण विकास भी इसी अंचल में होता है। आंचलिक उपन्यासों में अंचल का समग्र जीवन ही नायक होता है। इसलिए इसमें न कोई पात्र नायक होता है और कोई खलनायक। पात्रों की संख्या अधिक होती है, विभिन्न पात्रों की अलग-अलग विशेषताएँ मिलकर अंचल के सामूहिक चरित्र को प्रकट करती है। असमिया आंचलिक उपन्यासों जैसे 'कपिली परिया साधु', 'मिरि जियरी', 'कईनार मूल्य' में पात्रों की संख्या कम है और मुख्य पात्रों की तो और भी कम। इसके विपरीत हिन्दी के सभी आंचलिक उपन्यासों में पात्रों की संख्या अधिक है। दोनों भाषाओं के लेखकों ने देशकाल व वातावरण का चित्रण पात्रों और कथा को वास्तविकता प्रदान करने के लिए केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं किया है, अपितु इसे और अधिक प्रमुखता दी है। वे जानते है कि अंचल का वैशिष्ट्य उसकी स्थानीय रंगत में ही है। अतः इस स्थानीय वातावरण को विश्वसनीय तथा सजीव बनाने के लिए उस अंचल विशेष की प्राकृतिक, भौगोलिक एवं सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया जाता है।

हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों में एक सी प्रवृत्तियाँ पाई जाती है। दो भिन्न भाषी क्षेत्र होने के बावजूद आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिवेश में समानता ही आर्थिक पाई जाती है क्योंकि आंचलिक उपन्यासों का केन्द्र ग्रामीण जीवन से संबंधित है। इन उपन्यासों में यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति के साथ-साथ, दोनों क्षेत्रों की प्रमुख विशेषताओं का आभास होता है जिससे दोनों क्षेत्रों के लोग एक दूसरे की सांस्कृतिक संपदा से लाभान्वित होंगें। हिन्दी और असमिया के आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन इन विशेषताओं को उज़ागर करने के साथ-साथ अंचल विशेष में रहनेवाले सामान्य जनों की जिंदगी, रीति-नीति, रहन-सहन, आचार-विचार, लोकाचार, सामाजिक, आर्थिक विषमताओं, नैतिक मूल्यों

तथा सांस्कृतिक विशिष्टताओं का जीवन चित्र प्रस्तुत करते हैं। भौगोलिक दृष्टि से दूर-दूर के क्षेत्र होते हुए भी हिन्दी और असमिया भाषी-समाज में कई बिंदुओं पर समानता तथा विशेषताएँ पाई जाती है। दोनों का समाज कृषि-प्रधान है, मध्यवर्गीय जीवन एक है, आचार-विचार में भी समानता है। क्षेत्रीयता की दृष्टि से दोनों में व्याप्त असमानताओं को हम विशेषताओं के रूप में ही देखते हैं।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

अ. आधार ग्रंथः हिन्दी और असमिया

हिन्दीः

मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., नई दिल्ली, 1954 ई.

आधा गाँव, राही मासूम रज़ा, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., नई दिल्ली, 1966 ई.

कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2001 ई.

अलग-अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, छठा सं. 2004 ई.

सागर, लहरें और मनुष्य, उदयशंकर भट्ट- आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, प्र. सं. 2004 ई.

असमियाः

कपिली परिया साधु, नवकांत वरूआ, भास्करदत्ता बरूआ, लायरर्स बुक स्टॉल, गुवाहाटी, 1953 ई.

नोई बोई जाए, डॉ० लीला गोगोई, श्री प्रदयुत हजारिका,वनलता, डिब्रुगढ़, प्रथम संस्करण

रंगमिलीर हॉही, रंगबंग तेरांग, असम प्रकशन परिषद, गुवाहाटी, 1981 ई.

मिरि जियरी, रजनीकांत बरदलै, साहित्य प्रकाशन, गुवाहाटी, द्वितीय सं. 1988 ई.

कईनार मूल्य, लुम्मेर दाई, उत्पल हजारिका, बानी मंदिर, गुवाहाटी, प्रथम संस्करण

ब. सहायक ग्रंथ

क. हिन्दी ग्रंथ :

1. आंचलिक उपन्यासों में ग्राम्य जीवन, उत्तमभाई एल.पटेल, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीव्यूटर्स, कानपुर, 1999 ई.
2. आंचलिक उपन्यासः संवेदना और शिल्प, ज्ञानचंदगुप्त, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली 1970 ई.
3. आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास,नगीना जैन,अक्षर प्रकाशन,प्राइवेट लिमिटेड,नई दिल्ली 1976 ई.
4. आंचलिक परिदृश्यः आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, विद्या सिन्हा, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2001 ई.

5. आज का हिन्दी उपन्यास, इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966 ई.

6. आधुनिक साहित्य, नंददुलारे वाजपेयी, भारतीय भण्डार, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण - 2013 वि.

7. आधुनिक हिन्दी साहित्य, गोपालसिंह चौहान,विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल रोड,आगरा 1965 ई.

8. आधुनिकता से आधुनिक बोध, भगवतीप्रसाद शुक्ल, ग्रन्थम प्रकाशन कानपुर, 1972 ई.

9. आदिवासी भारत, योगेश अटल, राजकमल प्रकाशन,दिल्ली 1965 ई.

10. उपन्यास कलाः एक विवेचन, जलादि विश्वामित्र, सरस्वती मंदिर, वाराणसी, 1962 ई.

11. उपन्यासः तत्व एवं रूप-विधान,श्रीनारायण अग्निहोत्री,आचार्य शुक्ल,साधना सदन,कानपुर, 1962 ई.

12. कथाकार शिवप्रसाद सिंह, कामेश्वर प्रसाद सिंह, संजय बुक सेंटर गोलघर, वाराणसी, 1985 ई.

13. प्रेमचंद और उनका युग,रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन,दिल्ली 1967.ई.

14. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि का विकास, सत्यपाल चुघ, लोक भारती प्रकाशन,इलाहावाद, 1968 ई.

15. रेणु का आंचलिक कथा-साहित्य, पूर्णदेव, आशा प्रकाशन गृह करौलबाग, नई दिल्ली, 1982 वि.

16. समसामयिक हिन्दी साहित्यः उपलब्धियाँ, मन्मथनाथ गुप्त, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस,दिल्ली, 1967 ई.

17. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, कान्ति वर्मा, रामचन्द्र एण्ड कम्पनी दिल्ली, 1977 ई.

18. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प,राधेश्याम कौशिक अधीर, मंगल प्रकाशन,जयपुर 1976 ई.

19. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, ज्ञानचंद गुप्त,अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1978 ई.

20. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन, सुमित्रा त्यागी, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1978 ई.

21. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, विवेकी राय, प्रथम संस्करण

22. हिन्दी उपन्यास, सुषमा धवन, राजकमल प्रकाशण, दिल्ली,1962 ई.

23. हिन्दी उपन्यास, सुरेश सिन्हा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहावाद, 1965 ई.

24. हिन्दी उपन्यासों और यथार्थवाद, त्रिभूवन सिंह,वाराणसी 1955 ई.

25. हिन्दी उपन्यासः उद्भव और विकास, प्रतापनारायण टंडन, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ -7/1974 ई.

26. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन,दिल्ली, 1982 ई.

27. हिन्दी उपन्यासः एक सर्वेक्षण, महेन्द्र चतुर्वेदी, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1962 ई.
28. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, शशिभूषण सिंहल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1970 ई.
29. हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्याएँ, ज्ञान आस्थान, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, 1979 ई.
30. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग, मंजुलसिंह, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, 1971 ई.
31. हिन्दी उपन्यासों में सांमतवाद, कमला गुप्ता, अभिनव प्रकाश्न। दरियागंज,दिल्ली- 2, 1979 ई.
32. हिन्दी उपन्यास, सामाजिक चेतना, डॉ० कुंवरपाल सिंह, पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली 1976 ई.
33. हिन्दी उपन्यासः समकालीन परिदृश्य, महीप सिंह, लिपि प्रकाशन, दरियागंज,नई दिल्ली 1977 ई.
34. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन डॉ० गणेशन, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1962 ई.
35. हिन्दी उपन्यासः सिद्धांत और समीक्षा, मक्खनलाल शर्मा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1970 ई.
36. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, मृत्युजंय उपाध्याय, चित्रलेखा प्रकाशन,आलोपी बाग इलाहाबाद, 1989 ई.
37. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास डॉ० विद्याधर द्विवेदी,चिंतन प्रकाशन, कानपुर, 2003 ई.
38. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य, डॉ. इन्दु प्रकाश पाण्डेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1979 ई.
39. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्पविधि, जवाहर सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1986 ई.
40. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि, आदर्श सक्सेना, सूर्य प्रकाश, बिकानेर, 1966 ई.
41. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में राजनीतिक चेतना, डॉ श्रीमति सरोज यादव, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 1996 ई.
42. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, डॉ. विमल शंकर नागर, प्रेरणा प्रकाशन, मुरदाबाद, 1985 ई.
43. हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों अनुशीलन, ब्रजभूषणसिंह, रचना प्रकाशन, इलाहबाद 1970 ई.
44. हिन्दी गद्य साहित्यः एक सर्वेक्षण, जगदीशचन्द्र जोशी, चिन्मय प्रकाशन जयपुर, 1966 ई.
45. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं 2050 वि.
46. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1990 ई.

47. हिन्दी साहित्य का दुसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड , अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 1966. ई.

ख. असमिया ग्रंथ :

1. असम बुरंजी, पद्मनाथ गोहाइबरूआ, असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी, 1976 ई.

2. असमर जनजातीय संस्कृति,ऊपेन राभा हाकाचाम, उत्पल हजारिका, वीना मंदिर, महेन्द्र मोहन चौधरी भवन, हेदायेतपुर गुवाहाटी, 3, 2005 ई.

3. असमर लोक संस्कृति, निर्मल प्रथा बरदलोई,वीना लाईब्रेरी गुवाहाटी,1972 ई.

4. असमर संस्कृति- लीला गोगोई, वनलता डिब्रुगढ़, 1998 ई.

5. असमिया उपन्यासर गतिधारा सत्येन्द्रनाथ शर्मा, असम बुक डिपो, गुवाहाटी, 1976 ई.

6. असमिया उपन्यासर भूमिका, सत्येन्द्रनाथ शर्मा, वाणी प्रकाश, गुवाहाटी, 1964 ई.

7. असमिया साहित्यर इत्तिवृत्त, डॉ० सत्येन्द्रनाथ शर्मा, वाणी प्रकाश, गुवाहाटी, 1959 ई.

8. असमिया भाषा-आनन्दराम ढेकियाल फूकन, अनुवाद-सम्पादना, महेश्वर नेऊग, असम साहित्य सभा, जोरहाट, 1956 ई.

9. असमिया भाषा, भीमकांत वरूआ, वनलता, डिब्रुगढ़ 1991 ई.

10. असमिया भाषार इतिहास, रमेश पाठक, जारर्नाल एमपोरियम, नलबारी, 1985 ई.

11. असमिया लोकसंस्कृति, बिरिंचीकुमार बरूआ, वीना लाईब्रेरी, 1972 गुवाहाटी, ई.

12. असमिया संस्कृति, आब्दुश छत्तर, असम साहित्य सभा, 1975 ई.

13. असमिया संस्कृति आरू साहित्य, श्रीपराग चलिहा, प्रकाशक वानी प्रकाश, पाठशाला, 1973 ई.

14. असमिया साहित्यर इतिवृत्त, डॉ० सत्येन्द्रनाथ शर्मा, वाणी प्रकाश,गुवाहाटी, 1959 ई.

15. असमिया साहित्यर ऐतिहासिक उपन्यास, शैलेन भराली, वाणी प्रकाश, गुवाहाटी, 1973 ई.

16. असमिया साहित्यर रूपरेखा, महेश्वर नेऊग, लयारर्स बुक स्टॉल, गुवाहाटी, 1962 ई.

17. आधुनिक असमिया उपन्यासर शिल्परीति, डॉ० प्रदीप कुमार बरूआ,शब्द प्रकाश, जोरहाट, 2005 ई.

18. आधुनिक असमिया साहित्यर अभिलेख, सं. नगेन सईकिया, असम साहित्य सभा, जोरहाट, 1988 ई.

19. आधुनिक भाषा विज्ञान परिचय, फनीन्द्र नारायण बरूआ, वनलता डिब्रुगढ़, 2006 ई.

20. आहोमर दिन, हितेश्वर बरबरूआ, असम प्रकाशन परिषद गुवाहाटी, 1981 ई.

21. उपन्यास आरू असमिया उपन्यास, गोविन्द प्रसाद शर्मा, स्टूडेंट स्टोर्स, गुवाहाटी, 1994 ई.

22. उपन्यास आरू तुलनामूलक भारतीय उपन्यास, प्रफूल्ल कुमार नाथ,ज्योति प्रकाशन, पानबाज़ार, गुवाहाटी, 1, 2010 ई.

23. उपन्यास, विचार आरू विश्लेषण शैलेन भराली, वीना प्रकाश, प्रां लि., गुवाहाटी, 1989 ई.

24. उपन्यासर आधुनिक समालोचना, पद्धति आरू प्रकल्प, डॉ० हीरेन गोहाई, वी.एस. पब्लिकेशन, गुवाहाटी, 1985 ई.

25. उपन्यासिक रजनीकांत बरदलै, सं. वीरेन बरकटकी, असम साहित्य सभा, जोरहाट, 1988 ई.

26. मिसिंग सकलर इत्तिवृत्त आरू संस्कृति, डॉ० नोमल पेगू, भारती प्रकाशन, डिब्रुगढ़, प्रथम संस्करण

27. विरिंची कुमार बरूआ आरू प्रफुल्लदत्त गोस्वीमीर उपन्यास, डॉ० कृष्ण कुमार डेका- प्रभा प्रकाशिनी टीयक, 1991 ई

28. स्वराजोत्तर असमिया उपन्यास समीक्षा, प्रफुल्ल कर्टकी, वीणा लाईब्रेरी, 1979 ई.

29. साहित्य आरू चेतना, हीरेन गोहाई, गुवाहाटी बुक स्टॉल,गुवाहाटी 1993 ई.

30. साहित्य आरू साहित्य, महेन्द्र बरा, वनलता, नतुन बाजार, डिब्रुगढ़ 1998 ई.

31. साहित्य समग्र, डॉ० उमेश डेका और डॉ० नीलमोहन राय, नवजीवन प्रकाश, 2000 ई.

ग. अंग्रेजी ग्रंथ

1. A Cultural History of Assam, B.K.Boruah, LBS, Guwahati, 1969

2. Aspects of the Novel, E.M.Forster, Edward Arnold & Cooperation, London, 1947

3. Assamese Literature, Hem Boruah, National Book Trust, New Delhi, 1965

4. Essays on the Folklore of North-Eastern India, N.C.Sarmah, Bani Prakash, Guwahati, 1988

5. Folk Literatures of Mishings,J.Kuli,Dibrugarh,Tasen Bangke Agon Kebang,1992

6. Folklore of Assam, J.Das, NBT, New Delhi, 1973

7. History of Assamese Literature, B.K. Boruah, Sahitya Academi, New Delhi

8. Reading a Novel, Walter Allen, Phoenix House Ltd., London, 1956

9. Sociology of the Karbis, T.K. Bhattacharjee, B.R. Publication, Delhi, 1986

10.The Background of Assamese Culture, Rajmohan Nath, Shillong, 1948

11. The English Regional Novel, Phyllis Bentely, New York, 1961

12. The Novel and the people, Ralph Fox, Foreign Languages publishing House, Moscow, 1958

13. The Miris or the Mishings of the Brahmaputra Valley, N.C.Pegu, Kumarbari, Majuli (Assam), Publication Sashiram Pegu, 1956

14. The Political Novel, Russel & Russel, New York, 1966

घ.कोशः

1. अमरकोश, संपा, हरगोविन्द्र शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसा 1970 ई.

2. भारतीय साहित्य कोश, डॉ० नगेन्द्र, प्रथम संस्करण

3. लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोश, संपा, रामचन्द्र वर्मा, लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद, 1966 ई.

4. हिन्दी शब्द कोशः सं श्यामसुंदर दास - काशी प्रचारिणी सभा, काशी, 1968 ई.

5. हिन्दी शब्द कोशः डॉ० हरदेव बाहरी-राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1990 ई.

6. संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराज आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1993 ई.

7. Anglo-Assamese Dictionary, Budhindra Nath Bhattacharya, Lawyer Book Stall, Guwahati, 1962

ङ. पत्र-पत्रिकाएँ

1. आजकाल

2. आलोचना

3. कल्पना

4. दिनमान

5. नागरी प्रचारिणी पत्रिका

6.पहल

7.भाषा

8. सारिका

9. हंस

10. ज्ञानोदय

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम : कल्पना सईकिया

शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी), एम. फिल

विभाग : हिन्दी

शोध-प्रबन्ध का शीर्षक : हिन्दी और असमिया के प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन

प्रवेश शुल्क का भुगतान की तिथि : 17.09.2008

शोध प्रस्ताव की संस्तुतिः

(i) बी. पी. जी. एस : 26.03.2009

(ii) स्कुल बोर्ड पंजीयन संख्या एवं तिथि : 1464 दिनांकः 06.05.2009

104645
23/10/13
Enter by

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग